# इकाई – 1 शरीर संगठन, कोशिका व ऊतक की रचना व क्रिया


1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 शरीर संगठन : एक परिचय

1.4 शरीर के आठ मुख्य संस्थान

1.5 कोशिका : रचना एवं क्रिया

1.5.1 कोशिका भित्ती

1.5.2 जीव द्रव्य

1.5.3 नाभिक

1.5.4 आकर्षण गोलक

1.6 ऊतक का सामान्य परिचय

1.6.1 तंत्रिका तंत्र ऊतक

1.6.2 मांसपेशी तंत्र ऊतक

1.6.3 अस्थि तंत्र ऊतक

1.6.4 उपकला तंत्र ऊतक

1.6.5 फुफ्फुसीय ऊतक

1.6.6 संयोजक ऊतक

1.6.7 ग्रन्थि ऊतक

1.6.8 रूधिरीय ऊतक

1.7 सारांश

1.8 शब्दावली

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

## 1.1 प्रस्तावना

अनेक छोटी-छोटी इकाइयों से मिलकर बना यह मानव शरीर उत्कृष्ठता का एक प्रत्यक्ष नमूना है व प्रारम्भिक कक्षाओं में आपने मानव शरीर के विषय में सुना अथवा पढ़ा होगा तथा इस इकाई में आप मानव शरीर के विषय में जानेंगे कि मानव शरीर कितने भागों में बटा होता है, व कैसे कार्य करता है तथा इसके विभिन्न अवयव कौन से होते हैं तथा किस प्रकार ये आपस में मिलकर एक शरीर के लिए कार्य करते हैं, प्रस्तुत ईकाई में शरीर की सबसे छोटी ईकाई कोशिका तथा कोशिकाओं के समूह ऊतकों का वर्णन किया जा रहा है कुछ प्रश्न जिज्ञासु पाठकों के अवश्य होते है। जैसे कोशिका क्या है? इसके कौन – कौन से भेद होते है? ऊतकों के कितने प्रकार होते हैं ? और इनके क्या कार्य होते है ।

प्रस्तुत इकाई का जब आप विधिवत् अध्ययन करेंगे तो निश्चित रूप से आपकी शंकाओं का समाधान हो जायेगा।

## 1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- शरीर संगठन के बारे में एक सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- शरीर के आठ मुख्य संस्थानों के बारे में विस्तृत रूप से जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- शरीर की प्राथमिक इकाई कोशिका के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- कोशिका की रचना व क्रियाविधि का वर्णन कर सकेंगे।
- ऊतक का एक सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- ऊतकों के विभिन्न प्रकारों के विषय में विस्तार से समझ सकेंगे।
- ऊतकों के विभिन्न प्रकारों के विभिन्न महत्वपूर्ण कार्यो के आधार पर उनकी विवेचना कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में दिए गए प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे।

## 1.3 शरीर-संगठन : एक परिचय

जिस प्रकार किसी मशीन का आधार अनेक कल पुर्जे होते हैं, उसी प्रकार मनुष्य का शरीर भी अनेक अवयवों का सम्मिलित स्वरूप है। मशीन और मनुष्य में मुख्य अन्तर यही है कि मशीन निष्प्राण होती है और उसका संचालन किसी मनुष्य के ऊपर ही निर्भर करता है, जबकि मनुष्य सप्राण होता है और उसका अंग-संचालन स्वयं उसी की इच्छा पर निर्भर रहता है।

मानव शरीर के निम्न 4 मुख्य भाग होते है जिनका विवरण इस प्रकार है -

**1. सिर** - इसे 1. खोपड़ी तथा 2. चेहरा - इन दो भागों में बाँटा जा सकता है। खोपड़ी - सिर के ऊपरी तथा पिछले भाग की हड्डियों का वह कोष्ठ (आवरण) है, जिसमें 'मस्तिष्क' सुरक्षित रहता है। इस भाग को कपाल भी कहते हैं। चेहरे के अन्तर्गत कान, नाक, आँख, ललाट, मुख तथा दोनों जबड़ों की गणना की जाती है।

**2. ग्रीवा -** यह सिर को धड़ से जोड़ती है अतः यह सिर और धड़ के मध्य का भाग है। इसके पीछे की ओर रीढ़ की हड्डी, आगे की ओर टेंटुआ तथा मध्य में ग्रास-नली रहती है। इस प्रकार शरीर के इस छोटे से भाग में श्वास तथा भोजन - प्रणाली के कुछ अंग स्थित रहते हैं।

**3. धड़ -** गर्दन से नीचे के भाग को 'धड़' कहा जाता है व इसके दो उप-भाग होते हैं- 1. ऊपरी भाग को 'वक्षस्थल' तथा निचले भाग को 'पेट' कहा जाता है। धड़ के इन दोनों भागों को विभाजित करने वाली एक पेशी है, जिसे 'डायाफ्राम' कहा जाता है। यह पेशी धड़ के मध्य में एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैली हुई होती है व वक्षः स्थल के अन्तर्गत पसलियाँ, फुफ्फुस अर्थात् फेफड़े तथा हृदय मुख्य हैं। उदर में आमाशय, यकृत, प्लीहा, वृक्क अर्थात् गुर्दे, अग्नाशय, छोटी और बड़ी आँत तथा श्रोणि मेखला स्थित रहती है।

**4. शाखाएँ -** ऊपरी शाखाएँ अर्थात् हाथ धड़ के ऊपरी भाग में कन्धों की हड्डियों से जुड़े रहते हैं। इसके भी दो उप-भाग हैं, दाँया तथा बाँया। शाखाओं अर्थात् टाँगों के भी दाँयें तथा बाँयें दो भाग होते हैं व ये दोनों धड़ के निम्न भाग में श्रोणि मेखला से जुड़े रहते हैं।

## 1.4 शरीर के आठ मुख्य संस्थान

शरीर के उन भागों को जो किसी कार्य विशेष को करते हैं, अंग अथवा अवयव कहा जाता है। प्रत्येक अंग की अलग-अलग क्रियाएँ होती हैं। जैसे- पाँव का चलना, हाथ का पकड़ना, आँख का देखना, आमाशय का भोजन को पचाना इत्यादि।

जब अनेक अंग मिलकर किसी एक विशेष काम को करते हैं, तब उन क्रियाओं के कार्य समूह को 'संस्थान' कहा जाता है।

मनुष्य - शरीर में निम्न आठ संस्थान मुख्य माने गए हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है -

(क) अस्थि संस्थान अथवा कंकाल तंत्र **(The Bony or skeletal System)** इस संस्थान में शरीर की सभी छोटी-बड़ी हड्डियाँ सम्मिलित होती हैं तथा यह शरीर के विभिन्न अंगों को आकार, आधार एवं दृढ़ता प्रदान करता है।

(ख) माँस-संस्थान अथवा पेशी तंत्र **(The Muscular System)** इसके अन्तर्गत पेशियाँ आती हैं। यह संस्थान शरीर के विभिन्न अंगों को गति प्रदान करता है अर्थात् उन्हें गतिशील बनाता है।

(ग) रक्तवाहक संस्थान अथवा परिवहन तंत्र **(The circulatory System)** इसमें हृदय तथा रक्त-वाहिनियाँ सम्मिलित हैं। यह संस्थान शरीर के विभिन्न भागों में रक्त-संचरण (Blood Circulation) का कार्य करता है।

(घ) श्वासोच्छास संस्थान अथवा श्वसन तंत्र **(The Respiratory System)** इसमें नाक, टेंटुआ तथा फेफड़े सम्मिलित होती है तथा यह संस्थान श्वासोच्छास का कार्य करता है।

(ड़) पोषण या पाचन संस्थान अथवा आहार तंत्र **(The Digestive System)** इसमें मुख, ग्रास-नली, आमाशय तथा छोटी-बड़ी आँतें सम्मिलित होती हैं। यह संस्थान भोजन को पचाकर शरीर के पोषण का कार्य करता है।

(च) उत्पादक संस्थान अथवा प्रजनन तंत्र **(The Reproductive System)** & इसमें शिश्न, अण्ड कोष, योनि आदि प्रजनन अंग सम्मिलित होती हैं। यह संस्थान सन्तानोत्पत्ति को कार्य को करता है।

(छ) मूत्रवाहक एवं मल-त्याग संस्थान अथवा उत्सर्जन तंत्र **(The excretory or The Urinary System)** & इसमें शिश्न, वृक्क, गुदा आदि अंग सम्मिलित होते हैं। यह संस्थान मल-मूत्र आदि (त्याज्य) पदार्थों को बाहर निकाल कर, शरीर को शुद्ध करने का कार्य करता है।

(ज) वातनाड़ी संस्थान अथवा तन्त्रिका तंत्र **(The Nervous System)** - इसके अंतर्गत मस्तिष्क, रीढ़, रज्जु तथा तंत्रिकाएँ सम्मिलित होती हैं। यह संस्थान बाह्य वस्तुओं का ज्ञान कराता है तथा शरीर के कार्यों पर नियन्त्रण रखता है।

## 1.5 कोशिका (Cell) की रचना एवं क्रिया

मानव शरीर निर्माण का आधारभूत अवयव ‘कोशा’ अथवा ‘कोशिका’ (Cell) है। जिस प्रकार एक-एक ईंट से मकान, एक-एक रजःकण से पृथ्वी तथा एक-एक बूँद जल से सागर का निर्माण होता है, ठीक उसी प्रकार शरीर की रचना भी एक-एक कोशा (Cell) के द्वारा होती है। ये कोशा आकार में बहुत ही छोटी होती हैं तथा आँखों से दिखाई नहीं देती। केवल सुक्ष्मदर्शक यन्त्र (Microscope) की सहायता से ही इन्हें देखा जा सकता है। ‘कोशा’ को शरीर की ‘इकाई’ भी कहा जाता है।

जिस प्रकार पानी की बूँदें अथवा रज-कण विभिन्न आकार के होते हैं, उसी प्रकार कोशिकाऐं भी भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार की होती हैं, परन्तु बड़ी-से-बड़ी कोशिका की

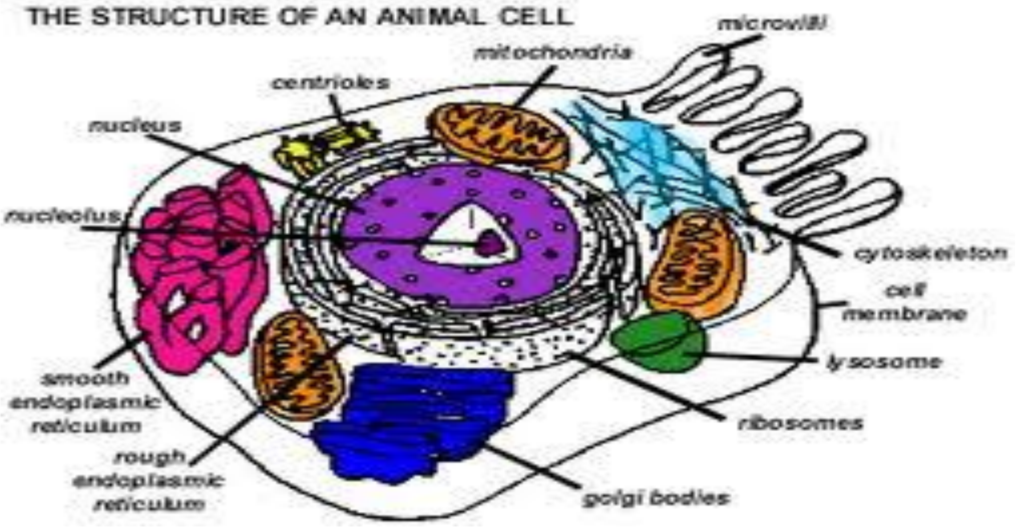

लम्बाई भी 1/100 इंच से अधिक नहीं होती। छोटी-बड़ी सभी कोशिकाओं में लम्बाई, चौड़ाई तथा मोटाई - ये तीनों बातें पाई जाती हैं। प्रत्येक कोशिका के निम्न भाग हैं -

**1.5.1 कोशिका भित्ति** (Cell Wall) प्रत्येक कोशिका के चारों ओर एक झिल्ली की दीवार होती है, जो बहुत स्पष्ट नहीं होती तथा यह जीव-द्रव्य से ही निर्मित होती है। इसमें छोटे-छोटे अनेक छिद्र होते हैं, जिनके द्वारा आवश्यक वस्तु के ग्रहण तथा अनावश्यक वस्तु के परित्याग की क्रिया सम्पन्न होती रहती है। कोशिका (Cell) के भीतर श्वास-क्रिया भी इसी कोशिका भित्ति (Cell Wall) के माध्यम से होती है।

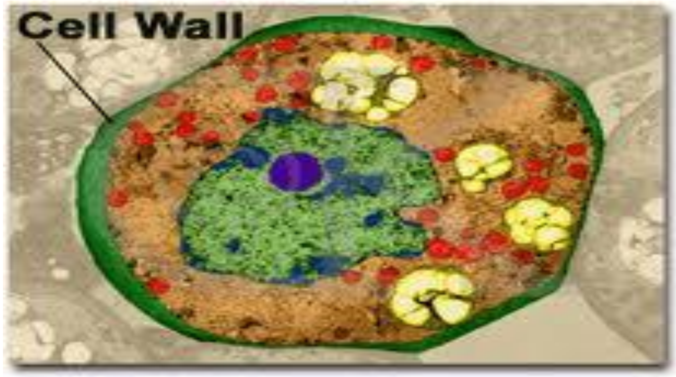


कोशिका भित्ति के कार्य –

1. कोशिका को कोमल संरचनाओं की रक्षा करती है।

2. बाह्य उत्तेजनाओं को ग्रहण करती है।

3. इसमें छिद्रों के माध्यम से ही पोषण तत्व एवं आक्सीजन भीतर जाते है व त्याज्य पदार्थ कोशिका से बाहर निकलते है।

4. यह जीव द्रव्य की रासायनिक संरचना को बनाए रखती है।

**1.5.2 जीवद्रव्य** (Protoplasm) & प्रत्येक कोशिका के भीतर एक प्रकार का स्वच्छ गाढ़ा सा रस भरा रहता है-जिसे जीवद्रव्य (Protoplasm) कहते हैं। कोशिका इसी से अपनी खुराक लेती और बढ़ती है। जीवन का वास्तविक आधार यह जीव-द्रव्य ही है। सामान्यतः इसमें 3/4 भाग पानी होता है तथा 1/4 भाग में कार्बोहाइड्रेट, चर्बी, नमक तथा प्रोटीन पाये जाते हैं। इसका विशेष गुण उत्तेजनशीलता है। इसमें प्रत्येक बात को अनुभव करने की शक्ति होती है, जिसके कारण विभिन्न प्रभावों के अनुसार यह प्रतिक्रिया करता रहता है। इस जीवन-द्रव्य के ही कारण ही जीवों में जीवन होता है। इसका नष्ट हो जाना ही जीव की मृत्यु है।

कोशिका के जीवद्रव्य में कार्बनिक पदार्थ के रूप में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, (घुलनशील व अघुलनशील कार्बोहाइड्रेड) विद्यमान रहते है। इसमें वसा एवं फॉस्फेट, कैल्शियम, सोडियम, पौटेशियम इत्यादि भी पाये जाते है।

जीवद्रव्य के सक्रिय अंगक –

**(A) अन्तर्द्रव्यी जालिका (Endoplasmic reticulum)** – यह खुरदरी और चिकनी होती है। खुरदरी में राइबोसोम के कण चिपके रहते है तथा चिकनी में राइबोसोम नहीं होते है।

**कार्य –**

1. यह कोशिका को यान्त्रिक सहारा प्रदान करती हैं।

2. खुरदुरी अन्तर्द्रव्यी कोशिका में प्रोटीन संश्लेषण का कार्य सम्पन्न होता है।

3. ये पेशीय कोशिकाओं में आवेगो को आगे अथवा पीछे ले जाने का कार्य करती हैं।

4. स्मूथ/चिकनी में लिपिड्स एवं स्टेरॉयड का संश्लेषण होता है।

**(B) माइटोकॉण्ड्रिया (Mitochondria) यह कोशिका का विघुताग्रह कहलाता है ।**

जीवद्रव्य में यत्र-तत्र बिखरे हुई ये रचनाऐं आकार में छड़ अथवा अण्डे जैसी होती हैं। तथा यह गतिशील रचनाऐं अपना विभाजन कर सकती हैं।

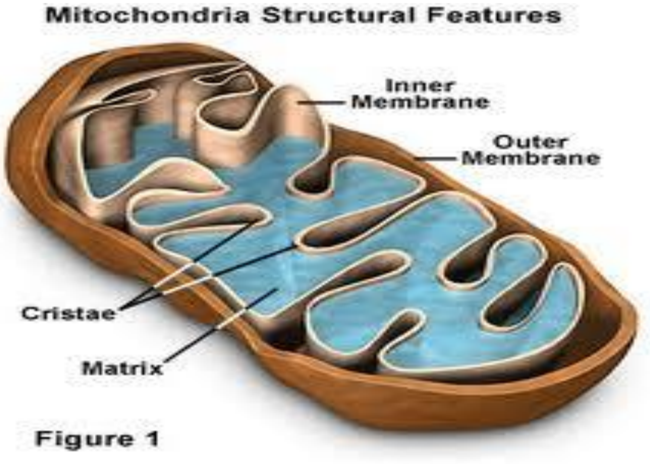


**कार्य**

1. ये कोशिका के पचे हुए भोजन का आक्सीकरण करके उसकी ऊर्जा को विमुक्त कर ATP में संग्रहित करते है, जिसकी सहायता से कोशिका विभिन्न क्रियाऐं, सम्पन्न कर पाती है एवं यह जीवन सम्भव हो पाता है।

2. प्रोटीन संश्लेषण तथा लिपिड उपापचय से भी सम्बन्धित है।

**(C) लाइसोसोम (Lysosomes) –**

थैली के समान संरचना वाली ये कणिकाएँ 'आन्तरकोशिकीय पाचन' का महत्वपूर्ण कार्य करती है। और इस लिए इसे 'पाचन उपकरण' (Difestive apparatus) भी कहा जाता है।

**कार्य** – 1. आन्तरकोशिकीय पाचन का महत्वपूर्ण कार्य करती है।

2. क्षतिग्रस्त कोशिका को भी लाइसोसोम पचा जाता है। (necrosis)

3. जीवाणु भक्षण का कार्य भी करता है। (phagoctosis)

4. किन्हीं विशेष परिस्थितियों में लाइसोसोम अपने अंतह: पदार्थ को भी पचा जाते हैं इस कारण इसे 'आत्महत्या की थैली' भी कहा जाता है।

**(D) राइबोसोम (Ribosomes)**

प्रोटीन युक्त ये अंगक समस्त कोशिका का 60% प्रोटीन भाग बनाते हैं।

**कार्य** –

1. राइबोसोम प्रोटीन संश्लेषण (protein synthesis) का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। इसलिए इसे प्रोटीन फैक्टरी भी कहा जाता है।

2. ये अर्न्तद्रव्यी जालिका के सम्बद्ध रहकर भी कार्य करती हैं।

**(E) सेन्ट्रोसोम (Centrosome)**

सेन्ट्रोसोम केन्द्रक के समीप रहते है और छड़ के समान होते हैं।

**कार्य** –

1. सेन्ट्रोसोम के चारों ओर धागे के समान संरचनाएं होती है जिन्हें स्पिन्डल्स कहा जाता है। जो कोशिका विभाजन के समय महत्वपूर्ण कार्य करता है।

2. इसमें कुछ अधिक गहरे रंग की दो गोलाकार रचनाएँ और होती हैं, जिन्हें सैन्ट्रियोल्स (Centrioles) कहते हैं। यही से सेन्ट्रियोल कोशिका विभाजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

**(F) गॉल्जी उपकरण (Golgi Apparatus)**

यह कलाओं का एक समूह कोशिका के केन्द्रक के समीप स्थित होता है व यह भौतिक एवं क्रियात्मक रूप से अर्न्तद्रव्यी जालिका से सम्बन्धित रहता है। इसकी रासायनिक संरचना में लाइपोप्रोटीन की मात्रा अधिक होती है।

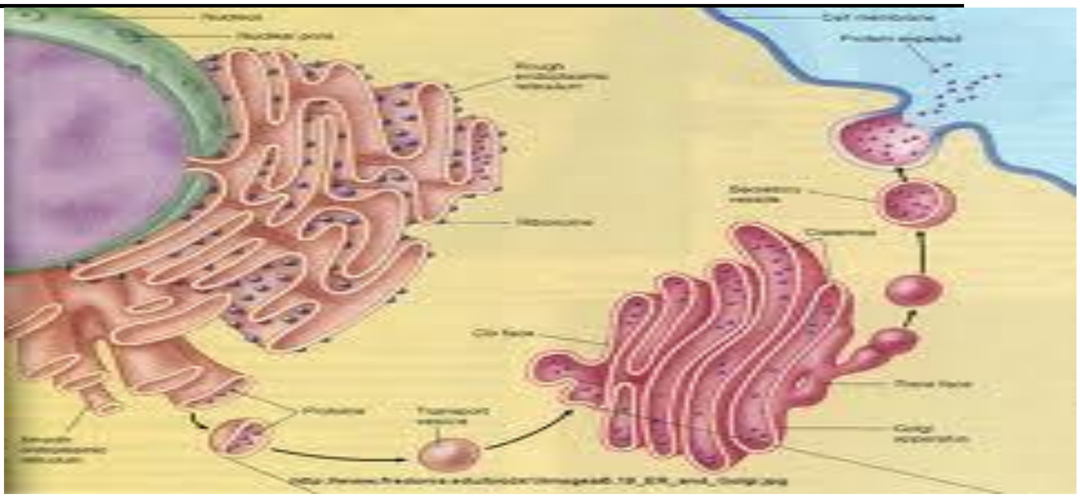

**कार्य**

1. गॉल्जी उपकरण का सम्बन्ध कोशिका की रासायनिक क्रियाओं, विशेषकर स्रावण की क्रिया से होता है।

2. यह ग्लाइकोप्रोटीन स्राव के पॉलीसैकेराइड अंश का संश्लेषण करता है व कोशिका में उत्पन्न स्रावी उत्पाद गौल्जी उपकरण में एकत्रित होते है तथा कोशिका कला तक ले जाकर इन्हें बाहर छोड़ दिया जाता है।

**(G) रिक्तिकाए (Nacuoles)**

यह जन्तु और पादप कोशिकाओं के कोशिका द्रव्य में पायी जाने वाली रचना है। ये जलनुमा तरह पदार्थ से भरी होती है तथा टोगेप्लाप्ट गमन आवरण से घिरी रहती है। इनमें भोज्य पदार्थ संचित रहते हैं। जलीय पौधों में पाई जाने वाली रिक्तिकाओं में गैस भरी होने से ये पौधों को तैरने में सहायता देती हैं।

ये परिवर्तनशील रचनाऍं है। इनके चारों ओर कुछ मात्रा में लिपिड पदार्थ रहता है।

**(H) कणिकाऍं (Granules)**

कोशिका द्रव्य में उपस्थित ये रचनाऍं अथवा पिगमेंट किसी पिगियोबॉंगिनल अवस्था में जैसे धूप में तपने के पश्चात् त्वचा की कोशिकाओं में प्रकट हो जाते हैं।

**(I) प्लाज्मोसिन एवं अन्य संरचनाऍं**

1. प्लाज्मोसिन जीवद्रव्य का एक विशिष्ट संगठन है जो सदैव जीवद्रव्य में विद्यमान रहता है।

2. आन्तरकोशिक तन्तुक जीवद्रव्य में स्थित प्रोटीन युक्त कण होते हैं ये पेशी कोशिकाओं के पेशी तन्तुक तथा तंत्रिका कोशिकाओं के तंत्रिका तन्तुक आदि का निर्माण करते हैं।

**1.5.3 नाभिक** (Nucleus) प्रत्येक कोशिका के लगभग मध्यभाग में एक गोलाकार रचना होता है, जिसे नाभिक (Nucleus) कहते हैं। यह भी जीवद्रव्य (Protoplasm) से ही बना होता है। यह कोशिका का शासक और उसके मुख्य कार्यो का कर्ता है। कोशिका का जीवित रहना, कोशिका में गति तथा कोशिका के विभाजन द्वारा उस जैसी ही अन्य कोशिकाओं की उत्पत्ति, कोशिका की गति तथा वृद्धि-ये सभी कार्य नाभिक द्वारा ही नियंत्रित होते हैं।

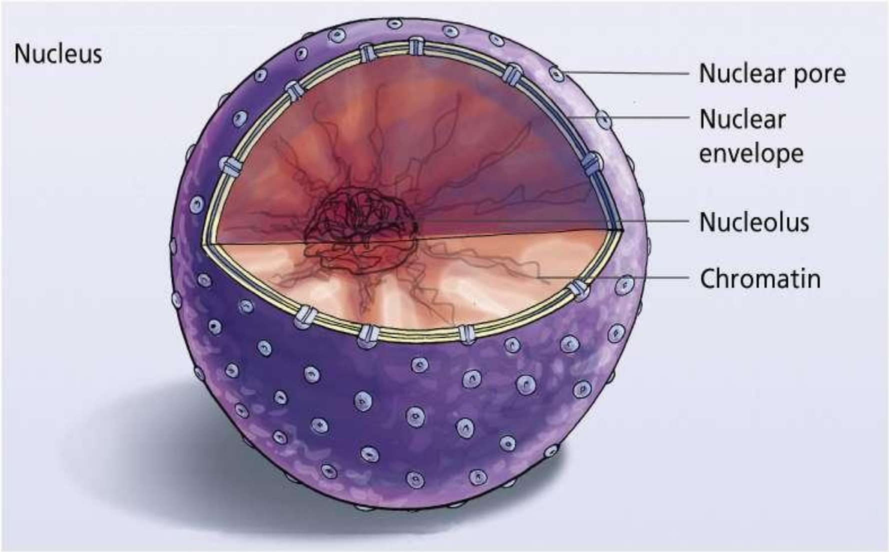


Copyright © 2004 Pearson Prentice Hall, Inc.

**1.5.4 आकर्षण गोलक** (Attraction Sphere) **-** सभी कोशिकाओं में नाभिक के समीप ही एक गोल सा आकार भी पाया जाता है, जिसे आकर्षण गोलक (Attraction Sphere) कहते हैं। यह प्रत्येक अनुभूति को अपनी ओर आकर्षित कर उससे कोशिका को अवगत कराता है।

जीवन के प्रारंभ से ही जीव जो भी कार्य करता है, वह सब इन कोशिकाओं के द्वारा और इन्हीं के कारण संभव हो पाता है। खाना, पीना, सोना, जागना, उठना-बैठना, बोलना-सुनना, देखना, श्वासोच्छवास, मल-मूत्र का त्याग, सन्तानोत्पत्ति, नियन्त्रण, मरम्मत, गति तथा अन्य सभी कार्य इन्हीं के द्वारा होता है।

शरीर के विभिन्न संस्थानों की कोशिकाओं की बनावट तथा कार्य-विधि में भी अन्तर होता है।

**अभ्यास प्रश्न**

**रिक्त स्थान की पूर्ति –**

(क) खुरदुरी अन्त प्रद्रव्यी जालिका में..........चिपके रहते हैं।

(ख) कोशिका का ऊर्जा गृह...............है।

(ग) राइबोसोम ..........का महत्वपूर्ण कार्य करते है।

(घ) क्षतिग्रस्त कोशिका का पाचन.......कहलाता है।

(ड.) कोशिका के स्रावी उत्पाद.................में एकत्रित होकर कोशिका कला से बाहर छोड़ दिये जाते है।

## 1.6 ऊतक (Tissues) का सामान्य परिचय

समान आकार तथा समान उद्देश्य के लिए कार्य करने वाली कोशिकाओं के समूह को 'ऊतक' (Tissues) कहा जाता है।

जिस प्रकार कोशिकाओं का एक समूह मिलकर 'ऊतक' की रचना करता है, उसी प्रकार ऊतकों का एक समूह मिलकर शरीर के एक अंग अर्थात् अवयव की रचना करता है।

ऊतकों के निम्नलिखित भाग किये जा सकते हैं-

**1.6.1 तन्त्रिका तन्त्र ऊतक** (Nervous Tissues) इन ऊतकों द्वारा संपूर्ण 'तन्त्रिका-तन्त्र' का निर्माण होता है व इसमें मस्तिष्क (Brain), तन्त्रिका (Nerves) तथा सुषुम्ना तन्त्रिका (Spinal Cord) दोनों सम्मिलित होते है।

इन ऊतकों की इकाई को 'न्यूरॉन' (Neurone) कहा जाता है। 'न्यूरॉन' दो प्रकार के होते हैं-

(1) बाइपोलर नर्व सैल्स (Bipolar Nerve Cells)

(2) मल्टीपोलर नर्व सैल्स (Multipolar Nerve Cells)

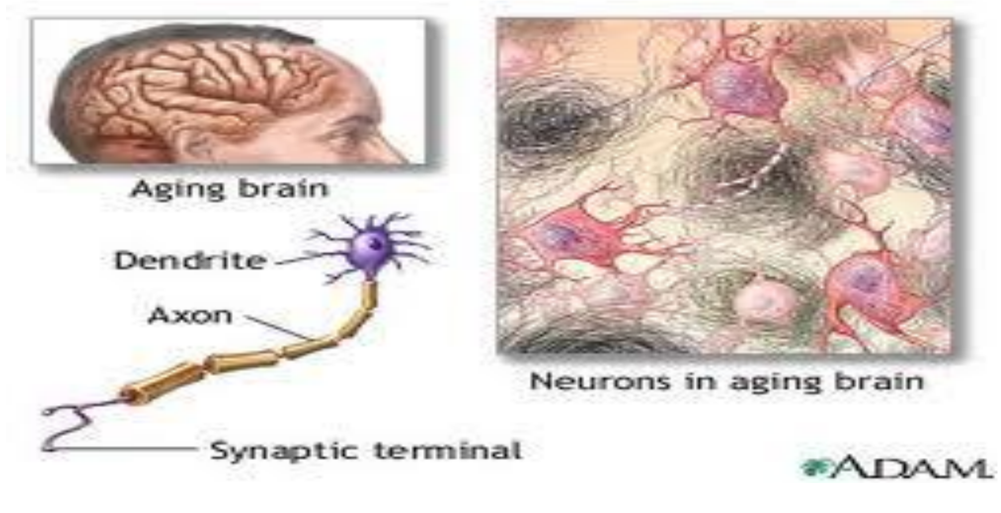

इन ऊतकों के निम्नलिखित तीन मुख्य कार्य हैं-

(क) संवेदनाओं की सूचनाओं को ग्रहण करना (Sensory Impulse)A

(ख) प्रेरक आज्ञा की सूचनाओं को भेजना (Motor Impulse)A

(ग) संवेदनाओं को आज्ञाओं में बदलना (Transformation of Sensory Impulses in motor impulses)

**1.6.2 मांसपेशी ऊतक** (Muscular Tissues) मनुष्य-शरीर का अधिकांश भाग मांसपेशियों से ही निर्मित होता है। ये पेशियाँ सम्पूर्ण शरीर में फैली रहती हैं। शरीर के भीतर तथा बाहर जितनी भी गतियाँ होती हैं, वे सब इन पेशियों द्वारा ही होती हैं। ये पेशियाँ एक ओर बाह्य भागों से लगी रहती हैं तो दूसरी ओर पाचन-नली, श्वांसनली, गर्भाशय, मूत्राशय आदि में फैली रहती हैं। ये लाल रंग की तथा पारदर्शक होती हैं व कार्य के अनुसार इन्हें दो भागों में विभाजित किया जाता है-

(1) ऐच्छिक मांसपेशियाँ (Striped or Voluntary Muscles)A

(2) अनैच्छिक मांसपेशिया¡ (Non-Striped or Involuntary Muscles)A

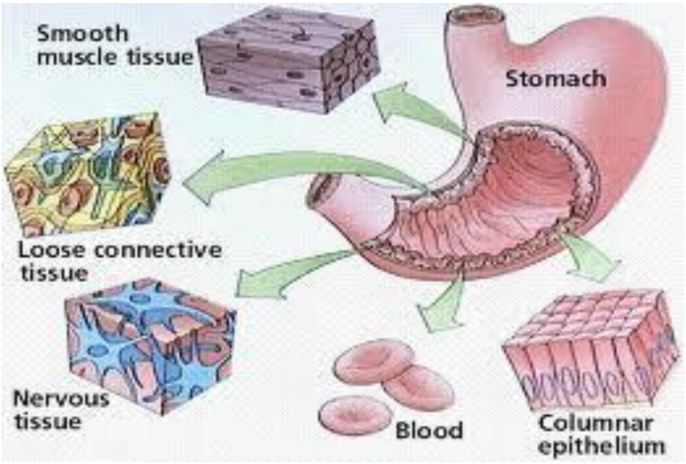


**Muscular Tissues**

**1.6.3 अस्थि ऊतक** (Bony Tissues) हड्डियाँ दो प्रकार की होती हैं-

(1) ठोस और कड़ी (Compact Bone) तथा (2) पतली और मुलायम (Cartilage) पतली तथा मुलायम हड्डियाँ अर्थात् 'कार्टिलेज' को 'उपास्थि' भी कहा जाता है। शरीर में इनकी संख्या बहुत कम होती हैं। जैसे-नाक के नीचे की हड्डी, कान की बाहरी हड्डियाँ और नाखून आदि।

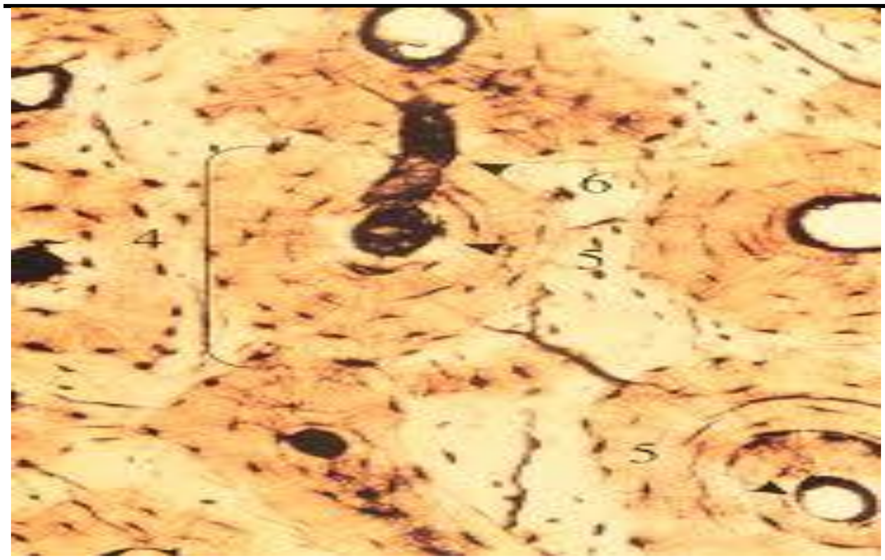


**BONY TISSUE**

कड़ी हड्डियाँ दो प्रकार की होती हैं-(1) पतली तथा लम्बी हड्डियाँ। इन हड्डियों की भीतरी नाली अर्थात् 'पोल' को मज्जानाल (Marrow Cavity) कहा जाता है। (2) ठोस तथा चपटी हड्डियाँ, जैसे-सिर की तथा श्रोणी की हड्डियाँ आदि। इन दोनों प्रकार की हड्डियों के ऊतकों को क्रमशः कठोर अस्थि ऊतक (Hard Bony Tissues) तथा कोमल अस्थि ऊतक (Soft Bony Tissues) कहा जाता है।

**1.6.4 उपकला ऊतक** (Epithelial Tissues) कुछ ऊतक ऐसे होते हैं जो शरीर की प्रत्येक नली के भीतरी भाग में रहते हैं तथा शरीर के बाह्य भाग को भी ढँके रहते हैं। ये ऊतक एक स्तर की भाँति फैले रहते हैं। इन्हें 'एपीथीलियम' (Epithelium) कहा जाता है। प्रत्येक स्थान के कार्य के अनुसार इनकी रचना विभिन्न प्रकार की होती है। ये ऊतक निम्नलिखित 5 प्रकार के होते हैं-

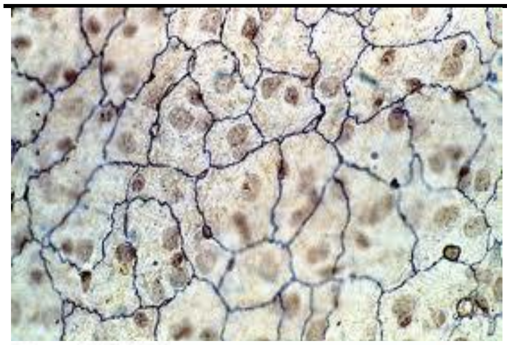

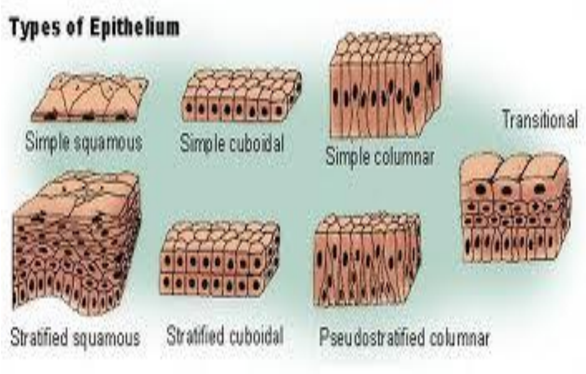


स्तरित उपकला ऊतक (Stratified Epithelium Tissues)

- एकस्तरीय उपकला ऊतक (Pavement Epithelium Tissues)
- स्तम्भाकार उपकला ऊतक (Columnar Epithelium Tissues)
- रोमक उपकला ऊतक (Epithelium Diliated Tissues)
- परिवर्ती उपकला ऊतक (Transitional Epithelium Tissues)

**1.6.5 फुफ्फुसीय ऊतक** (Alveolar Tissues) इन ऊतकों के कोशा हल्के गुलाबी रंग के होते हैं। इनकी दीवार बहुत पतली होती है। ये लचीले भी होते हैं। ये फेफड़ों का निर्माण करते हैं। इनमें वायु का प्रवेश सरलता से हो जाता है। वायु से भर जाने पर ये दब जाते तथा उसके निकल जाने पर सिकुड़ जाते हैं। इन ऊतकों के कोशा महीन वायु-नली में खुलते हैं। ये अंगूर के गुच्छे की भाँति बिखरे रहते हैं, परन्तु इनकी दीवारें एक-दूसरे से जुड़ी रहती हैं तथा इनके चारों ओर शिरायें (Veins) फैली रहती हैं।

**1.6.6 संयोजक ऊतक** (Areolar or Connective Tissues) ये ऊतक अत्यन्त साधारण प्रकार के होते हैं। ये सफेद तथा पीली जाली जैसे होते हैं। ये सम्पूर्ण शरीर में फैले रहते हैं। इनका कार्य विभिन्न ऊतकों को आपस में जोड़ना तथा खाली स्थानों को भरना है। ये शरीर को गर्मी देते, सर्दी से बचाते तथा उपवास के दिनों में शरीर को भोजन देने के काम आते हैं।

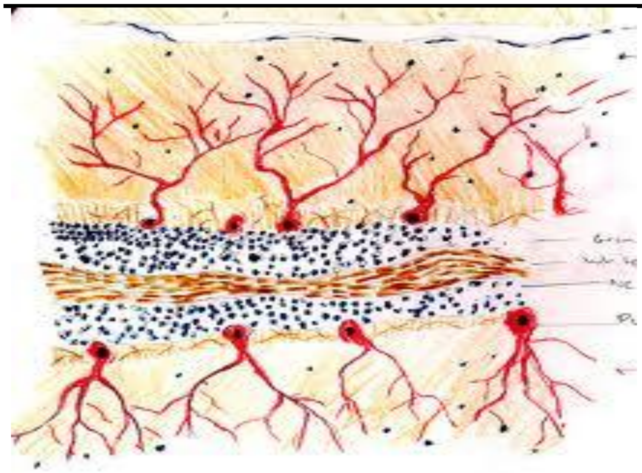

**1.6.7 ग्रन्थि ऊतक** (Glandular Tissues) इन ऊतकों द्वारा विभिन्न प्रकार की ग्रंथियों (Glands) का निर्माण होता है। इनसे एक प्रकार का स्राव निकलता है, जो शरीर के लिए अत्यधिक उपयोगी होता है। विभिन्न प्रकार के ऊतक विभिन्न प्रकार के स्राव निकालते हैं।

शरीर के भीतर निम्नलिखित तीन प्रकार की ग्रंथियाँ होती हैं-

(1) जिनके द्वारा स्राव निकलकर नलिकाओं द्वारा आंतों में पहुँचता तथा पाचन क्रिया में सहायक बनता है, जैसे- यकृत~ (Liver)] पैन्क्रियाज (Pancreas) तथा सैलाइवरी ग्लैण्ड्स (Salivary Glands)

(2) बिना नलिकाओं वाली ग्रंथियाँ, जिनके द्वारा स्राव निकल कर सीधे रक्त में मिल जाते हैं। इनके स्राव को 'हार्मोन' (Hormone) कहा जाता है तथा इन ग्रंथियों को अन्तःस्रावी ग्रंथियाँ (Endocrine Glands) भी कहते हैं।

(3) वे ग्रंथियाँ, जिनसे निकलने वाला स्राव चिकनाहट (Lubrication) का कार्य करता है, ताकि रगड़ उत्पन्न होने पर त्वचा छिलने न पाये। ये ग्रंथियाँ मुँह तथा आंतों की भीतरी झिल्लियों में पायी जाती हैं। इन्हें म्यूकस ग्लैण्ड (Mucus Glands) कहा जाता है।

**1.6.8 रूधिरीय ऊतक** (Blood Tissues or Blood Cells) यह संयोजक ऊतक (Connective Tissues) का ही एक प्रकार है, जो कि अन्य प्रकार के ऊतकों से भिन्न होता है। इसमें दो प्रकार के कोशा (Cell) होते हैं, जिन्हें 'रक्तकोशिकाऐं' (Blood Corpuscles) कहा जाता है-

(1) लाल रक्त कण (Red Blood Corpuscles or Erythrocytes)A

(1) श्वेत रक्त कण (Red Blood Corpuscles or Leucocytes)A

उक्त ऊतकों का माध्यम इनमें उपस्थित द्रव पदार्थ होता है, जो कि आकर्षण तथा प्रवहन का मुख्य साधन है। रक्त में पाये जाने वाले इस द्रव पदार्थ को 'प्लाज्मा' (Plasma) कहते हैं। 'प्लाज्मा' एक रंगहीन द्रव है, जो संयोजक-ऊतक के (Matrix) की भांति होता है तथा रक्त कोशिकाऐं इसी में तैरते हुए एक से दूसरे स्थान में पहुँचती रहती हैं।

**अभ्यास प्रश्न**

**(2) सही/असत्य बताइए**

(क) सामान आकार तथा समान कार्य को करने वाले बल कोशा समूह को ऊतक कहते है।

(ख) रक्त एक संयोजी उत्तक है।

(ग) श्वास प्रणाली एवं पाचन संस्थान की पेशियां अनैच्छिक पेशियां होती है।

(घ) श्वेत रक्त कोशिकाऐं लाल रक्त कोशिकाओं से अधिक होते है।

## 1.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके होंगे, कि मानव शरीर संगठन में शरीर के आठ मुख्य संस्थान महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं व शरीर को आधार और दृढ़ता प्राप्त करने, गति प्रदान करने, रक्त संचरण पोषक, सन्तानोत्पत्ति, एवं शरीर की प्राथमिक इकाई कोशिका अपने आप में पूर्ण है। एक शरीर में जितने आवश्यक संस्थान होते हैं इसी प्रकार एक छोटी कोशिका में इन्हीं बढ़े संस्थान की छोटी प्रतिकृति होती है। कोशिका में पाचन, उत्सर्जन, पोषण अंग विद्यमान होते हैं। कोशिका आपस में मिलकर ऊतकों का निर्माण करती हैं। इन्हीं एक समान अवतरण एवं कार्य करने वाली कोशिकाओं का समूह ऊतक कहलाता है जो पूरे शरीर का निर्माण करता है। इस इकाई के अध्ययन से आप सहज ही शरीर का महत्व एवं उसकी उपयोगिता को समझ गये होंगे।

## 1.8 शब्दावली

निष्प्राण – जिसमें प्राण न हो, मृतप्राय

नाभिक – केन्द्र

न्यूरॉन – तंत्रिका तंत्र की प्राथमिक इकाई/ कोशिका

ऐच्छिक – अपनी इच्छा से

प्लाज्मा – एक प्रकार का विशिष्ट तरल पदार्थ।

अनेच्छिक – जिस पर अपनी इच्छा ना हो

ऊतक – कोशिकाओं का समूह

माइट्रोकाण्ड्रिया : कोशिका का विद्युतागृह

संस्थान – तन्त्र

कोष्ठ – आवरण

फुफ्फुस – फेफड़े

उदर – पेट

वृक्क - गुर्दा, किडनी

कोशा – कोशिका, शरीर की इकाई

भित्ति – दिवार

## 1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (क) राइबोसोम

(ख) माइटोकोन्ड्रिया

(ग) प्रोटीन संश्लेषण

(घ) नेक्रोसिस

(ड.) गॉल्जी बॉडी

2. (क) सत्य

(ख) सत्य

(ग) सत्य

(घ) असत्य

## 1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।

2. गौढ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।

3. प्रकाश, ऐ0 (1998) अ टेक्स्ट बुक ऑफ एनाटॉमी एण्ड फिसियोलॉजी, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली।

4. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।

5. पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शारीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।

6. वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली

7. दीक्षित, राजेश ( 2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन,मथुरा

8. सक्सेना, ओ0 पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन,मथुरा

9. अग्रवाल, जी0सी0 (2010) मानव शरीर विज्ञान, एक्युप्रेशर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार संस्थान, इलाहाबाद

6. Chaurasia's B.D (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.

## 1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. कोशिका की रचना एवं क्रिया समझाइये।

2. ऊतक से क्या तात्पर्य है। इसके प्रकारों के विषय में विस्तार से समझाइये।

# इकाई 2 - अस्थि तन्त्र की रचना व कार्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 अस्थि संस्थान : एक परिचय

2.4 कंकाल के कार्य

2.5 अस्थियों का आकार

2.6 अस्थि पंजर और उसके मुख्य कार्य

2.7 अस्थियों का संगठन

2.8 अस्थि पंजर में अस्थियों की संख्या

2.9 महत्वपूर्ण संधियां

2.10 सारांश

2.11 शब्दावली

2.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.14 निबंधात्मक प्रश्न

## 2.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने शरीर संगठन के विविध आयामों के साथ-साथ कोशिका व ऊतकों के बारे में अध्ययन किया। मानव शरीर विविध तन्त्रों से मिलकर बना है। शरीर एक महत्वपूर्ण संस्थान कंकाल तन्त्र है। मानव शरीर का ढॉचा अस्थियों से मिलकर बना होता है। अस्थियों के इस ढॉचे को अस्थिपंजर या कंकाल कहते है। यह कंकाल शरीर के कोमल अंगों की सुरक्षा करता है। प्रस्तुत इकाई में कंकाल तन्त्र की विवेचना आपके अवलोकनार्थ प्रस्तुत की जा रही है।

## 2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- अस्थि संस्थान अथवा कंकाल तंत्र के विषय में सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- कंकाल के विभिन्न कार्यो की भली-भॅाति विवेचना कर सकेंगे।

- अस्थियों के आधार से संबंधित जानकारी की विवेचना कर सकेंगे।
- अस्थि पंजर व उसके मुख्य कार्यो के विषय में विस्तृत रूप से ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- अस्थियों के संगठन से संबंधित जानकारी विस्तारपूर्वक प्राप्त कर सकेंगे।
- अस्थि पंजर में अस्थियों की संख्या के विषय में ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अंत में दिए गए प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे।

## 2.3 अस्थि संस्थान : एक परिचय

मानव शरीर को एक सुव्यवस्थित आकार एवं सहारा देने के लिए एक विशिष्ट तंत्र को आवश्यता होती है व कोमल अंगों को सहारा प्रदान करने, शरीर को आकार देने, गति देने का कार्य जो विशिष्ट संस्थान करता है, वह कंकाल तंत्र अथवा अस्थि संस्थान कहलाता है। यह मानव शरीर निर्माण का आधार हैं।

मनुष्य शरीर का ढाँचा अस्थियों (हड्डियों) से बना होता है व हड्डियों के इस ढाँचे को अस्थि पंजर अथवा कंकाल (Skeleton) कहा जाता है। यह अस्थि-पंजर ही मांस, चर्म, शिराऐं, धमनियाँ, स्नायु आदि कोमल अंगों को शरीर के भीतरी भाग में सुरक्षित रखने का आधार है। मांस, पेशी, पेशीबन्धन, बन्धनी, तन्तु आदि इसी से लिपटे रहते हैं। मानव-शरीर का बाह्य स्वरूप इसी ढाँचे के अनुरूप होता है। विभिन्न हड्डियाँ ही आपस में मिलकर सन्धियाँ बनाती हैं तथा उन्हें गति प्रदान करने में सहायता देती हैं। लम्बी अस्थियों द्वारा रक्त के लाल कण भी तैयार किये जाते हैं। जिनका निर्माण अस्थि मज्जा में होता है।

अस्थि-पंजर में कुछ हड्डियाँ लम्बी, कुछ गोल, कुछ चपटी, कुछ टेढ़ी-मेढ़ी और कुछ बेलनाकार होती हैं। इनकी लम्बाई-चौड़ाई भी अलग-अलग पायी जाती है। सम्पूर्ण शरीर में छोटी-बड़ी हड्डियों की कुल संख्या 206 होती है। इनका भार शरीर के भार का प्रायः 16वां हिस्सा होता है।

हड्डियों के भीतर पायी जाने वाली मज्जा दो प्रकार की होती है-(1) लाल और (2) पीली। लाल रंग की मज्जा हड्डी के जालमय भाग में तथा पीले रंग की मज्जा हड्डी के सिरों पर दिखाई देती है।

अस्थियों का निर्माण सजीव पदार्थ (Organic matter) तथा खनिज पदार्थ (Mineral matter) के मेल से होता है। इनमें सजीव पदार्थ का प्रतिशत 33.30 तथा खनिज पदार्थ 66.70 प्रतिशत पाया जाता है।

## 2.4 कंकाल के कार्य

कंकाल के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं-

- शरीर को आकार प्रदान करना।
- शरीर को दृढ़ता प्रदान करना।

- भीतरी कोमल अंगों को सुरक्षा प्रदान करना।
- पेशियों के लिए मुड़ने का स्थान प्रदान करना।
- शरीर की सन्धियों को सुव्यवस्थित करना और शरीर को कार्य करने तथा चलने-फिरने इत्यादि के योग्य बनाना।

## 2.5 अस्थियों का आकार

रचना एवं आकृति के आधार पर निम्न प्रकार की अस्थियां होती है –

1. लम्बी अस्थियां – ये चौड़ाई की अपेक्षा लम्बाई में अधिक होती हैं। उदाहरण के लिए, भुजाओं, जांघ, तंत्र आदि की लम्बी अस्थियां। इसका विस्तृत विवेचन आगामी पृष्ठों में है।

2. छोटी अस्थियां – इस प्रकार की अस्थियां दीर्घ अस्थियों के समान लम्बी नहीं होती बल्कि लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई में लगभग बराबर होती है, लेकिन इनकी आकृति असान होती है।

ये अधिकतर स्पंजी अस्थि ऊतक की बनी होती हैं व छोटी अस्थियां कलाई तथा टखननों में पाई जाती है। ये अधिक गति के लिए उपयोगी नहीं होती अत: ऐसी जगह पाई जाती हैं जहां अधिक गति की आवश्यकता नहीं होती है।

3. चपटी अस्थियां – इस प्रकार की अस्थियां श्बि्स, कंधे की अस्थियां, वक्ष की अस्थि तथा खोपड़ी की अस्थि होती है।

4. असमाकृति अस्थियां – ये आकार में एक जैसी नहीं होती ये अनियमित व विशिष्ट होती हैं जैसे कशेरूक दण्ड की अस्थियां, चेहरे की अस्थियां, कूल्हे की अस्थियां। ये अस्थियां भी छोटी अस्थियों के समान स्पंजी अस्थि ऊतक की बनी होती हैं।

5. कण्डरास्थियॉ – इस प्रकार की अस्थियॉ कुछ विशेष कण्डराओं में विकसित होती है, जो किसी जोड़ के निकट पाई जाती हैं जैसे घुटने की अस्थि, कलाई की विशेष अस्थि इत्यादि तथा इस प्रकार की अस्थियॉ घोड़ों की कार्यक्षमता को बढ़ाती है।

## 2.6 अस्थि पंजर और उसके मुख्य कार्य

अस्थि पंजर का मुख्य कार्य क्रियात्मक कार्य है।

1. अस्थि पंजर शरीर में समस्थिति बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

2. शरीर की जो भी गतियां होती हैं वे अस्थियों के कारण ही सम्भव हो पाती है।

3. अस्थियों की मज्जा में (bone marrow) रक्त का निर्माण होता है तथा इस कार्य के कारण अस्थियों का महत्व और भी बढ़ जाता है।

4. यह भण्डारण का कार्य भी करती हैं और अस्थियों में कैल्शियम पूरे शरीर का लगभग 99% तक पाया जाता है।

## 2.7 अस्थियों का संगठन

एक वयस्क मनुष्य की अस्थि में जल एवं गेरू पदार्थे का संगठन 25% और 75% तक पाया जाता है। गेरू पदार्थ में मुख्य रूप से कैल्शियम और फॉस्फोरस अकार्बनिक पदार्थ के रूप में एवं कार्बनिक ठोस (मुख्यतया प्रोटीन) 30% के आसपास होता है।

## 2.8 अस्थि पंजर में अस्थियों की संख्या

मनुष्य-शरीर में पाई जाने वाली कुल 206 हड्डियों में से विभिन्न अंगों में निम्नलिखित संख्या में हड्डियाँ पायी जाती हैं –

| | |
|---|---|
| (1) कपाल (Cravium) में | 8 |
| (2) चेहरा (Face) में | 14 |
| (3) कान (Ear) में | 6 |
| (4) रीढ़ (Spinal Column) में | 26 |
| (5) पसलियों (Ribs) में दोनों ओर 12$12 | 24 |
| (6) छाती (Sternum) में | 1 |
| (7) गले (Hyoid Bone) में | 1 |
| (8) उर्ध्व शाखाओं अर्थात दोनों हाथों में 32+32 कुल | 64 |
| (9) निम्न शाखाओं अर्थात् दोनों पावों में 31+31 कुल | 62 |
| कुल योग | 206 |

पुरूष शरीर की भाँति स्त्रियों के शरीर में भी कुल 206 हड्डियाँ ही होती हैं। उक्त हड्डियों की संख्या के सम्बन्ध में विशेष विवरण निम्नानुसार है-

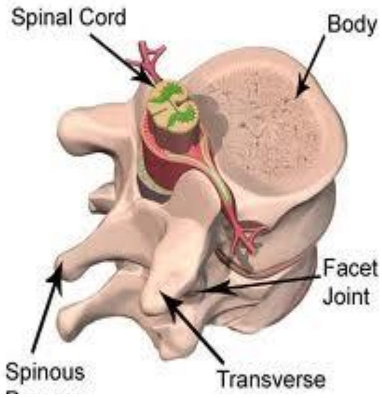


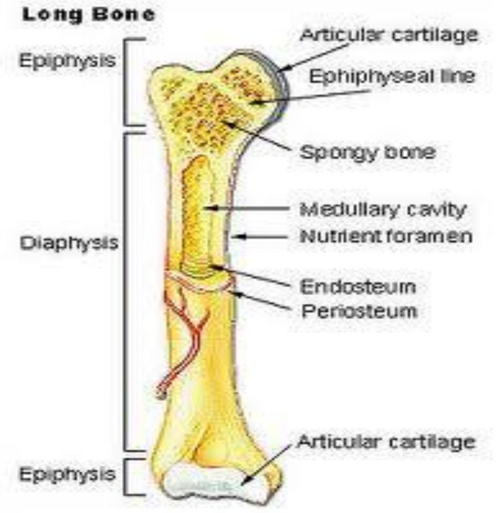

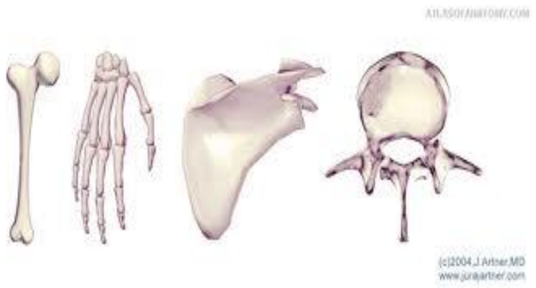

**TYPES OF BONE**

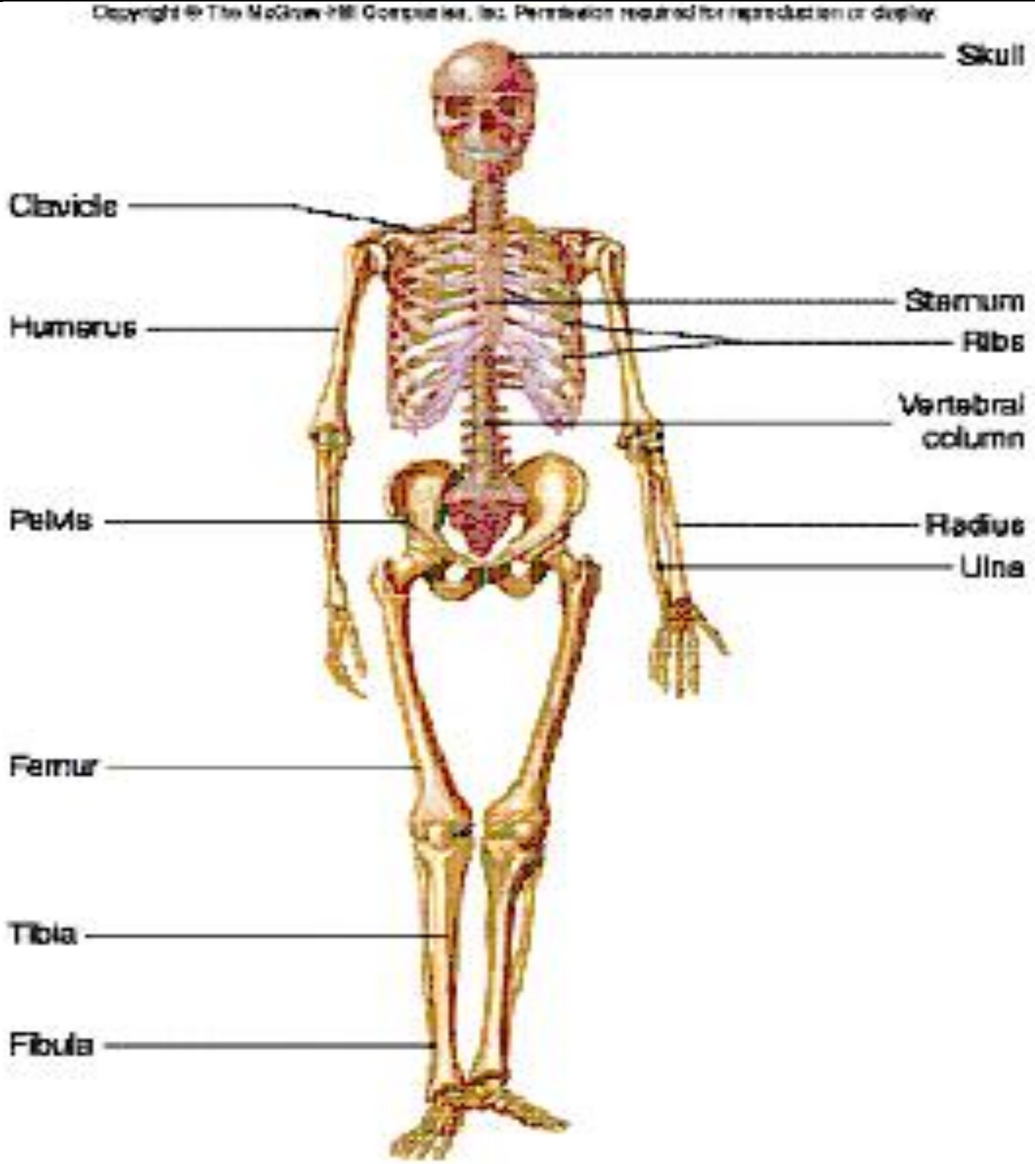


(v) खोपड़ी की अस्थियों में-

(1) मस्तिष्क (Cravium) भाग में 8

(2)चेहरे(Face)में 14

(c) धड़ की हड्डियों में

(1)दोनोंओरकीपसलियोंमें 24

(2) छाती (Sternum) में 1

| | |
|---|---|
| (3) अक्षकास्थियाँ अथवा हंसली की हड्डियाँ (Clavicle) | 2 |
| (4) स्कन्धास्थि अथवा कंधे की हड्डी (Shoulder Blade or Scapulla) | 2 |
| (5) श्रोणी मेखला (Hip Girdle) | 2 |
| (6)कशेरूकाऐं(Vertebra) | 33 |

(l) भुजाओं की हड्डियों में-

| | |
|---|---|
| (1) प्रगण्डास्थिया¡ (Humerus) | 2 |
| (2) अन्तः प्रकोष्ठास्थियाँ (Ulna) | 2 |
| (3) बहिःप्रकोष्ठास्थिया (Radius) | 2 |
| (4)मणिबन्धकीअस्थियाँ(CorpalBones) | 16 |
| (5)शलाकास्थियाँ(Metacarpals) | 10 |
| (6)अंगुलास्थियाँ(Phalanges) | 28 |

(n) टाँगों की हड्डियों में-

| | |
|---|---|
| (1) उर्ध्वविकास्थियाँ (Femur) | 2 |
| (2) जानुवस्थियाँ (Knee Cap, Patella) | 2 |
| (3) अन्तर्जघि (Tibia) | 2 |
| (4) वहिर्जघि (Fibula) | 2 |
| (5)गुल्फास्थियाँ(Tarsals) | 14 |
| (6)अनुगुल्फास्थियाँ(Metatarsals) | 10 |
| (7)अंगुलास्थियाँ(Phalanges) | 28 |
| कुलयोग | **206** |

## 2.9 महत्वपूर्ण संधियां

मानव शरीर की महत्वपूर्ण सन्धियॉं इस प्रकार हैं।

(अ) तन्तुमय संधियॉं (**Fibrous joints**)

(ब) उपस्थिमय संधियॉं (**Cartilaginous joints**)

(स) साइनोवियल संधियाँ (**Synovial joints**)

(अ) तन्तुमय संधियां – सामान्यत: तन्तुमय संधियॉं तीन प्रकार की होती है - स्यूचर्स, सिण्डेस्मोसिस एवं गोम्फोसिस

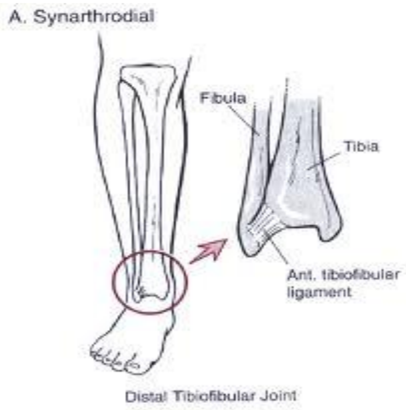


स्यूचर्स कपाल में पाई जाने वाली अचल संधि है सीमित गति वाली सिण्डेस्मोसिस सन्धियां एवं गोम्फोसिस संधियां कील या खूंटी और गर्त की बनी होती है उदाहरण के लिए दन्तमूल के दन्तबोटर में उसकी अस्थियॉं सॉकेट में अवस्थित होने पर बनती है।

(ब) उपस्थिमय संधियॉं – इस प्रकार की सन्धियॉं में अल्पगति होती है अथवा बिल्कुल भी गति नहीं होती है। वर्टिब्री काय, मेन्यूब्रियम के मध्य और स्टर्नम काय आदि में उपस्थिजन्य संधियां पाई जाती है।

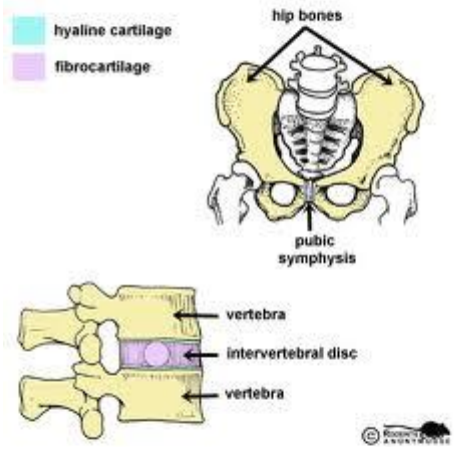


**(स) साइनोवियल संधियां –**

शरीर की अधिकांश स्थायी सन्धियॉं साइनोवियल होती है।

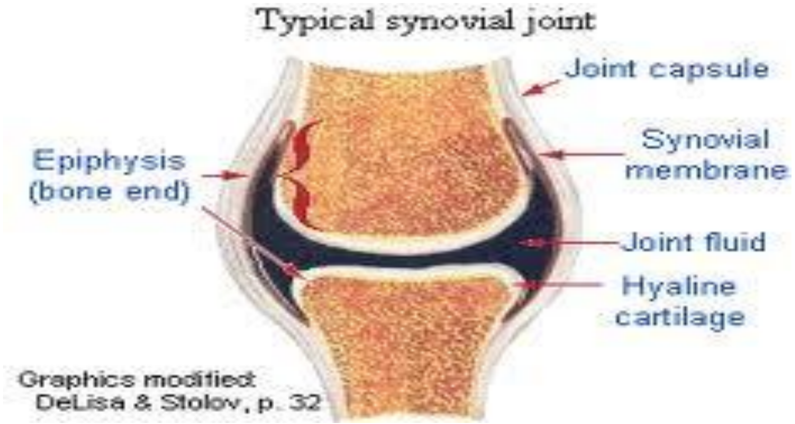


अस्थियों के सिरे एक पतली चिकनी सन्धि बनाने वाली उपस्थि से ढके रहते हैं। इनकी संधि गुहा में साफ, गाढ़ा लसलसा तैलीय द्रव पदार्थ भरा रहता हैं। इस द्रव के कारण सन्धि चिकनी बनी रहती है। ये सन्धियां शरीर की अधिकतर स्थायी सन्धियों का निर्माण करते हैं। इनके उदाहरण कोहनी, घुटने, टखने, जबोड़, अंगुलि आदि की सन्धियां है।

**अभ्यास प्रश्न –**

**1. रिक्त स्थानों की पूर्ति –**

(क) सम्पूर्ण शरीर में छोटी-बड़ी अस्थियों की कुल संख्या.............हैं।

(ख) अस्थियों का निर्माण में.............प्रतिशत सजीव पदार्थ एवं...........प्रतिशत खनिज पदार्थ पाया जाता है।

(ग) पसलियॉं ............जोड़ी होती है।

(घ) छाती की अस्थि..............कहलाती है।

(ड.) सन्धियॉं.................प्रकार की होती है।

2. सत्य/असत्य बताइये -

(क) रक्त का निर्माण अस्थि मज्जा में होता है।

(ख) साइनोवियल संधियां सम्पूर्ण शरीर की अविनाशत: स्थायी संधि का निर्माण करती हैं।

(ग) तन्तुमय संधियां चल संधियां हैं।

## 2.10 सारांश

आपने पढ़ा कि अस्थि संस्थान न केवल गति प्रदान करने, ढांचा देने अथवा स्थिरता देने का कार्य करता है बल्कि यह कोमल अंगों को जैसे मस्तिष्क, हृदय, आंते आदि को सहारा एवं संरक्षण प्रदान करता है। अस्थि संस्थान शरीर को आधार होने के साथ जीवन का भी आधार होता है। अस्थियों का निर्माण सजीव पदार्थो तथा खनिज पदार्थों के मेल से होता है। अस्थियों के जोड़ों में ही रक्त का निर्माण सम्भव हो पाता है। अत: कंकाल तंत्र अन्य तंत्रों को सहारा देता है एवं मांसपेशीय संस्थान एवं रक्त से सीधा इसका सम्बन्ध होता है।

## 2.11 शब्दावली

समस्थिति – एक समान स्थिति

कार्बनिक पदार्थ – कार्बन युक्त पदार्थ

अस्थि – हड्डी

पंजर – पिजड़ा

संस्थान – तन्त्र

ऊतक – कोशिकाओं का समूह

सन्धि – मिलना, मिलाना, दो हड्डियों को जुड़ने का स्थान

जानु – घुटना

## 2.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

### 1. रिक्त स्थानों की पूर्ति

(क) 206

(ख) 33.30%, 66.70%

(ग) 12

(घ) वक्षोस्थि

(ड.) तीन

**2. सत्य/असत्य**

(क) सत्य

(ख) सत्य

(ग) असत्य

## 2.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।

2. गौढ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।

3. प्रकाश, ऐ0 (1998) अ टेक्स्ट बुक ऑफ एनाटॉमी एण्ड फिसियोलॉजी, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली।

4. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।

5. पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शारीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।

6. वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली

7. दीक्षित, राजेश ( 2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन,मथुरा

8. सक्सेना, ओ0 पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन,मथुरा

9. अग्रवाल, जी0सी0 (2010) मानव शरीर विज्ञान, एक्युप्रेशर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार संस्थान, इलाहाबाद

10. Chaurasia's B.D (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.

## 2.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. कंकाल तंत्र के कार्य एवं अस्थियों के आकार की चर्चा कीजिए।

2. अस्थियों के संगठनात्मक विवरण के साथ मुख्य संधियों की चर्चा कीजिए।

# इकाई- 3 पेशीय तन्त्र की रचना व कार्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 मांस-संस्थान अथवा पेशीय तंत्र-एक परिचय

3.3.1 पेशियों का नामकरण

3.3.2 पेशियों का उद्गम एवं निवेशन

3.3.3 पेशियों की बनावट

3.4 मांसपेशियों के भेद

3.4.1 ऐच्छिक पेशियां

3.4.2 अनैच्छिक पेशियां

3.5 पेशियों के कार्य एवं गतियां

3.6 शरीर की मुख्य पेशियां

3.7 सारांश

3.8 शब्दावली

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

## 3.1 प्रस्तावना

मानव शरीर का ढॉंचा अस्थियों से बना होता है, जो कि अलग-अलग आवृति की होने के कारण शरीर के अलग-अलग हिस्सों को सहारा, सुरक्षा एवं गति प्रदान करती हैं। अस्थि मज्जा में रक्त कोशिकाओं का निर्माण होता है। उपरोक्त सभी जानकारी आपने पिछली इकाई में अर्जित की है। इस इकाई में आप पेशीय संस्थान के विषय में पढ़ेगे। मानव ढॉंचा अस्थियों से बना होता है, जिसमें अस्थियॉं लीवर की भांति कार्य करती है, परन्तु पेशियां उन्हें गति करने की शक्ति प्रदान करती हैं। पेशियों के सिकुड़ने एवं फैलने की क्रिया अस्थि संस्थान पर सीधे प्रभाव डालती है। आगे आप जान पायेंगे कि किस प्रकार पेशियां शरीर में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

## 3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- मांस संस्थान अथवा पेशी तन्त्र के विषय में सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- पेशियों का नामकरण कर सकेंगे।
- पेशियों के उद्भव एवं निवेशन के विषय में विस्तार से जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- पेशियों की बनावट के बारे में विस्तारपूर्वक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- मांसपेशियों के भेदों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- पेशियों के विभिन्न कार्यो एवं गतियों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- शरीर की मुख्य पेशियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- ऐच्छिक पेशियों की संरचना एवं कार्यों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- अनेच्छिक पेशियों की संरचना एवं कार्यों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में दिए गए प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे।

## 3.3 मांस-संस्थान अथवा पेशीय तन्त्र (Muscular System) – एक परिचय

कोशिकाओं (Cells) तथा उनके समूह-ऊतकों (Tissues) द्वारा ही शरीर के विभिन्न अवयवों का निर्माण होता है। मांसपेशियों की रचना भी उन्हीं की देन है। मांसपेशी के प्रत्येक तन्तु में कितनी ही कोशिकाऐं होती हैं।

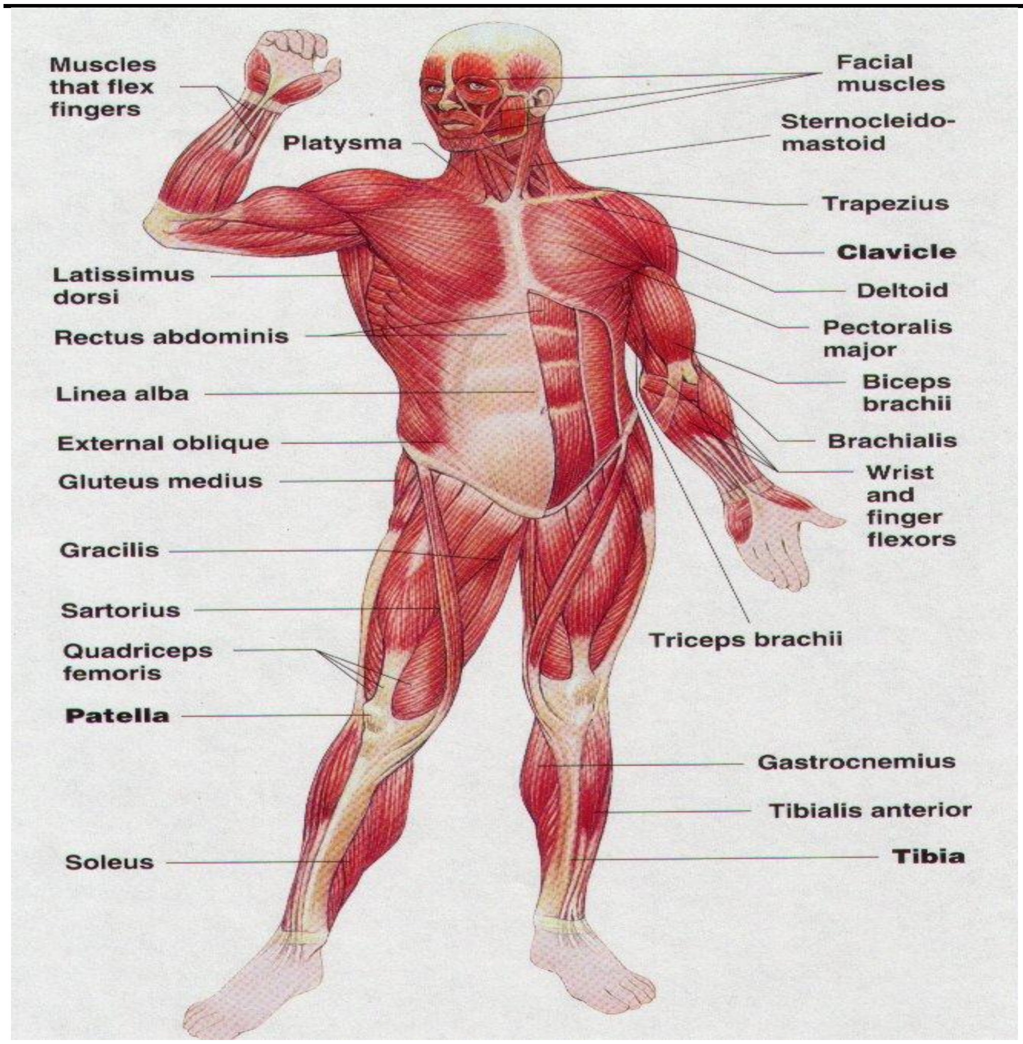


मनुष्य शरीर का अधिकांश बाह्यान्तर भाग मांसपेशियों से ढँका रहता है। शरीर का ऊपरी ढाँचा तो पूर्णतः ही मांसाच्छादित होता है। इसी आच्छादन के कारण शरीर सुन्दर तथा सुडौल दिखाई देता है।

'मांसपेशियां' अथवा 'मांस' एक लसदार समूह का नाम है। मांसपेशियां या तो मांस का गुच्छा होती हैं अथवा एक-एक मांस-सूत्र होती हैं। इन पेशियों में 'संकोचन' का विशेष गुण होता है] जिसके कारण हम अपने हाथ-पाँव] सिर आदि शारीरिक अवयवों को विभिन्न दिशाओं में सरलतापूर्वक घुमा सकते हैं तथा उनसे विभिन्न काम भी लेते हैं। जैसे-मुँह को खोलना और बन्द करना हाथों से लिखना पाँवों से चलना आदि। हृदय का धड़कना आँखों की पुतलियों का सिकुड़ना और फैलना तथा भोजन को चलाकर गले से नीचे उतरना आदि कार्य भी इन्हीं के कारण सम्पन्न होते हैं।

**3.3.1 पेशियों का नामकरण** – पेशियों के नाम उनके कार्य के आधार पर, बनावट के आधार पर, शरीर में उनकी स्थिति एवं उनके तन्तुओं की दिशा के आधार पर रखा जाता है। उदाहरण के लिये स्थिति के आधार पर External intercostals and Internal intercostals पेशियों के नाम रखे गये हैं, आकृति के आधार डेल्टाइड (Deltoid

muscle) जो कि डेल्टा (लिलोगाकार) आकार की है। कार्य के अनुसार पेशियों के नामकरण का उदाहरण बांह की पेशी Flexor Pollicis longus नामक पेशी है।

### 3.3.2 उद्गम एवं निवेशन

(अ) उद्गम – उद्गम का अर्थ है पेशी का वह सिरा जो पेशीय संकुचन के होने पर स्थिर अवस्था में होता है। यह सिरा अस्थि के जिस हिस्से पर जुड़ा रहता है उस स्थल अथवा सम्बन्धित स्थान को उद्गम स्थल कहते हैं। पेशी का उद्गम सामान्यत: अक्षीय कंकाल के अधिक समीप रहता है। पेशियों के कार्य के अनुसार उनके उद्गम स्थल परिवर्तित होते है।

(ब) निवेशन – पेशी का निवेशन से तात्पर्य पेशी के गतिशील हिस्से से है। अस्थि के सम्बन्ध में बात करें तो निवेशन अक्षीय कंकाल के दूरस्थ जुड़ाव से सम्बन्धित है।

**3.3.3 पेशियों की बनावट –** पेशियों की बनावट उनके तन्तुओं के विभिन्न आकारों में व्यवस्थित होने के कारण होती हैं पेशियों की शक्ति, गतिशीलता, स्थिरता, लचीलापन आदि तन्तुओं के विभिन्न व्यवस्थाओं के फलस्वरूप होता हैं। पेशी का मध्य भाग अधिक लम्बा होने से गति भी अधिक होगी। पेशियां मोटी होने से शक्ति भी अधिक होगी। पेशियां विभिन्न आकार प्रकार की होती है जैसे गोलाकार पेशी मुख की ओखीक्यूलस ओरिस ऑंखों की ओखक्यिूलेरिस ओक्यूलाइ, स्ट्रेप देशी का उदाहरण गर्दन की स्टर्नोहाइयौइड पेशी, फ्यूजीफॉर्म पेशी तकले के आकार की होती है जिसका उदाहरण बाइसेप्स पेशी है, पीनेट पेशी पंख के आकार की होती है। इसका उदाहरण अंगूठे की पेशियां, टांग की रेक्टरस फीमोरिस पेशी आदि।

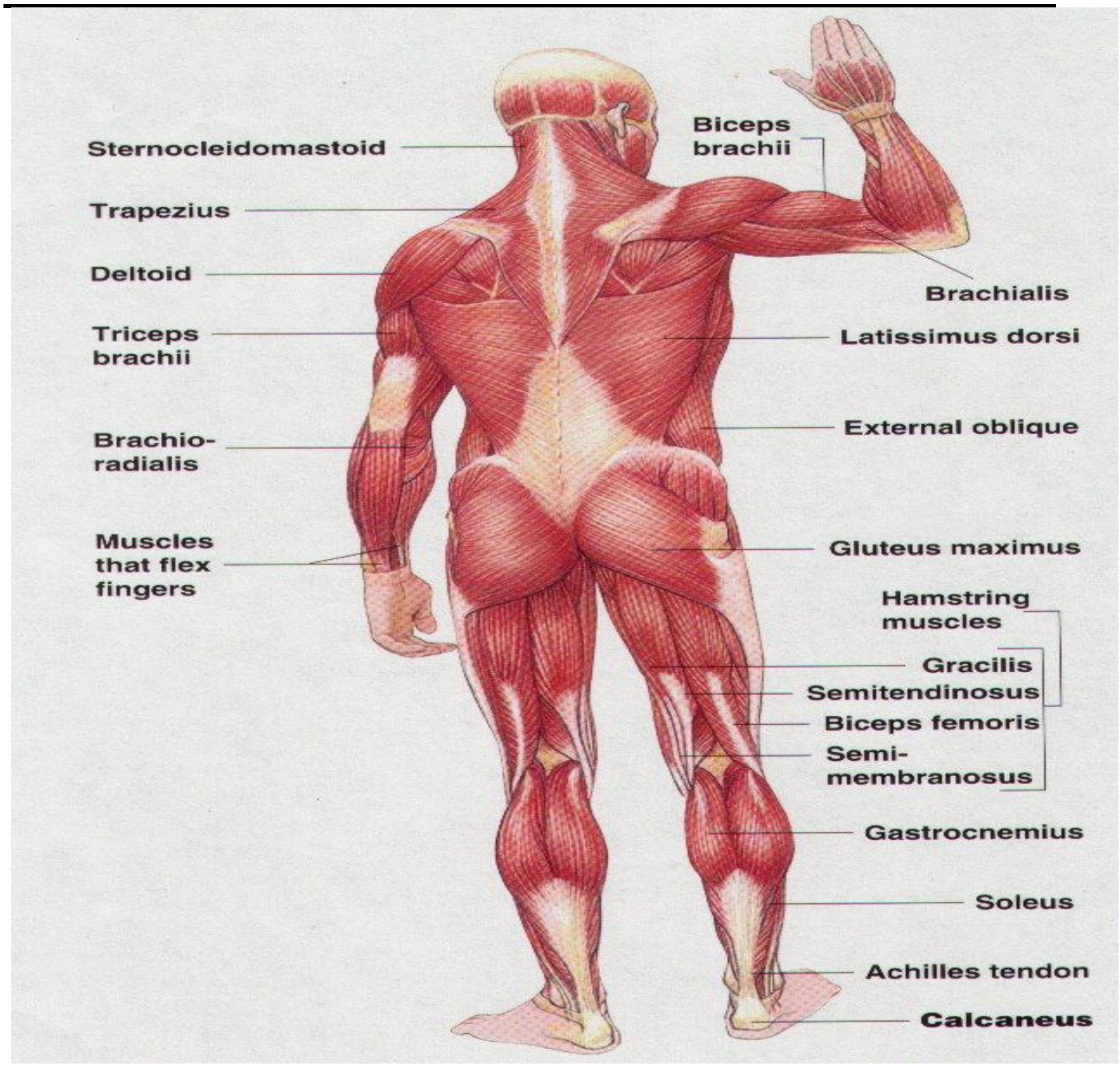


## 3.4 मांसपेशियों के भेद

मनुष्य शरीर में छोटी-छोटी कुल 519 मांसपेशियाँ पाई जाती हैं। इनके निम्नलिखित दो भेद माने गये हैं-

(1) ऐच्छिक (Voluntary)

(2) अनैच्छिक (Non-voluntary)

**3.4.1** 'ऐच्छिक' अथवा 'पराधीन' मांसपेशिया वे होती हैं, जो मनुष्य की इच्छानुसार कार्य करती हैं। उनका प्रयोग करना अथवा न करना मनुष्य की अपनी इच्छा पर निर्भर करता है। जैसे- हाथ-पाँव आदि की मांसपेशियाँ।

**3.4.2** 'अनैच्छिक' अथवा 'स्वाधीन' मांसपेशियाँ होती हैं, जो स्वतंत्र रूप से अपना कार्य करती रहती हैं तथा मनुष्य उन्हें अपनी इच्छानुसार नहीं चला सकता।

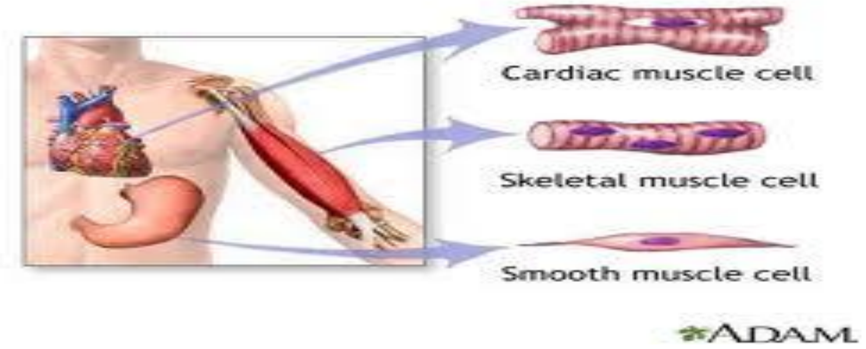


ये पेशिया अपना कार्य दिन-रात निरंतर करती ही रहती हैं। जैसे-हृदय, श्वसन-संस्थान, अग्न्याशय, आँत, अन्ननली तथा तिल्ली आदि की मांसपेशियों के कार्य।

मांसपेशियाँ जितनी सुदृढ़ होती हैं मनुष्य का शरीर भी उतना ही सुगठित, सुन्दर तथा शक्तिशाली होता है। इनके द्वारा शरीर को उष्णता भी प्राप्त होती है।

## 3.5 पेशियों के कार्य एवं गतियां

पेशियों के क्रियात्मक होने के कारण ही शरीर में गति सम्भव हो पाती है। कंकालीय पेशियां शरीर के विभिन्न भागों में गति लाने के लिये अकेले कार्य न करके समूहों में कार्यरत रहती है।

पेशी की क्रिया के अन्तर्गत पेशियों का संकुचन महत्वपूर्ण घटना है ।

पेशी का संकुचन पेशी का विशेष गुण है। स्नायु आवेगों के कारण पेशीय संकुचन होता है। पेशीय तन्तुओं के संकुचन के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है और ये ऊर्जा आहार के पाचन के फलस्वरूप उत्पन्न ऊर्जा से प्राप्त होती है। प्रतिवर्ष क्रिया भी पेशियों की विशेष गति है। संवेदनाएं अथवा उद्दीपन पेशियों के माध्यम से मस्तिष्क तक पहुँचते हैं एवं उसके पश्चात् मस्तिष्क से पेशियों तक प्रेरणा से आकार कार्य हेतु पेशियों को उत्प्रेरित करते हैं। कभी-कभी संवेग मस्तिष्क में न जाकर मेरूरज्जु में जाते है एवं वहीं से प्रेरणा पाकर कार्य करते है इस क्रिया को प्रतिवर्ती क्रिया कहते है।

## 3.6 शरीर की मुख्य पेशियां

अब आप शरीर की मुख्य पेशियों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे –

**(A) सिर की पेशियां (Muscles of the head)**

हाव भाव की पेशियां – गोलाकार पेशियों ऑर्बिकुलेरिस ऑक्यूलाइ और ऑबिकुलेरिस ऑरिस क्रमश: ऑंखों की पेशियों एवं मुख की पेशियां हैं।

भौहों और पलकों, मुँह के कोणों की हिलाने वाली छोटी पेशियां हैं।

**(B) चेहरे की पेशियां (Facial Muscles) –**

1. ऑक्सीपिटोफ्रन्टैलिस पेशी – यह ललाट एवं ऑंखों के उपरी भाग का निर्माण करती है।

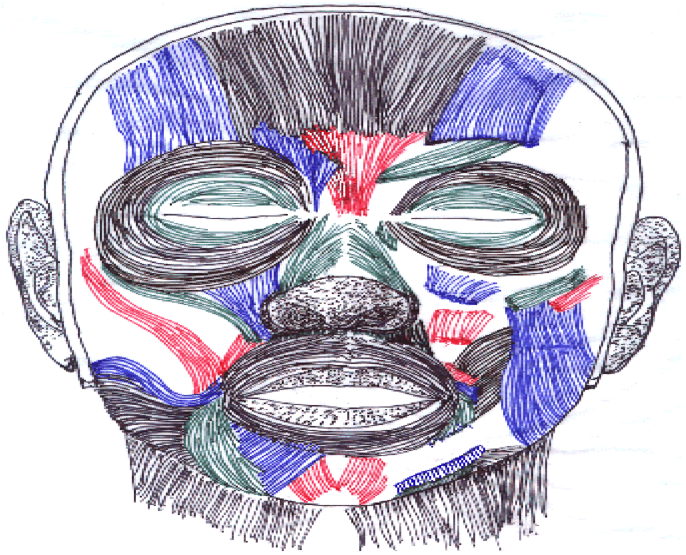

2. ऑर्बिकुलेरिस ऑक्यूलाइ (Orbicularis oculi) पेशी – यह गोलाकार पेशी ऑंखों को खोलने और बन्द करने का कार्य करती है, एवं ऑंखों को गोल-गोल घुमाते है।

3. आर्म्बिकुलेरिस ऑरिस (Orbicularis oris) – यह भी गोलाकार पेशी हैं एवं मुख के चारों ओर स्थित होती हैं।

4. बाक्सीनेटर पेशी (Buccinator muscle) – यह चपटी पेशी है एवं दोनों जालों का निर्माण करती है।

5. मैसेटर पेशी (Master muscle) – यह जबड़े की पेशी है। यह चबाते समय जबड़े को उपर उठाने का कार्य करती है। इसी प्रकार टेम्पोरेलिस पेशी (Temporalis) एवं टैरिगॉयड पेशी (Pterygoid) की भोजन चबाते समय विभिन्न क्षेणों से जबड़े को सहायता देते है।

**(C) गर्दन की पेशियॉं (Neck muscles) -** गर्दन की पेशियों में स्टर्नोहायाइड पेशी (sternohyoid muscle) हाऑइड अस्थि को नीचे करने का कार्य करती है। प्लेटिज्मा पेशी के संकेचन के फलस्वरूप गर्दन में झुर्रियां पड़ जाती है एवं मुख कोणनुमा हो जाता है। ट्रेपीजियस पेशी जोकि पीठ को पेशी है, ग्रीवा के निर्माण में भाग लेती है।

**(D) वक्ष भाग की पेशियॉं (Trunk muscles)** – इसमें बाहों की पेशी पेक्टॅारेलिस मेजर (Pectoralis major) तथा इसी पेशी के नीचे स्थित पेक्टॅारेलिस माइनर (pectoralis minor) जो स्कैपुला अस्थि को नीचे की ओर खींचती है। स्कैपुला को आगे और बाहर की ओर खींचने

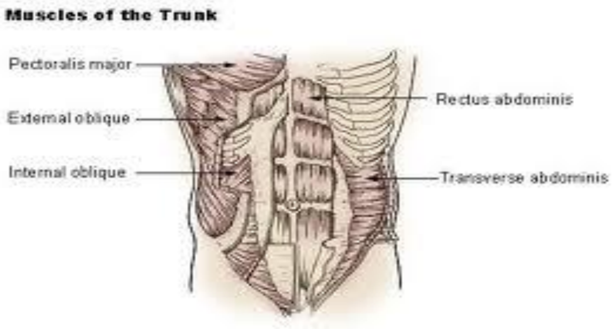


का कार्य सिरेटस एनटीरियर (Serratus anterior) नामक पेशी करती है। वक्ष स्थल की पेशियों में बहुत महत्वपूर्ण पेशी डायफ्राम पेशी हैं। यह वक्ष स्थल और उदर क्षेत्र को अलग करती है। इसी पेशी के कारण फेफड़ों में वायु भर पाती है। इनमें बाहय इन्टरकॉस्टल पेशी व आन्तरिक इन्टरकॉस्टल पेशी सम्मिलित होती है।

**(E) पीठ की पेशियॉं (Back muscles) -** पीठ के उपरी भाग एवं निचले भाग की चौड़ी और सपाट पेशी क्रमश: ट्रेपीजियस (Trapezius muscles) एवं लेटिसीमस डासीई (Latissimus dorsi muscle) पी की पेशी में रोहम्बॉपडियस और लीवेटर स्कैपुली पेशियां प्रमुख हैं जिनका निवेशन उपरी भुजा की अस्थियों पर होता है। पीठ की पेशियों में कुछ अति प्रमुख पेशियों के अन्तर्गत श्वसन में भाग लेने वाली पेशी सीरेटस पोस्टीरियर सुपीरियर पेशी है एवं सलेनियस पेशी सिर के प्रसार एवं सैक्रोस्पाइनैलिस पेशी का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है यह वर्टिबल कॉलम को प्रसारित करती है, दूसरा नाम रेक्टस स्पाइनैलिस (Rectus spinalis) भी है।

**(F) भुजा की पेशियां** – इसके अन्तर्गत बाइसेप्स ब्रैकिएलिस पेशी (Biceps branchi muscles), डेल्टाइड पेशी (Deltoid muscles) सुप्रास्पाइनेटस पेशी, सबल्कैपुसेरिस पेशी, टिमीण मेजर पेशी, टेरीसमाइनर पेशी, ब्रैकियोरेडिएलिस पेशी, कोरेकोब्रैकिएलिस पेशी आती है।

**(G) श्रोणिगत पेशियां (Pelvic muscles) –** इसमें लीवेटर एनाई पेशियां (levator ani muscles), कौक्सिजाई पेशियां (Coccygeimusles) सम्मिलित हैं।

**अभ्यास प्रश्न**

**1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए**

(क) मानव शरीर में छोटी-बड़ी कुल..........पेशियां पाई जाती है।

(ख) पेशियों का...........पेशी का विशेष गुण है।

(ग) पेशियों का.........भाग लम्बा होने से गति भी अधिक होगी।

(घ) तक्षीय गुहा और रूदर गुहा को अलग करने वाली पेशी का नाम..........है।

**2. सत्य/असत्य बताइए**

(क) पेशियों का उद्गम स्थल अक्षीय के नाल के अधिक समीप रहता है।

(ख) पेशियों के कार्य के अनुसार उनके उद्गम स्थल परिवर्तित होते हैं।

(ग) मैसेटर पेशी कंधे की पेशी है।

## 3.7 सारांश

मानव का मॉसपेशीय संस्थान शरीर की समस्त क्रियाओं के लिए उत्तरदायी है। मानव शरीर का कोई भी अंग मॉसपेशियों का समूह है। शरीर में कुछ पेशीयां ऐसी होती है जिन पर हमारा नियंत्रण होता है उन्हें हम इच्छानुसार नियंत्रित तथा संवर्धन कर सकते है कुछ ऐसी पेशियॉ है जिन पर हमारा नियंत्रण नहीं होता वह स्वत: ही अपना कार्य करती है। शरीर की समस्त गतियों के लिए इस संस्थान का महत्व है। पेशियॉ शरीर को गति ही प्रदान नहीं करती अपितु शरीर को एक सुन्दर आकार भी प्रदान करती है। पेशियों में जब संकुचन होता है तो प्रतिवर्ती क्रिया द्वारा हमारा शरीर कार्य करता है। प्रतिवर्ती क्रिया के फलस्वरूप किसी गम्भीर परिणाम से बचा जा सकता है।

## 3.8 शब्दावली

- अस्थि मज्जा – अस्थि की केन्द्रीय मेड्यूलरी नलिका में तथा सुसिर अस्थि के बीच-बीच के रिक्त स्थानों में कोशिकामय वाहिकामय ऊतक विद्यमान रहते हैं। इन सभी को संयुक्त रूप से अस्थि मज्जा कहते हैं।
- डायफ्राम – यह वक्षीय गुहा एवं उदरीय गुहा के बीच उन्हें पृथक करने वाली गुम्बद के आकार की चौड़ी पेशी है।
- अवयव – तत्व
- आच्छादन – ढकना
- ऐच्छिक पेशी – जिस पेशी को इच्छानुसार गति दी जा सकती है।
- अनैच्छिक पेशी – जिस पेशी को इच्छानुसार गति नहीं दी जा सकती है।

## 3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1. रिक्त स्थानों की पूर्ति**

(क) 519

(ख) संकुचन

(ग) मध्य

(घ) डायक्राम

**2. सत्य/असत्य बताइए**

(क) सत्य

(ख) सत्य

(ग) असत्य

## 3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।

2. गौढ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।

3. प्रकाश, ऐ0 (1998) अ टेक्स्ट बुक ऑफ एनाटॉमी एण्ड फिसियोलॉजी, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली।

4. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।

5. पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शारीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।

6. वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली

7. दीक्षित, राजेश ( 2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन,मथुरा

8. सक्सेना, ओ0 पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन,मथुरा

9. Chaurasia’s B.D (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.

## 3.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. पेशियों का भेद सहित वर्णन करते हुए कार्य एवं गति की व्याख्या कीजिए।

2. शरीर की मुख्य पेशियों का वर्णन कीजिए।

# इकाई 4 - रक्त परिसंचरण तंत्र की रचना व कार्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 रक्त परिसंचरण अथवा परिवहन तंत्र: एक परिचय

4.4 रक्त विश्लेषण

4.4.1 प्लाज्मा

4.4.2 रक्त कणिकाऍं

4.5 रक्त के कार्य

4.6 रक्त संचरण में सहायक प्रमुख अवयव

4.6.1 हृदय

4.6.2 धमनियॉं

4.6.3 शिराएँ

4.6.4 कोशिकाएं तथा लसिकाऍं

4.6.5 फेफड़े

4.6.6 महाधमनी तथा महा-शिरा

4.7 सारांश

4.8 शब्दावली

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

## 4.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में आपने मांस संस्थान अथवा पेशी तंत्र के विषय में सम्पूर्ण ज्ञान अर्जित किया। आपने जाना कि किस प्रकार पेशियॉं शरीर को गति प्रदान करती हैं। किस प्रकार की पेशी कौन सा कार्य सम्पादित करती है यह आपने पढ़ा। इसके साथ ही एच्छिक व अनैच्छिक पेशियों के विषय में आपने विस्तार से समझा और जाना।

इस इकाई में आप रक्त परिसंचरण अथवा परिवहन तंत्र के विषय में जानेंगे और पढ़ेंगे। आप जानेंगे कि किस प्रकार रक्त परिसंचरण तंत्र हृदय, धमनियॉं, शिराओं आदि के द्वारा रक्त को पूरे शरीर में प्रवाहित करता है व साथ ही दूषित रक्त को किस प्रकार शुद्धिकरण के लिए भेजता है। रक्त शरीर का एक महत्वपूर्ण अवयव है प्रस्तुत इकाई में रक्त के विविध अवयवों को भी आपके अवलोकनार्थ वर्णन किया जा रहा है।

## 4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- रक्त संचरण अथवा परिवहन तंत्र के विषय में एक सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- रक्त विश्लेषण के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- रक्त विश्लेषण में मिश्रित पदार्थो का विस्तारपूर्वक वर्णन कर सकेंगे।
- रक्त विश्लेषण में मिश्रित पदार्थो के उपभागों के मुख्य कार्यो के बारे में ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- रक्त के प्रमुख कार्यो का भली-भॉति वर्णन कर सकेंगे।
- रक्त संचरण में सहायक प्रमुख अवयवों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- हृदय की संरचना एवं कार्यो का अध्ययन करेंगे।
- धमनियों की संरचना एवं कार्यो की विवेचना कर सकेंगे।
- शिराओं की संरचना एवं कार्यो को जान सकेंगे।
- कोशिकाओं तथा लसिकाओं की संरचना एवं कार्यो का विश्लेषण कर सकेंगे।
- महाधमनी तथा महाशिरा की कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से वर्णन कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में दिए गए प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे।

## 4.3 रक्त संचरण अथवा परिवहन-तन्त्र : एक परिचय

शरीर के भीतर जो एक लाल रंग का द्रव-पदार्थ भरा हुआ है, उसी को ‘रक्त’ (Blood) कहते हैं। इसे जीवन का रस भी कहा जा सकता है। यह संपूर्ण शरीर में निरन्तर भ्रमण करता तथा अंग-प्रत्यंग को पुष्टि प्रदान करता रहता है। जब तक शरीर में इसका संचरण रहता है तभी तक प्राणी जीवित रहता है। इसका संचरण बन्द होते ही व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है।

सामान्यतः मनुष्य शरीर में रक्त की मात्रा 5-6 लीटर होती है। एक अन्य मत के अनुसार मनुष्य के शारीरिक भार का 20वॉं भाग रक्त होता है। रक्त पूरे शरीर में दौड़ता रहता है। परिसंचरण तंत्र में मुख्य रूप से हृदय, फेफड़े, धमनी व शिरा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हमारा हृदय एक पम्पिंग मशीन की तरह कार्य करता है जो अनवरत अशुद्ध रक्त को फेफड़ों में शुद्ध करने तथा फिर शुद्ध रक्त को पूरे शरीर में भेजता रहता है। प्रिय विद्यार्थियों रक्त परिसंचरण की यह प्रक्रिया जीवन भर चलते रहती है। आपके समक्ष अब कुछ प्रश्न होंगे-

- रक्त क्या है ?
- रक्त के मुख्य अवयव क्या है ?
- रक्त कणिकाऐं कितनी होती है ?

- ➢ रक्त की शरीर में क्या जरूरत है और इसके कार्य क्या है ?
- ➢ रक्त परिवहन तन्त्र में हृदय की क्या भूमिका है ?
- ➢ धमनी व शिरा की क्या उपयोगिता है ?
- ➢ महाधमनी व महाशिरा की क्या कार्यप्रणाली है ?

प्रस्तुत इकाई को पढने के उपरान्त उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर जानने में सक्षम हो जावोंगे।

## 4.4 रक्त-विश्लेषण

रक्त का आपेक्षिक गुरूत्व 1.065 होता है। मनुष्य शरीर के भीतर इसका तापमान 100 डिग्री फा.हा. रहता है, परन्तु रोग की हालत में इसका तापमान कम अथवा अधिक भी हो सकता है। इसका स्वाद कुछ 'नमकीन' सा होता है। इसका कुछ अंश तरल तथा कुछ गाढ़ा होता है। रक्त में निम्नलिखित पदार्थों का मिश्रण पाया जाता है।I

- प्लाज्मा (Plasma)
- रक्त कणिकाएँ (Blood Corpuscles)

इनके विषय में विस्तारपूर्वक विवरण निम्नानुसार है-

**4.4.1 प्लाज्मा** (Plasma) यह रक्त तरल अंश है। इसे 'रक्त-वारि' भी कहते हैं। यह हल्के पीले रंग की क्षारीय वस्तु है। इसका आपेक्षिक घनत्व 1.026 से 1.029 तक होता है।

100 सी.सी. प्लाज्मा में निम्नलिखित वस्तुएँ अपने नाम के आगे लिखे प्रतिशत में पायी जाती हैं-

| | |
|---|---|
| (1) पानी | 90% |
| (2) प्रोटीन | 7% |
| (3) फाइब्रीनोजिन | 4% |
| (4) एल्फा ग्लोब्युलिन | 0.46% |
| (5) बीटा ग्लोब्युलिन | 0.86% |
| (6) गामा ग्लोब्युलिन | 0.75% |
| (7) एलब्युमिन | 4.00% |
| (8) रस | 1.4% |
| (9) लवण | 0.6% |

इसके प्रोटीन तीन प्रकार के होते हैं-(1)एलब्युमिन, (2) ग्लोब्युलिप्स तथा (3)फाइब्रीनोजिन।

'प्लाज्मा' रक्त कणिकाओं को बहाकर इधर-उधर ले जाने का कार्य करता है तथा उन्हें नष्ट होने से बचाता है। यह रक्त को हानिकर प्रतिक्रियाओं से बचाता है, विशेष कर इसके 'एल्फा ग्लोब्युलिन' सहायक वस्तुओं को उत्पन्न करके रक्त को बाह्य-जीवाणुओं से बचाते हैं। किसी संक्रामक रोग के उत्पन्न होने पर रक्त में इनकी संख्या स्वतः ही बढ़ जाती है। इसका 'फाइब्रोनोजिन' रक्तस्राव के समय रक्त को जमाने का कार्य करता है, जिसके कारण उसका बहना रूक जाता है। प्रदाह तथा रक्तस्राव के समय यह एक स्थान पर एकत्र हो जाता है।

**4.4.2 रक्त-कणिकाएँ -** ये तीन प्रकार की होती हैं-

(1) लाल रक्त कण

(2) श्वेत

(3) प्लेटलेट्स

इनके विषय में अधिक जानकारी निम्न प्रकार है-

**(1) लाल रक्त कण-** ये आकार में गोल, मध्य में मोटे तथा चारों किनारों पर पतले होते हैं। इनका व्यास **1/3000** इंच होता है। इनका व्यास-आवरण रंगहीन होता है, परन्तु इनकी भीतर एक प्रकार का तरल द्रव भरा होता है, जिसे 'हीमोग्लोबिन' (Haemoglobin) कहते हैं। हीम (Heam) अर्थात् लोहा तथा 'ग्लोबिन' (Globin) अर्थात् एक प्रकार की प्रोटीन। इन दोनों से मिलकर 'हीमोग्लोबिन' शब्द बना है। ये रक्तकण, जिन्हें रक्त-कोषा (Blood Cell) कहना अधिक उपयुक्त रहेगा, लचीले होते हैं तथा आवश्यकतानुसार अपने स्वरूप को परिवर्तित करते रहते हैं।

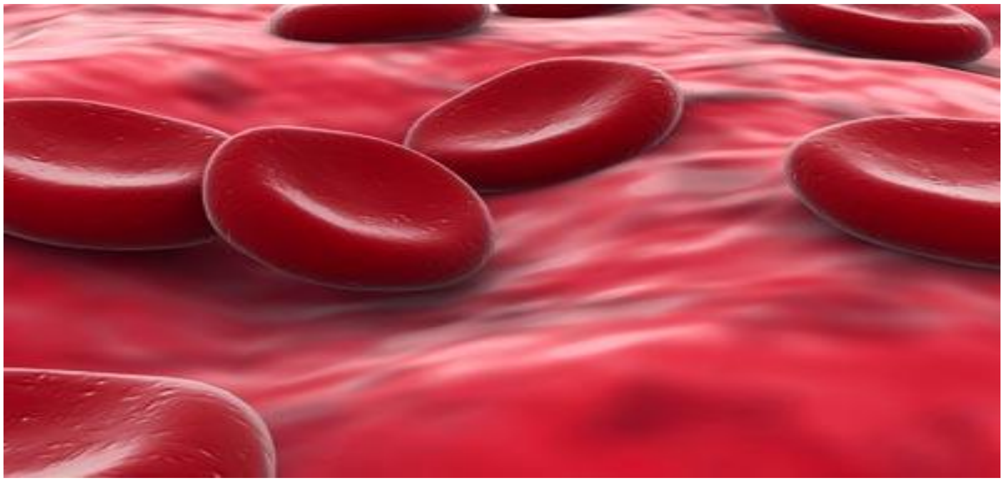

**Structure of R.B.C**

'हीमोग्लोबिन' की उपस्थिति के कारण ही इन रक्त कणों का रंग लाल प्रतीत होता है। हीमोग्लोबिन की सहायता से ये रक्त-फेफड़ों से ऑक्सीजन (Oxygen) अर्थात् प्राण वायु प्राप्त करके उसे शुद्ध रक्त के रूप में सम्पूर्ण शरीर में वितरित

करते रहते हैं, जिसके कारण शरीर को कार्य करने की शक्ति प्राप्त होती है। ऑक्सीजन युक्त हीमोग्लोबिन को (Oxy Haemoglobin) ऑक्सी हीमोग्लोबन कहा जाता है।

**(2) श्वेत रक्त कण-** ये रक्त कण प्रोटोप्लाज्म द्वारा निर्मित होते हैं। इनका कोई निश्चित आकार नहीं होता है। आवश्यकतानुसार इनके आकार में परिवर्तन भी होता रहता है। इनका कोई रंग नहीं होता अर्थात् ये सफेद रंग के होते हैं। लाल रक्त-कणों की तुलना में, शरीर में इनकी संख्या कम होती है। इनका अनुपात प्रायः **1:500** का होता है। एक स्वस्थ मनुष्य के रक्त की **1** बूँद में इनकी संख्या **5000** से **8000** तक पाई जाती है। इनका निर्माण अस्थि मज्जा (Bone Marrow)] लसिका ग्रंथियाँ (Lymph Glands) तथा प्लीहा (Spleen) आदि अंगों में होता है। रक्त के प्रत्येक सहस्रांश मीटर में जहाँ रक्त कणों की संख्या 500000 होती है वहाँ श्वेत कणों की संख्या 6000 ही मिलती है। इनकी लम्बाई लगभग 1/2000 इंच होती है तथा सूक्ष्मदर्शी यंत्र की सहायता के बिना इन्हें भी नहीं देखा जा सकता। इनका आकार थोड़ी-थोड़ी देर में बदलता रहता है। साथ ही दिन में कई बार इनकी संख्या में घट-बढ़ भी होती रहती है। प्रातः काल सोकर उठने से पूर्व इनकी संख्या 6000 घन मि.मी. होती है।

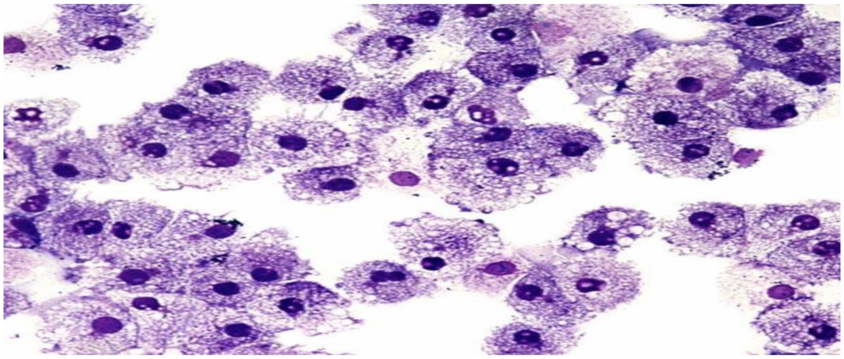

**Structure of W.B.C**

इन श्वेतकणों का कार्य शरीर की रक्षा करना है। बाहरी वातावरण से शरीर में प्रविष्ट होने वाले विकारों तथा विकारी-जीवाणुओं के आक्रमण के विरूद्ध ये रक्षात्मक ढंग से युद्ध करते हैं और उनके चारों ओर घेरा डालकर, उन्हें नष्ट कर डालते हैं। इसी कारण इन्हें शरीर-रक्षक (Body Guards) भी कहा जाता है। यदि दुर्भाग्यवश कभी इनकी पराजय हो जाती है तो शारीरिक-स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है और शरीर बीमारी का शिकार बन जाता है। परन्तु उस स्थिति में भी ये शरीर के भीतर प्रविष्ट होने वाली बीमारी के जीवाणुओं से युद्ध करते ही रहते हैं तथा अवसर पाकर उन्हें नष्ट कर देते हैं तथा पुनः स्वास्थ्य-लाभ कराते हैं। यदि रक्त में इन श्वेतकणों का प्रभाव पूर्णतः नष्ट हो जाता है तो शरीर की मृत्यु हो जाती है।

काम करते समय, भोजन के पश्चात्, गर्भावस्था में एवं एड्रीनलीन (Adrenaline) के इंजेक्शन के बाद शरीर में इन श्वेताणुओं की संख्या बढ़ जाती है। संक्रामक रोगों के आक्रमण के समय इनकी संख्या में अत्यधिक वृद्धि होती रहती है। न्यूमोनिया होने पर इनकी संख्या ड्योढ़ी वृद्धि तक होती हुई पाई गयी है। परन्तु इन्फ्रलुऐंजा में इनकी संख्या कम हो जाती है। रक्त में श्वेतकणों की संख्या में वृद्धि को श्वेतकण बहुलता (Leucocytosis) तथा ह्रास को श्वेतकण अल्पता (Leucopening) कहा जाता है।

संक्रामक रोगों के आक्रमण के समय ये श्वेतकण विषैले जीवाणुओं से लड़ने के लिए कोशिकाओं की दीवार से भी पार निकलकर बाहर चले जाते हैं, जबकि उस समय लाल रक्तकण नलिकाओं तथा कोशिकाओं में ही बने रहते हैं। इन श्वेतकणों के निम्नलिखित 6 भेद माने जाते हैं-

(1) पालीमार्फ (Polymorph)

(2) लसकायाणु (Lymphocytes)

(3) एक-कायाणु (Monocytes)

(4) उषसि प्रिय (Eosinophil)

(5) उभय प्रिय (Basophil)

(6) परिवर्तनशील (Transitional Leucocytes)

(3) प्लेटलेट्स :- प्लेटलेट्स को (Thrombcytes) थ्रोम्बोसाइट या बिम्बाणु भी कहा जाता है। इनकी उत्पत्ति अस्थि-रक्त मज्जा (Red Bone Marrow) में लोहित कोशिकाओं (MEGAKARYOCYTES) द्वारा होती है। इनका लगभग 2.5 (म्यू) होता है। इनकी संख्या लगभग 250,000 (150,000 से 350000) तक होती है। इनकी लगभग 1/10 संख्या प्रतिदिन बदलती रहती है और रक्त में नवीन आती रहती है1 इनके प्रमुख कार्य है।

(1) रक्त कोशिकाओं के अन्त:स्तर (endothelium) की क्षति की क्षतिपूर्ति।

(2) अवखण्डित होने पर हिस्टेमीन की उत्पत्ति करना।

(3) रक्त वाहिकाओं के अन्त:स्तर में अथवा ऊतकों में क्षति हो जाने पर, यदि रक्तस्राव की सम्भावना हो या स्राव हो रहा हो तो प्लेटलेट्स रक्त स्कन्दन की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

## 4.5 रक्त के कार्य

रक्त के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं-

- आहार- नलिका से भोजन तत्वों को शोषित कर, उन्हें शरीर के सब अंगों में पहुँचाना इस प्रकार उनकी भोजन संबंधी आवश्यकता की पूर्ति करना।

- फेफड़ों की वायु से ऑक्सीजन लेकर, उसे शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँचाना और ऑक्सीकृत किये हुए अंग ही शरीर को शक्ति प्रदान करते हैं।

- शरीर के प्रत्येक भाग से कार्बन डाई ऑक्साइड, यूरिया, यूरिक एसिड तथा गन्दा पानी आदि दूषित पदार्थों को अपने साथ लेकर उन अंगों तक पहुँचाना, जो इन दूषित पदार्थों को निकालने का कार्य करते हैं।

- शरीरस्थ निःस्रोत ग्रंथियों द्वारा होने वाले अन्तःस्रावों और ऑक्सीकृत किये हुए अंग ही शरीर को शक्ति प्रदान करते हैं।

- शरीरस्थ निःस्रोत ग्रंथियों द्वारा होने वाले अन्तःस्रावों (Horomones) को अपने साथ लेकर शरीर से विभिन्न भागों में पहुँचाना।

- संपूर्ण शरीर के तापमान को सम बनाये रखना।
- बाह्य जीवाणुओं के आक्रमण से शरीर के स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने हेतु श्वेत कणिकाओं को शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचाते रहना।
- रक्त टूटी – फूटी तथा मृत कोशिकाओं को यकृत और प्लीहा में पहुँचाता है, जहॉ वे नष्ट हो जाती है।
- रक्त अपने आयतन एवं विस्कोसिटी में परिवर्तन लाकर ब्लड – प्रेशर पर नियन्त्रण रखता है।
- रक्त जल – संवहन के द्वारा शरीर के ऊतकों को सूखने से बचाता है और उन्हें नम एवं मुलायम रखता है।
- रक्त शरीर के अंगों की कोशिकाओं की मरम्मत करता है तथा कोशिकाओं के नष्ट हो जाने पर उसका नव-निर्माण भी करता है।
- रक्त शरी के विभिन्न भागों से व्यर्थ पदार्थो को उत्सर्जन – अंगों तक ले जाकर उनका निष्कासन करवाता है।

## 4.6 रक्त संचरण में सहायक प्रमुख अवयव

शरीर में रक्त संचरण के प्रमुख सहायक अंग निम्नलिखित हैं-

- हृदय (Heart)
- धमनिया (Arteties)
- शिराऐं (Veins)
- कोशिकाऐं तथा लसिकाऐं (Capillaries, Lymphatics)
- फेफड़े (Lungs)
- महाधमनी तथा महाशिरा

इन सबके विषय में विस्तारपूर्वक वर्णन निम्नानुसार है-

**4.6.1 हृदय -** रक्त संचरण क्रिया का यह सबसे मुख्य अंग है। यह नाशपाती के आकार का मांसपेशियों की एक थैली जैसा होता है। हाथ की मुट्ठी बाँधने पर जितनी बड़ी होती है, इसका आकार उतना ही बड़ा होता है। इसका निर्माण धारीदार (Striped) एवं अनैच्छिक मांसपेशी ऊतकों (Involuntary Muscles) द्वारा होता है। वक्षोस्थि से कुछ पीछे की ओर तथा बायें हटकर दोनों फेफड़ों के बीच इसकी स्थिति है। यह पांचवी, छठी, सातवी, तथा आठवीं पृष्ठ देशीय-कशेरूका के पीछे

रहता है। इसका शिरोभाग बायें क्षेपक कोष्ठ से बनता है। निम्न भाग की अपेक्षा इसका ऊपरी भाग कुछ अधिक चौड़ा होता है। इस पर एक झिल्लीमय आवरण चढ़ा रहता है। जिसे ‘हृदयावरण’ (Periaerdium) कहते हैं। इस झिल्ली से एक प्रकार का रस निकलता है, जिसके कारण हृत्पिण्ड का उपरी भाग आर्द्र (तरल) बना रहता है।

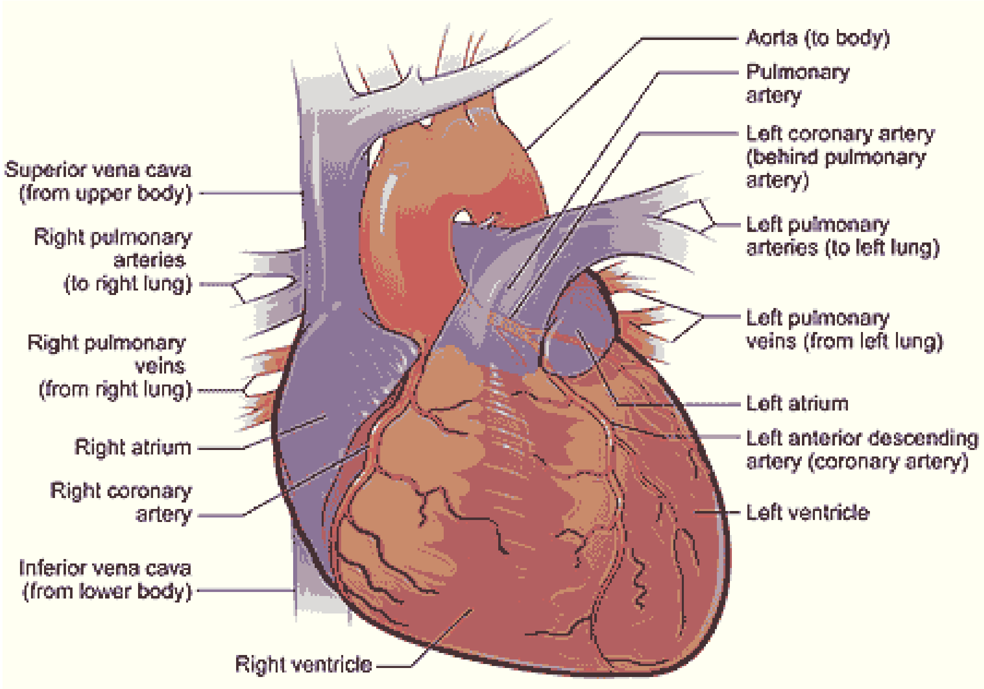


हृत्पिण्ड का भीतरी भाग खोखला रहता है। यह भाग एक सूक्ष्म मांसपेशी की झिल्ली से ढ़का तथा चार भागों में विभक्त रहता है। इस भाग में क्रमशः ऊपर-नीचे तथा दायें-बायें 4 प्रकोष्ठ (Chambers) रहते हैं। ऊपर के दायें-बायें हृदकोषों को ‘उर्ध्व हृदकोष्ठ’ अथवा ‘ग्राहक-कोष्ठ’ (Auricle) कहा जाता है तथा नीचे के दायें-बायें दोनों हृदकोष्ठों को ‘क्षेपक कोष्ठ’ (Ventricle) कहते हैं। इस प्रकार हृत्पिण्ड दोनों ओर दायें तथा बायें ग्राहक कोष्ठ तथा क्षेपक कोष्ठों को अलग करने वाली पेशी से बना हुआ है। ग्राहक कोष्ठ से क्षेपक कोष्ठ में रक्त आने के लिए हर ओर एक-एक छेद रहता है तथा इन छेदों में एक-एक कपाट (Valve) रहता है। ये कपाट एक ही ओर इस प्रकार से खुलते हैं कि ग्राहक कोष्ठ से रक्त क्षेपक कोष्ठ में ही आ सकता है, परन्तु उसमें लौटकर जा नहीं सकता, क्योंकि उस समय यह कपाट अपने आप बन्द हो जाता है। दायीं ओर के द्वार में तीन कपाट है। अतः इसे ‘त्रिकपाट’ कहते हैं। बायीं ओर के द्वार में केवल दो ही कपाट हैं, अतः इसे ‘द्विकपाट’ कहा जाता है।

Copyright © The McGraw-Hill Companies, Inc. Permission required for reproduction or display.

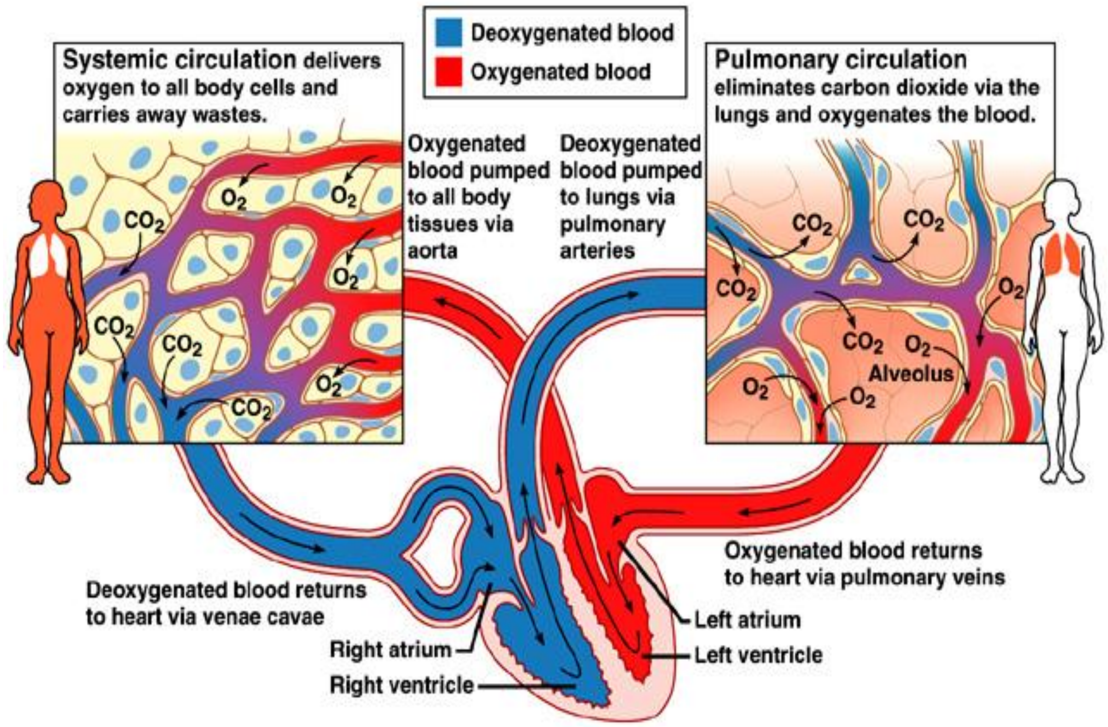


The double pump

इसके ग्राहक कोष्ठों का काम 'रक्त को ग्रहण करना' तथा क्षेपक कोष्ठों का काम 'रक्त को निकालना' है। दायीं ओर हमेशा अशुद्ध रक्त तथा बायीं ओर शुद्ध रक्त भरा रहता है। इन दोनों कोष्ठों का आपस में कोई संबंध नहीं होता।

हृदय को शरीर का 'पम्पिंग स्टेशन' कहा जा सकता है। हृदय की मांसपेशियों द्वारा ही रक्त संचार की शुरूआत होती है। हृदय के संकोच के कारण ही उसके भीतर भरा हुआ रक्त महाधमनी (Aorta) तथा अन्य धमनियों में होकर शरीर के अंग-प्रत्यंग तथा उनकी कोषाओं (Cells) में पहुँचकर, उन्हें पुष्टि प्रदान करता है तथा उनके भीतर स्थित विकारों को अपने साथ लाकर, उत्सर्जन अंगों को सौंप देता है, ताकि वे शरीर से बाहर निकल जायें।

शरीर में रक्त-संचरण धमनी, शिराओं तथा कोशिकाओं द्वारा होता रहता है। ये सभी शुद्ध रक्त को हृदय से ले जाकर शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचाती हैं तथा वहाँ से विकार मिश्रित अशुद्ध रक्त को लाकर हृदय को देती रहती हैं। शुद्ध रक्त का रंग चमकदार लाल होता है तथा अशुद्ध रक्त बैंगनी रंग का होता है। हृदय से निकलकर शुद्ध रक्त जिन नलिकाओं द्वारा शरीर के विभिन्न भागों में जाता है उन्हें क्रमशः धमनी (Artery) तथा केशिकाऐं (Capillaries) कहते हैं तथा अशुद्ध रक्त लौटता हुआ जिन नलिकाओं में होकर हृदय में पहुँचता है, उन्हें 'शिरा' (Veins) कहते हैं।

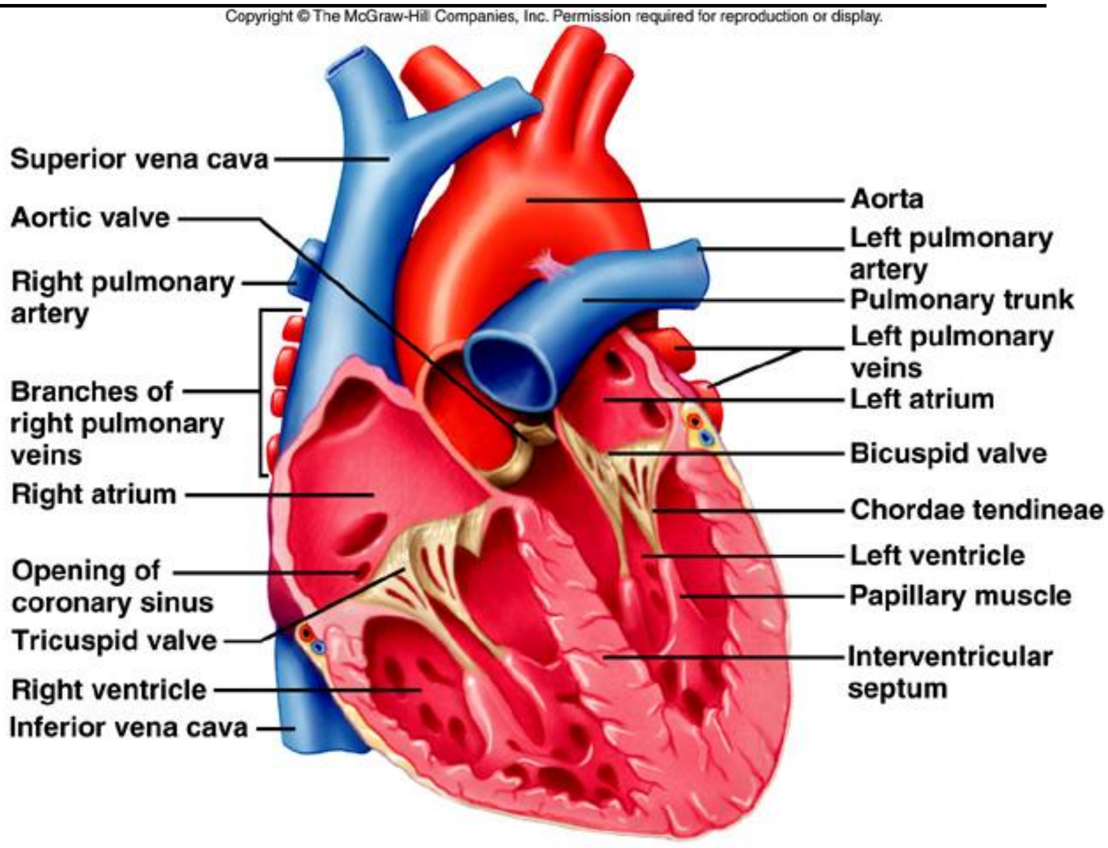


Chambers of the heart; valves

शिराओं द्वारा लाए गए अशुद्ध रक्त को हृदय शुद्ध होने के लिए फेफड़ों में भेज देता है। वहाँ पर अशुद्ध रक्त बैंगनी रंग का अपने विकारों (Carbon-di-Oxide) की फेफड़ों से बाहर जाने वाली हवा (निःश्वास) के साथ मिलकर, मुँह अथवा नाक के मार्ग से बाह्य-वातावरण में भेज देता है तथा श्वास के साथ भीतर आई हुई शुद्ध वायु से मिलकर पुनः हृदय में लौट आता है और वहाँ से फिर सम्पूर्ण शरीर में चक्कर लगाने के लिए भेज दिया जाता है। इस क्रम की निरंतर पुनरावृत्ति होती रहती है इसी को 'रक्त परिभ्रमण क्रिया' (Blood Circulation) कहा जाता है।

**4.6.2 धमनियाँ** (Arteries) ये रक्त नलिकाऐं लम्बी मांसपेशियों द्वारा निर्मित होती हैं। ये हृदय से आरम्भ होकर कोशिकाओं में समाप्त होती हैं। इनका संचालन अनैच्छिक मांसपेशियों द्वारा होता है। ये आवश्यकतानुसार फैलती तथा सिकुड़ती रहती हैं। इनके संकुचन से रक्त-परिभ्रमण में सरलता आती है। 'पल्मोनरी धमनी' तथा 'रक्त धमनी' के अतिरिक्त शेष सभी धमनियाँ 'शुद्ध रक्त' का वहन करती हैं। इनकी दीवारें मोटी तथा लचीली होती हैं। छोटी धमनियों को 'धमनिका' कहते हैं।

**4.6.3 शिराऐं** (Veins) ये नलिकाऐं पतली होती हैं। इनकी दीवारें पतली तथा कमजोर होती हैं, जो झिल्ली की बनी होती हैं। इनकी दीवारों में स्थान-स्थान पर प्यालियों जैसे चन्द्र कपाट बने रहते हैं। इनकी सहायता से रक्त उछलकर नीचे से ऊपर की ओर जाता है। इन पर मांस का आवरण नहीं रहता। अतः ये कट भी जाती हैं। जब ये ऊतकों में पहुँचती हैं, तब

बहुत महीन हो जाती हैं तथा इनकी दीवारें भी पतली पड़ जाती हैं। ‘फुफ्फुसी शिरा’ एवं ‘वृक्क शिरा’ के अतिरिक्त अन्य सभी धमनियों में अशुद्ध रक्त बहता है। ये सब अशुद्ध रक्त को हृदय में पहुँचाने का कार्य करती हैं।

**4.6.4 केशिकाऐं तथा लसिकाऐं** (Capillaries, Lymphaties) अत्यन्त महीन शिराओं को, जो एक कोशिका (Cells) वाली दीवार में भी प्रविष्ट हो जाये, कोशिका कहा जाता है। इन्हें धमनियों की क्षुद्र शाखाऐं भी कहा जा सकता है। ये शरीर के प्रत्येक कोष (Cells) में शुद्ध रक्त पहुँचाती हैं तथा वहाँ से अशुद्ध रक्त को एकत्र कर शिराओं के द्वारा हृदय में पहुँचा देती हैं।

जब रक्त कोशिकाओं में बहता है, तो उनकी पतली दीवारों से उसका कुछ लाल भाग होता है। इस तरल पदार्थ को ही ‘लसिका’ कहते हैं। इसमें शक्कर, प्रोटीन, लवण आदि पदार्थ पाये जाते हैं। शरीर की कोशाए (Cells) ‘लसिका’ में भीगी रहती हैं तथा इन्हीं लसिकाओं द्वारा कोशिकाओं (Cells) का पोषण भी होता है।

**4.6.5 फेफड़े** – फेफड़े परिसंचरण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। फुफ्फुसो में रक्त शुद्ध होता है –

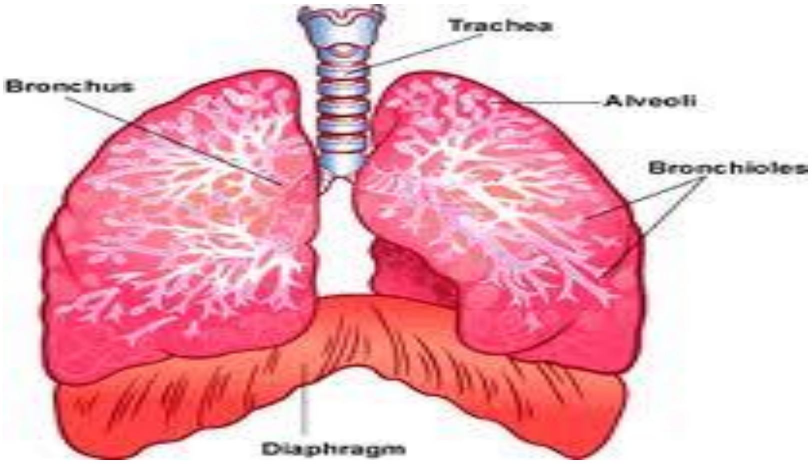


फुफ्फुसो को रक्त पहुॅचाने का कार्य फुफ्फुसीय परिसंचरण के द्वारा सम्पन्न होता है। वाहिकाएँ अशुद्ध रक्त को हृदय से फुफ्फुसो तक ले जाती है वहॉ रक्त शुद्ध होकर उसे पुन: हृदय में ले जाती है यहॉ से आक्सीजन युक्त रक्त शेष शरीर में वितरित होता है। फुफ्फुसीय परिसंचरण में 4 से 8 सेकण्ड का समय लगता है। हृदय के दाएँ निलय से फुफ्फुसीय धमनी के द्वारा फुफ फुफ्फुसीय रक्त परिसंचरण का आरम्भ होता है।

**4.6.6 महाधमनी** (Aorta) **तथा महाशिरा** (Venacava) **की कार्य प्रणाली -** यह सबसे बड़ी धमनी है। इसके द्वारा शुद्ध रक्त सम्पूर्ण शरीर में फैलता है। इसकी कार्य प्रणाली निम्नानुसार है-

Copyright © The McGraw-Hill Companies, Inc. Permission required for reproduction or display.

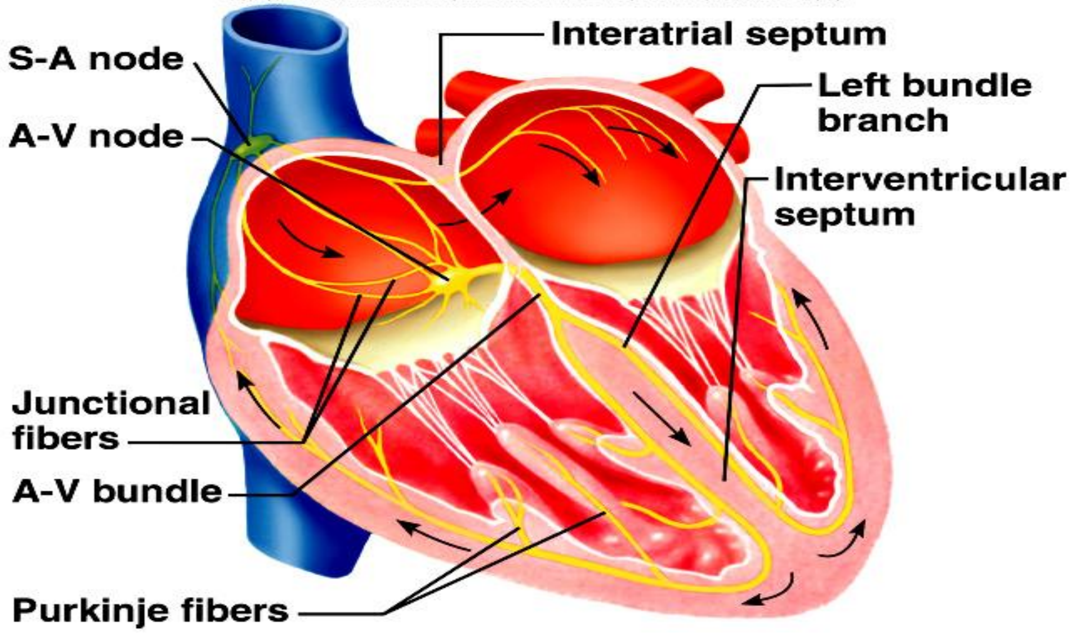


यकृत के भीतर से जाकर हृत्पिण्ड के दायें 'ग्राहक कोष्ठ' में खुलने वाली 'अधोगा महाशिरा' (Inferior Venacava) में शरीर के संपूर्ण निम्न भाग के अंगों का रक्त एकत्र होकर ऊपर को जाता है। शरीर के सभी भागों से अशुद्ध रक्त 'उर्ध्व महाशिरा' (Superior Venacava) में आता है। यह महाशिरा उस रक्त को हृदय के दायें ग्राहक कोष्ठ को दे देती है। रक्त से भरते ही वह कोष्ठ सिकुड़ने लगता है तथा एक दबाव के साथ उसे दायें क्षेपक कोष्ठ में फेंक देता है। दायां त्रिकपाट (Tricuspid Valve) इसके बाद ही बन्द हो जाता है और वह रक्त को पीछे नहीं जाने देता अर्थात् दायें क्षेपक कोष्ठ से दायें ग्राहक कोष्ठ में नहीं पहुँच सकता। फिर, ज्यों ही दायां क्षेपक कोष्ठ भरता है, त्यों ही वह रक्त को वृहद् पल्मोनरी धमनी द्वारा शुद्ध होने के लिए फेफड़ों में भेज देता है। फेफड़ों में शुद्ध हो जाने पर, शुद्ध रक्त दायें तथा बायें फेफड़े द्वारा वृहद् पल्मोनरी धमनी द्वारा दायें ग्राहक कोष्ठ में भेज दिया जाता है। इसके पश्चात् यह रक्त दायें ग्राहक कोष्ठ से दबाव के साथ बायें क्षेपक कोष्ठ में आता है, जिसे यहाँ स्थित एक द्वि-कपाट (Bi-cuspid valve) उसको पीछे नहीं लौटने देता। फिर, जब वह दायां क्षेपक कोष्ठ भरकर सिकुड़ने लगता है, तब शुद्ध रक्त महाधमनी (Aorta) में चला जाता है और वहाँ से सम्पूर्ण शरीर में फैल जाता है।

'महाधमनी' से अनेक छोटी-छोटी धमनियाँ तथा महाशिरा से अनेक छोटी-छोटी शिराऐं निकली होती हैं, जो निरंतर क्रमशः रक्त को ले जाने तथा लाने का कार्य करती हैं।

रक्त का संचरण दो घेरों में होता है- (1) छोटा घेरा तथा (2) बड़ा घेरा। छोटा घेरा, हृदय, पल्मोनरी धमनी, फेफडों तथा पल्मोनरी के सिरे से मिलकर बनता है तथा बड़ा घेरा महाधमनी एवं शरीर भर की कोशिकाओं तथा ऊतकों से मिलकर

तैयार हुआ है। ग्राहक कोष्ठों (Atrium) को ‘अलिन्द’ तथा क्षेपक कोष्ठों (Ventricle) को ‘निलय’ कहा जाता है।

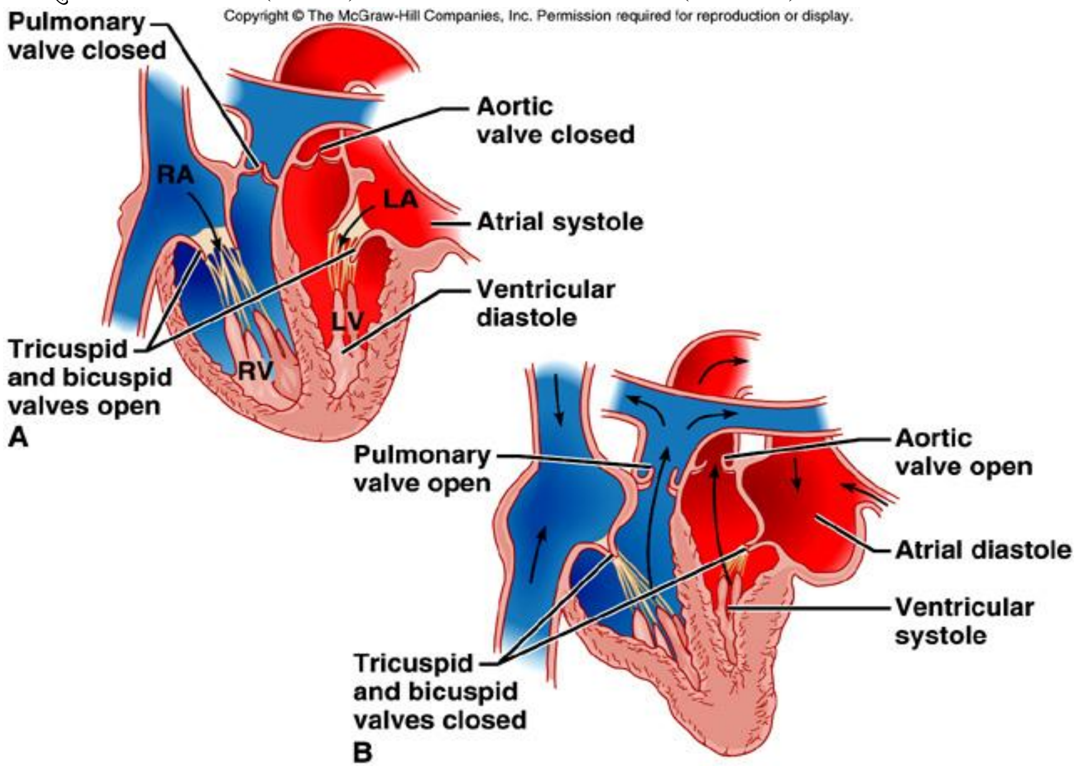


Coordination of chamber contraction, relaxation

जब अशुद्ध रक्त उर्ध्व तथा अधःमहाशिरा द्वारा हृदय के दक्षिण अलिन्द में प्रविष्ट होता है तब वह धीरे-धीरे फैलना आरम्भ कर देता है तथा पूर्ण रूप से भर जाने पर सिकुड़ना शुरू करता है फलस्वरूप अलिन्द के भीतर के दबाव में वृद्धि होकर, महाशिरा का मुख बन्द हो जाता है तथा ‘त्रिकपाट’ खुलकर, रक्त दक्षिण निलय में प्रविष्ट हो जाता है। दक्षिण निलय भी भर जाने पर जब सिकुड़ना आरम्भ करता है तब द्विकपाट बन्द हो जाता है तथा पल्मोनरी धमनी कपाट (Pulmonary Valve) खुल जाता है। उस समय शुद्ध रक्त के दक्षिण निलय से निकल कर पल्मोनरी धमनी (Pulmonary Artery) द्वारा वाम अलिन्द में गिरता है। इस क्रिया को ‘छोटे घेरे में रक्त संचरण’ (Circulation of Blood through Pulmonary circuit) नाम दिया गया है।

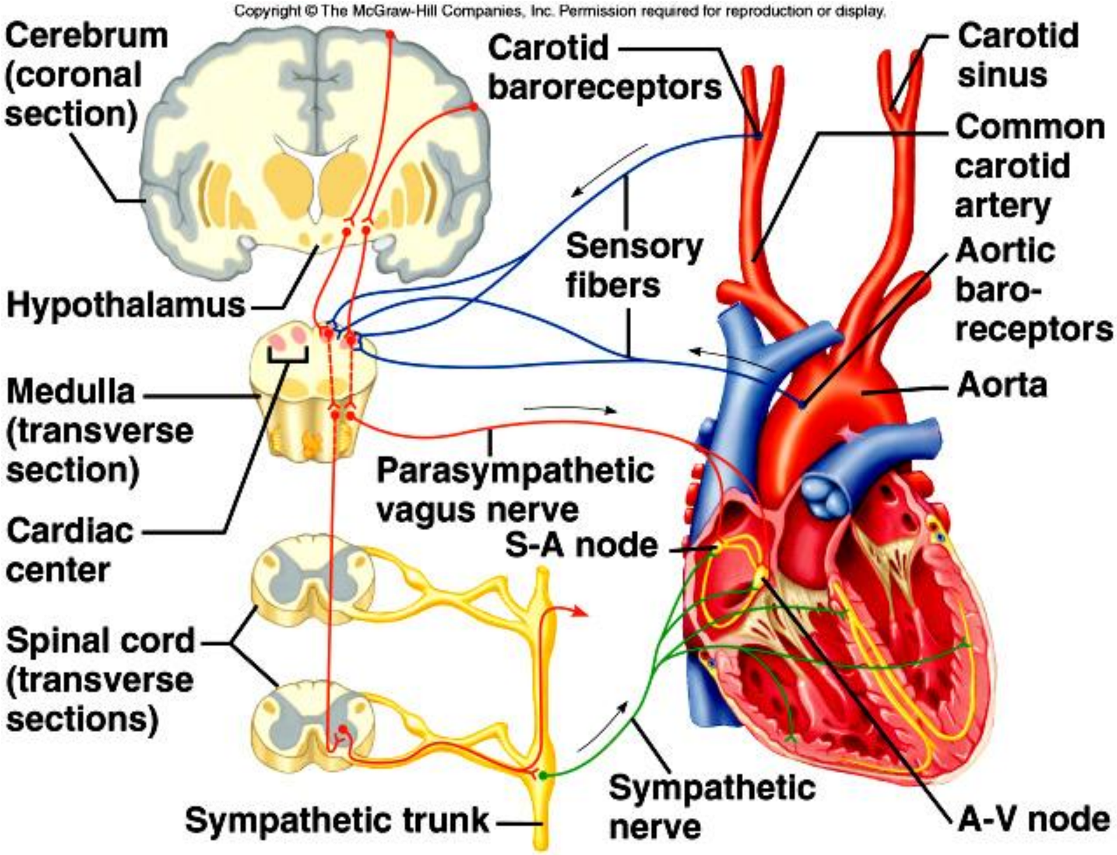


पल्मोनरी धमनी द्वारा वाम अलिन्द में रक्त के भर जाने पर वह सिकुड़ना प्रारंभ कर देता है और उसके भीतर दबाव बढ़ जाता है, फलस्वरूप द्विकपर्दी कपाट खुलकर रक्त वाम निलय में पहुँच जाता है। वाम निलय के भर जाने पर वह भी सिकुड़ना प्रारंभ कर देता है, तब द्विकपर्दी कपाट बन्द हो जाता है तथा महाधमनी कपाट खुल जाता है, फलतः वह शुद्ध रक्त महाधमनी में पहुँच कर सम्पूर्ण शरीर में भ्रमण करने के लिए विभिन्न धमनियों तथा कोशिकाओं में जा पहुँचता है। इस प्रकार रक्त संपूर्ण शरीर में घूम कर शिराओं से होता हुआ अन्त में उर्ध्व महाशिरा तथा अधःमहाशिरा से होकर दक्षिण अलिन्द में पहुँच जाता है। रक्त भ्रमण की इस क्रिया को 'बड़े घेरे का रक्त-संचरण' (Circulation of Blood through Larger Circuit) कहते हैं।

**अभ्यास प्रश्न**

**1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए**

(क) रक्त संचरण क्रिया का प्रमुख अंग.................है।

(ख) ..................रक्त कणिकाओं को शरीर रक्षक भी कहा जाता है।

(ग) रक्त कणिकाओं को बहाकर इधर-उधर ले जाने का कार्य............द्वारा सम्पन्न होता है।

(घ) ..............की उपस्थिति के कारण ही रक्त कणों का रंग लाल प्रतीत होता है।

(ड.) रक्तस्राव होने पर रक्त को जमाने का कार्य...........प्रोटीन करता है।

(च) सबसे बड़ी धमनी............तथा सबसे बड़ी शिरा.............है।

**2. सत्य/असत्य बताइये**

(क) पल्मोनरी धमनी तथा रक्त धमनी के अतिरिक्त शेष सभी धमनियॉ 'शुद्ध रक्त' का वहन करती है।

(ख) शिराओं की दीवारें मोटी एवं लचीली होती हैं।

(ग) रक्त में श्वेतकणों की संख्या में वृद्धि को ल्यूकोपीनींग तथा ह्रास को ल्यूकोसाइटोसिस कहते हैं।

(घ) रक्त का आपेक्षिक गुरूत्व 1.055 होता है।

## 4.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ चुके होंगे। कि रक्त विश्लेषण में मिश्रित प्लाज्मा और रक्त कणिकाऍं शरीर को स्वस्थ रखने में तथा शरीर की संक्रामक रोगों से रक्षा करने में अहम भूमिका निभाते है। लाल रक्त कण हीमोग्लोबिन की सहायता से फेफड़ों से सहायता फेफड़ों से ऑक्सीजन प्राप्त कर शुद्ध रक्त सम्पूर्ण शरीर में वितरित करते हैं। श्वेत रक्त कण संक्रामक रोगों के आक्रमण के समय विषैले जीवाणुओं से लड़ने में सहायता करते हैं। प्लेटलेट्स शरीर में किसी भी स्थान पर कटने या चोट लगने की स्थिति में उस जगह एकत्रित हो कर अतिरिक्त रक्त बहने से रोकने में सहायता करते हैं। हृदय रक्त संचरण क्रिया का प्रमुख अंग है। हृदय के संकुचन से उसके भीतर का रक्त महाधमनी तथा अन्य धमनियों से होता हुआ शरीर के विभिन्न अंगों में वितरित होता है तथा अंग विशेष की कोशिकाओं को पुष्टि प्रदान करता है। इसके साथ ही विकारों को कोशिकाओं से लाकर उत्सर्जन तंत्र को सौंप देता है। इस प्रकार शरीर को विकार रहित रखने में हृदय हमारी सम्पूर्ण सहायता करता है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप रक्त परिसंचरण के विषय में सहज रूप से समझ गये होंगे।

## 4.8 शब्दावली

प्रोटोप्लाज्म – कोशिका का तरल भाग जिसमें कोशिनांग तैरते हैं। यही कोशिका जीव द्रव्य कहलाता है।

अनैच्छिक ऊतक – अपनी इच्छा से जिन ऊतकों का नियन्त्रण नहीं होता, व केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र द्वारा इन ऊतकों को नियन्त्रित किया जाता है।

धमनी – शुद्ध रक्त का संचरण करने वाली नाड़ी, नस

शिरा – अशुद्ध रक्त का संचरण करने वाली नाड़ी, नस

हीम – लौह युक्त पदार्थ

ग्लोबीन – एक प्रोटीन

रक्तस्राव – रक्त का निकलना

बहुलता – अधिकता, ज्यादा

दूषित – खराब, गन्दा, दोष युक्त

ब्लड प्रेशर – रक्त चाप, रक्त का दबाब

कपाट – दरवाजे, किवाड़

पल्मोनरी धमनी – एक ऐसी धमनी जिसमें अशुद्ध रक्त बहता है

पल्मोनरी शिरा – एक ऐसी जिसमें शुद्ध रक्त बहता है।

## 4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए**

(क) हृदय (ख) श्वेत (ग) प्लाज्मा (घ) हीमोग्लोबिन (ड.) फाइब्रोनोजिन (च) एओटा, बेनाकावा

**2. सत्य/असत्य बताइये**

(क) सत्य (ख) असत्य (ग) असत्य (घ) सत्य

## 4.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची


1. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।
2. गौढ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।
3. प्रकाश, ऐ0 (1998) अ टेक्स्ट बुक ऑफ एनाटॉमी एण्ड फिसियोलॉजी, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली।
4. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।
5. पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शारीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।
6. वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली
7. दीक्षित, राजेश ( 2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन,मथुरा
8. सक्सेना, ओ0 पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन,मथुरा
9. अग्रवाल, जी0सी0 (2010) मानव शरीर विज्ञान, एक्युप्रेशर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार संस्थान, इलाहाबाद
10. Chaurasia's B.D (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.


## 4.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. परिवहन तंत्र का परिचय देते हुए रक्त विश्लेषण कीजिए।
2. रक्त संचरण के प्रमुख अवयवों की व्याख्या करते हुए रक्त के कार्य बताइये।
3. हृदय की रचना व कार्यो का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

# इकाई 5 – पाचन तन्त्र की रचना व कार्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 पाचन तंत्र : एक परिचय

5.4 पाचन तंत्र की रचना

5.5 पाचक अंगों की कार्य विधि

5.6 पाचन संस्थान के मुख्य अंग

5.6.1 मुख

5.6.2 आहार नलिका

5.6.3 आमाशय

5.6.4 पक्वाशय

5.6.5 छोटी आंत

5.6.6 बड़ी आंत

5.6.7 यकृत

5.6.8 पित्ताशय

5.6.9 अग्नयाशय

5.7 पाचन क्रिया

5.8 सारांश

5.9 शब्दावली

5.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

5.12 निबंधात्मक प्रश्न

## 5.1 प्रस्तावना

इससे पहले की इकाई में आपने रक्त परिसंचरण तंत्र के विषय में जानकारी प्राप्त की। रक्त परिसंचरण की क्रिया को विस्तार से समझा व उसकी कार्य प्रणाली की विस्तृत रूप से विवचना की। रक्त परिसंचरण अथवा परिवहन तंत्र किस प्रकार अपने प्रमुख अवयवों द्वारा रक्त संचरण की क्रिया को निर्देशित करता है।

प्रस्तुत इकाई में आप पाचन तंत्र जो कि शरीर का एक महत्वपूर्ण तंत्र है के बारे में पढ़ेंगे। आप पाचन क्रिया का विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगे। आप जानेंगे कि पाचन तंत्र की कार्य प्रणाली क्या है व शरीर को स्वस्थ रखने में तथा किसी भी कार्य को करने में जिस ऊर्जा की हमें आवश्यकता होती है वह पाचन तंत्र द्वारा किस प्रकार सम्पादित होती है।

इसके अतिरिक्त आप पाचन तंत्र के विभन्न अवयवों जैसे मुख, अन्न प्रणाली, पाकस्थली, पक्वाशय, औते इत्यादि की कार्य प्रणाली व संरचना को समझेंगे। आप इस इकाई का अध्ययन करने के बाद पाचन तंत्र की क्रियाविधि व रचना को सहज रूप से समझ जायेंगे।

## 5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- पाचन तंत्र के बारे में एक सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- पाचन तंत्र की रचना व क्रिया की विस्तृत रूप से विवेचना कर सकेंगे।
- पाचक अंगों की कार्य विधि को भली-भॉति समझ सकेंगे।
- पाचन संस्थान के मुख्य अंगों का विस्तारपूर्वक वर्णन कर सकेंगे।
- मुख की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- अन्न प्रणाली की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- पाकस्थली की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- पक्वाशय की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- छोटी आंत की संरचना एवं कार्य प्रणाली का अध्ययन सकेंगे।
- बड़ी आंत की संरचना एवं कार्य प्रणाली को जान अर्जित कर सकेंगे।
- यकृत की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगे।
- पित्ताशय की संरचना एवं इसकी कार्य प्रणाली को जान सकेंगे।
- अग्न्याशय की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- पाचन क्रिया की कार्य प्रणाली का विश्लेषण करेंगे।

## 5.3 पाचन तंत्र – एक परिचय

जो भी भोजन हम ग्रहण करते हैं वह वास्तव में भी तभी हमारे लिये उपयोगी होता है जब वह इस लायक हो जाये कि शरीर के अन्तर्गत रक्त कोशिकाओं एवं अन्य कोशिकाओं तक पहुँच कर शक्ति व ऊर्जा उत्पन्न कर सके। यह कार्य पाचन प्रणाली के विभिन्न अंग मिलकर करते हैं। पाचन का कार्य पेशियों की गतियों, रासायनिक स्रावों के माध्यम से होता है। पाचन वह रासायनिक व यान्त्रिक क्रिया है, जिसमें ग्रहण किया गया भोजन अत्यन्त सूक्ष्म कणों में विभक्त होकर विभिन्न एन्जाइम्ज व पाचन रसों की क्रिया के फलस्वरूप परिवर्तित होकर, रक्त कणों द्वारा अवशोषित होने योग्य होकर कोशिकाओं के उपयोग में आता है। पाचन की यह सम्पूर्ण क्रिया पाचन अंगों के द्वारा सम्पन्न होती है। हम भोजन को जिस रूप में लेते हैं वह उसी रूप में शरीर की कोशिकाओं द्वारा ग्रहण नहीं होता है वरन् भोजन में सम्मिलित तत्व जब अपने सरल रूप में आते हैं तभी वह ग्रहण हो पाता है। नीचे एक सारणी दी जा रही है जो कि भोजन के रूप में ग्रहण की गई वस्तुओं की है एवं वह जिस रूप में ग्रहण होती है इसका विवेचन इस प्रकार है।

कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrate) - ग्लूकोज, फ्रक्टोज, गैलेक्टोज आदि सरल शर्करा में।

प्रोटीन (Proteins) - अमीनो अम्ल में।

वसा (Fat) – वसीय अम्ल में तथा ग्लिसरॉल में।

जल, खनिज लवण विटामिन एवं प्रोटीन जिस रूप में लिये जाते हैं उसी रूप में अवशोषित हो जाते हैं।

## 5.4 पाचन तन्त्र की रचना

पाचन-संस्थान के निम्नलिखित शारीरिक अवयव पाचन-क्रिया में प्रमुख रूप से भाग लेते हैं-

(a1) मुख (Mouth)

(क) जीभ (Tongue)

(ख) तालुमूल (Tonsils)

(ग) तालु (Palate)

(घ) दाँत (Teeth)

(2) अन्न प्रणाली अथवा गलनली (Oesophagus or Gullet)

(3) पाकस्थली अथवा आमाशय (Stomach or Verticulus)

(4) पक्वाशय (Duodenum)

(5) आँतें (Intestines)

(कa) छोटी आँत (Small Intestine)

(ख) बड़ी आँत (Large Intestine)

(6) यकृत (Liver)

(7) पित्ताशय (Gall Blader)

(8) अग्न्याशय, क्लोम (Pancreas)

## 5.5 पाचक-अंगों की कार्य-विधि

पाचक अंगों की कार्य विधि का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है-

मुख में पहुँचा हुआ आहार दाँतों तथा जीभ की सहायता से छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में बँटकर, लुगदी जैसा बन जाता है। मुँह में रहने वाला 'टाइलिन' (Ptylin) नामक पाचक तत्व (Enzyme) उस भोजन में मिलकर कार्बोहाइड्रेट के पाचन में सहायता करता है। इसी तत्व को अन्य भाषा में 'लार' भी कहा जाता है। भोजन ग्रासनली द्वारा अन्ननली में होता हुआ आमाशय में पहुँचता है। वहाँ भोजन में प्रोटीन के पाचन के हेतु आमाशयिक रस (Gastric Juice) की क्रिया होती है। इस रस में 'हाइड्रोक्लोरिक अम्ल' (Hydro Chloric Acid) तथा 'पेप्सीन' (Pepsin) नामक पाचक तत्व मिले रहते हैं।

आमाशय में भोजन के प्रत्येक अंग पर आमाशयिक रस की क्रिया लगभग 3-4 घण्टे तक होती है, तत्पश्चात् वह अधपका भोजन लेई के रूप में धीरे-धीरे पक्वाशय में पहुँचता है। वहाँ उसे 'पित्त' (Bile) तथा अग्न्याशयिक रस (Pancreatic Juice) मिलता है, जिससे अन्न के अर्द्धपाचित का पाचन होकर आहार-रस (Chyle) का निर्माण हो जाता है, जो आगे छोटी आँतों में जा पहुँचता है। छोटी आँतों में 'आन्तरिक रस' (Succus Entericus) नामक पाचन तत्व बचे हुए भोजन के अंश को पचाता है। भोजन-पाचन की अन्तिम क्रिया इसी रस के द्वारा सम्पन्न होती है। फिर उस रस का सार भाग प्रतिहारिणी-शिराओं (Portal Veins) के द्वारा यकृत में पहुँचा दिया जाता है तथा व्यर्थ-भाग के जलीय अंश को सोखकर शेष भाग को बँधे हुए मल के रूप में मल-द्वार से शरीर के बाहर निकाल दिया जाता है।

उक्त प्रक्रिया से भोजन को मुँह में रखने के समय से मल-द्वार के बाहर निकलने तक लगभग 20-22 घंटे का समय लग जाता है। भोजन के पाचन में यकृत नामक अंग पित्त-निर्माण करके सहायता पहुँचाता है तथा अग्न्याशय नामक अंग अग्न्याशयिक रस का निर्माण कर, भोजन के कार्बोहाइड्रेट नामक अंश को पचाने में तथा वसा के इमल्सीकरण में सहायता करता है।

भोजन का शोषण दो प्रकार से होता है- रक्त नलियों द्वारा तथा लसिका नलियों द्वारा होता है। भोजन के अवशोषण के बाद बड़ी औत में भोजन मल के रूप में परिवर्तित होकर बाहर निकल जाता है।

पाचन-संस्थान के विभिन्न अवयवों के सम्बन्ध में अलग-अलग निम्नानुसार समझा जा सकता है –

## 5.6 पाचन संस्थान के मुख्य अंग

**5.6.1 मुख** (Mouth) मुँह का भीतरी भाग श्लेष्मिक झिल्लियों द्वारा निर्मित है। ये भी त्वचा जैसी होती है, तथा इनका रंग लाली लिए रहता है। इसमें रसस्रावी ग्रंथियाँ (Secreting glands) होती हैं और इसमें पास आने वाले पदार्थ का शोषण करने की शक्ति भी रहती है। जीभ, तालुमूल, तालु तथा दाँत - ये सब मुख के भीतर ही रहने वाले अवयव हैं।

**5.6.2 अन्नप्रणाली गलनी अथवा ग्रासनली** (Oesophagus or Gullet) जिस नली के द्वारा भोजन अग्न्याशय में पहुँचता है, उसे अन्न-प्रणाली अथवा अन्न मार्ग (Alimentary canal) कहते हैं।

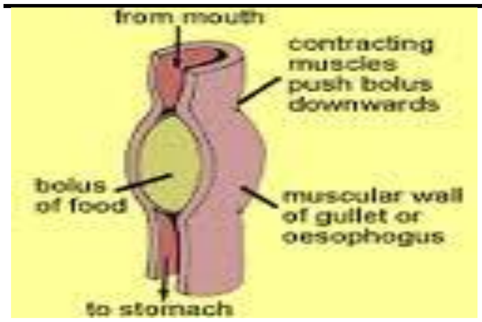


यह नली गले (pharynx) से आरंभ होती है। इसके नीचे ही गलनली अथवा ग्रासनली (Gullet) है, जो लगभग 10-15 इंच तक लंबी होती है तथा भोजन को मुँह से आमाशय तक पहुँचाने का कार्य करती है। इसमें कोई हड्डी नहीं होती। यह मांसपेशियों तथा झिल्लियों से बनी होती है।

**5.6.3 पाकस्थली अथवा आमाशय** (Stomach) यह नाशपाती के आकार का एक खोखली थैली जैसा अवयव है जो बांई ओर के उदर-गह्वर के ऊपरी भाग में तथा उदर-वक्ष (महाप्राचीरा) के ठीक नीचे की ओर स्थित है। हृत्पिण्ड इसी पर स्थित है। यह गलनली के द्वारा मुँह से संबंधित रहता है।

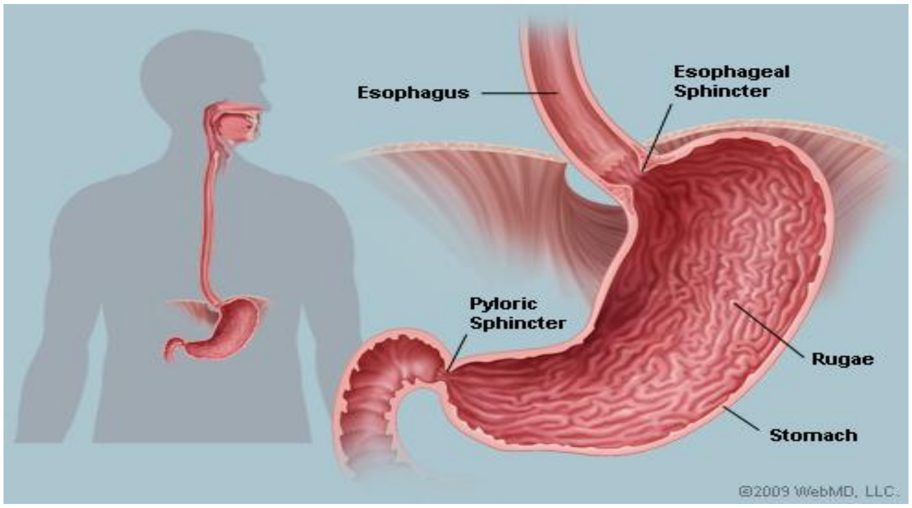


पाकस्थली का भीतरी भाग श्लेष्मिक झिल्ली से भरा रहता है। जब पेट खाली होता है, तब इसकी श्लैष्मिक झिल्ली की तह जैसी बन जाती है। श्लेष्मिक झिल्ली का अधिकांश भाग पाकस्थली के भीतरी भाग को तर बनाये रखने के लिए श्लेष्मिक-स्राव करता है, जिससे कितने ही भागों में रसस्रावी ग्रथियाँ भर जाती हैं। इन ग्रंथियों से 'पेप्सिन' तथा 'हाइड्रोक्लोरिक एसिड' के स्राव होते हैं। इन ग्रंथियों को 'पेप्टिक ग्रथियाँ' कहा जाता है। पानी तथा नमक पर आमाशयिक रस की कोई क्रिया नहीं हो पाती।

पाकस्थली के तीन स्तर होते हैं। इसका बाहरी अथवा ऊपर वाला स्तर 'उदरक' (Perotoneum or Serous Coat) कहा जाता है। इसे पाकस्थली का एक ढक्कन कहना अधिक उपयुक्त रहेगा। यह स्तर एक प्रकार की रस-स्रावी झिल्ली है, जो उदर प्राचीर (Abdominal Wall) के भीतरी ओर रहती है।

पाकस्थली का मध्यस्तर (Middle or Muscular Portion) मांसपेशी द्वारा निर्मित होता है। खाये हुए पदार्थ के मांसपेशी में पहुँचते ही इसकी सब पेशियाँ एक-के-बाद-एक संकुचित होने लगती हैं, जिसके कारण लहरें सी उठकर पाकस्थली को एक छोर से दूसरी छोर तक हिलाती हैं। इस क्रिया के कारण खाया हुआ पदार्थ चूर-चूर होकर लेई जैसा रूप ग्रहण कर लेता है।

पाकस्थली का अन्तिम तीसरा स्तर (Mucous Coat) मधुमक्खी के छत्ते जैसा होता है। इसमें श्लेष्मिक झिल्ली के बहुत से छोटे-छोटे छिद्र रहते हैं। इस झिल्ली की ग्रंथियों में उत्तेजना होते रस स्राव होने लगता है। ये ग्रंथियाँ दानेदार सी होती हैं। इन्हें 'लसिका ग्रंथियाँ' कहा जाता है।

आमाशय 24 घंटे में लगभग 5-6 लीटर रस निकालता है। इसमें भोजन प्रायः 4 घंटे तक रहता है तथा इसके लगभग 1.5 किलोग्राम भोजन समा सकता है। परन्तु कई लोगों में इसकी क्षमता बहुत अधिक पाई जाती है।

5.6.4 पक्वाशय **(Duodenum)** आमाशय के पाइलोरिक छोर से आरंभ होने वाले अंत के भाग को 'पक्वाशय' कहते हैं। यह अर्द्ध-गोलार्द्ध में मुड़ कर अग्न्याशय ग्रंथि के गोल सिर को तीन दिशाओं में लपेटे रहता है। यह लगभग 19 इंच लम्बा तथा आकार में घोड़े की नाल अथवा अंग्रेजी के 'सी' (C) अक्षर जैसा होता है। यह आमाशय के 'पाइलोरिक' से आरंभ होता है। इसका पहला भाग ऊपर दाईं ओर पित्ताशय के कण्ठ तक जाता है तथा वहाँ से दूसरा भाग नीचे की ओर बढ़ता है।

पक्वाशय के भीतर 'पित्त वाहिनी' तथा अग्न्याशय नली के मुँह एक ही स्थान पर खुलते हैं जिनसे निकले स्राव एक ही छिद्र द्वारा पक्वाशय में गिरते हैं। पक्वाशय का ऊपरी भाग पैरीटोनियम से ढँका रहता है तथा अन्तिम भाग जेजूनम (Jajunum) से मिला रहता है। पक्वाशय में आमाशय से जो आहार रस आता है, उसके ऊपर पित्त रस (Bill Juice) तथा क्लोम रस (Pancreatic Juice) की क्रिया होती है। क्लोम रस पानी जैसा पतला, स्वच्छ, रंगहीन, स्वादरहित तथा क्षारीय-प्रतिक्रिया वाला होता है। इसका आपेक्षिक गुरूत्व लगभग 1.007 होता है। इसमें चार विशेष पाचक तत्व – (1) ट्रिप्सीन (Trypsin)] (2) एमिलौप्सीन (Amylopsin)] (3) स्टीप्सीन (Steapsin) तथा (4) दुग्ध परिवर्तक पाये जाते हैं। ये आहार रस पर अपनी क्रिया करके प्रोटीनों को पेप्टोन्स में श्वेतसार को वसा को ग्लीसरीन तथा अम्ल एवं दूध को दही में परिवर्तित कर देते हैं।

**5.6.5 छोटी आँत** (Small Intestine) पक्वाशय के बाद छोटी आँत शुरू हो जाती है। ये एक प्रकार की टेढ़ी-मेढ़ी नलियाँ हैं जो कितनी ही बार घूमी हुई स्थिति में उदर-गह्वर की बहुत सी जगह को घेरे रहती हैं। छोटी आँत की लंबाई लगभग 20-22 फुट होती है। इसका व्यास लगभग 1.5 इंच होता है। इसका पहला 10 इंच वाला व लम्बा भाग 'पक्वाशय' कहलाता है तथा इसका निचला सिरा बड़ी आँत से मिला रहता है।

पाकस्थली से गया हुआ वसा युक्त पदार्थ का अनपचा अंश इसी छोटी आँत में पहुँचता है। इस आँत के चार स्तर होते हैं। पाचन के समय इस आँत में एक नली की राह से पित्त-कोष का पित्त रस (Bile) तथा दूसरी नली द्वारा क्लोम ग्रंथि का क्लोम रस आकर मिल जाता है। इस आँत से भी एक प्रकार का रस निकलता है जिसे 'अम्ल रस' कहते हैं। पाकस्थली से आये हुए अपच अंश को इन तीनों रसों द्वारा पीसा जाता है, जिसके फलस्वरूप खाद्य पदार्थ का सार भाग पचकर रक्त के रूप में बदल जाता है तथा ठोस भाग कुण्डली जैसी आँत में घूमता हुआ मल के रूप में नीचे भेज दिया जाता है।

पक्वाशय के बाद छोटी आँत के दो भाग होते हैं, जिन्हें क्रमशः जेजूनम (Jejunum) तथा इलियम (Illium) कहा जाता है। छोटी आँत पक्वाशय के अंतिम भाग से आरंभ होकर टेढ़ी-मेढ़ी होती हुई, नीचे दायीं ओर के बड़ी आँत के

प्रारंभिक भाग पर समाप्त होती है। इसी जगह 'आन्त्र पुच्छ' (Vermiform Appendix) नामक एक लंबी थैली जुड़ी रहती है, जो अलग-अलग मनुष्यों के शरीर में स्थान बदलकर लटकी रहती है।

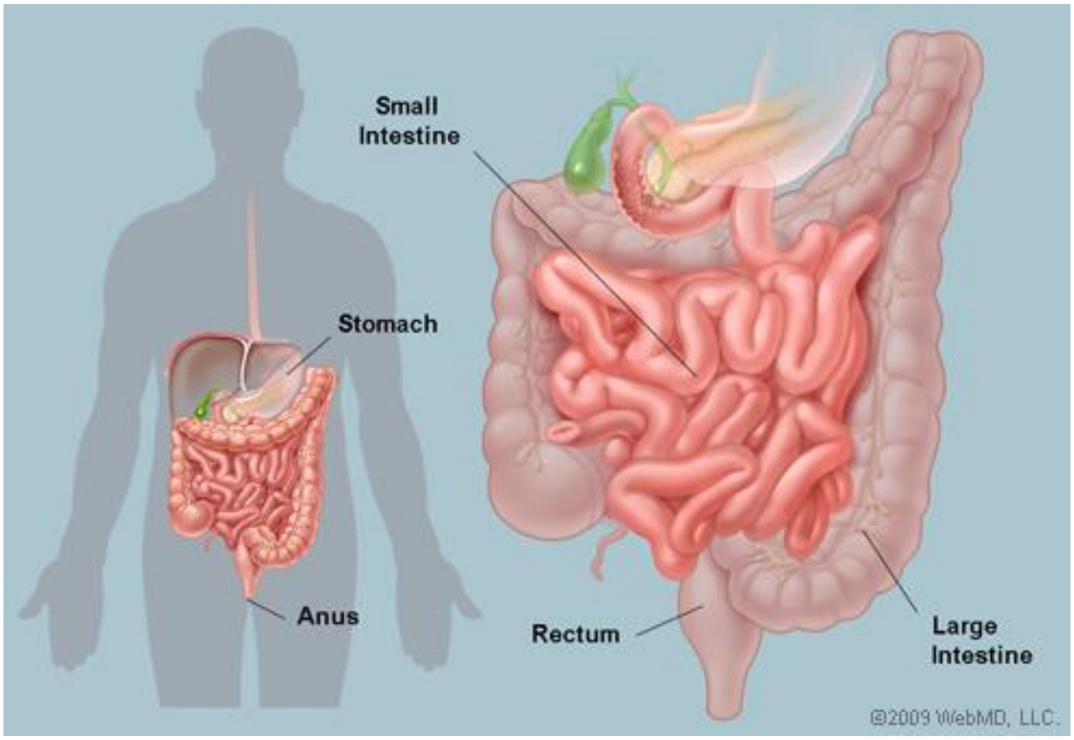


**5.6.6 बड़ी आँत** (Large Intestine) छोटी आँत जहाँ समाप्त होती है, वहाँ से बड़ी आँत आरंभ होती है। यह उदर के दायें निम्न भाग में, जिसे 'कोख' (Illiac region) कहा जाता है और जिससे अन्न-पुट (Intestinal Caccum) मिली होती है, से निकलती है। यह छोटी आँत से अधिक चौड़ी तथा लगभग 5-6 फुट लंबी होती है। इसका अंतिम डेढ़ अथवा 2 इंच का भाग ही 'मलद्वार' अथवा 'गुदा' कहा जाता है। गुदा के ऊपर वाले 4 इंच लम्बे भाग को 'मलाशय' कहते हैं। यह बड़ी आँत, छोटी आँत के चारों ओर घेरा डाले पड़ी रहती है।

छोटी आँत की तरह ही बड़ी आँत में भी 'कृमिवत्' आकुंचन होता रहता है। इस गति के कारण छोटी आँत से आए हुए 'आहार-रस' (Chyme) के जल भाग का शोषण होता रहता है। छोटी आँत से बचा हुआ आहार रस जब बड़ी आँत में आता है, तब उसमें 95 प्रतिशत जल रहता है। इसके अतिरिक्त कुछ भाग प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा वसा का भी होता है। बड़ी आँत में इन सबका ऑक्सीकरण होता है तथा जल के बहुत बड़े भाग को सोख लिया जाता है। अनुमानतः 24 घण्टे में बड़ी आँत में 400 c.c. पानी का शोषण होता है। यहाँ से भोजन रस का जलीय भाग रक्त में चला जाता है तथा गाढ़ा भाग मलवे के रूप में 'मलाशय' में होता हुआ 'मलद्वार' से बाहर निकल जाता है।

बड़ी आँत में सड़ाव उत्पन्न करने वाले अनेक कीटाणु होते हैं, जो इण्डोल तथा स्कैटोल नामक अनेक प्रकार के हानिकारक पदार्थ उत्पन्न करके मल में दुर्गन्ध पैदा कर देते हैं।

**5.6.7 यकृत** (Liver) यह मनुष्य शरीर की सबसे बड़ी ग्रंथि (Gland) है। यह उदर में दायीं ओर वक्षोदरमध्यस्थ-पेशी (Diaphragm) के नीचे स्थित है। इसके निम्न भाग में पित्ताशय रहता है।

यकृत की लम्बाई लगभग 9 इंच, चौड़ाई 10-12 इंच तथा भार लगभग 50 औंस होता है। इसका भार मानव शरीर के संपूर्ण भाग का 1.40 प्रतिशत होता है। इसका आपेक्षिक गुरूत्व 1.005 से 1.006 होता है। इसका रंग कत्थई होता है। यह ऊपर से छूने में मुलायम तथा भीतर से ठोस होता है। यह 24 घण्टे में लगभग 550 ग्राम पित्त (Bile) तैयार करता है। इसका स्वरूप त्रिभुजाकार होता है।

**5.6.8 पित्ताशय** (Gall Bladder) पित्ताशय अथवा पित्ताकोश का आकार एक नाशपाती के समान खोखली थैली जैसा होता है। यह थैली यकृत की सतह के भीतर रहती है तथा इसका अन्तिम बड़ा शिरा कुछ-कुछ दिखाई देता है। इसके भीतरी भाग से पित्ताशयिक नली (Cystic Duct) बनती है, जो मध्यभाग तथा पीछे की ओर से होती हुई यकृत-नली में जा मिल जाती है। इस प्रकार पित्त-प्रणाली (Bile Duct) का निर्माण होता है।

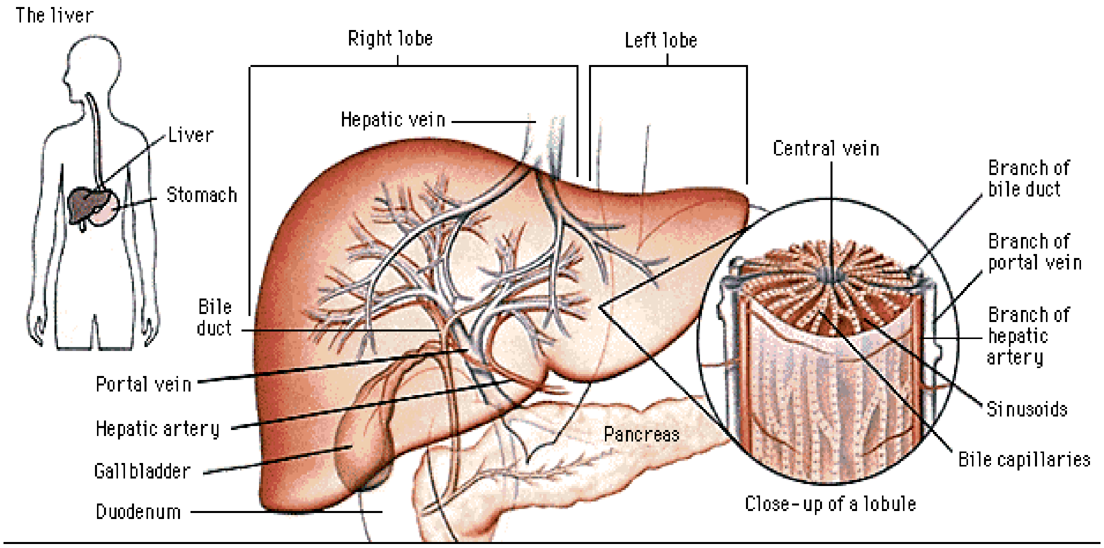


**5.6.9 अग्न्याशय अथवा क्लोम** (Pancreas) यह भी एक बड़ी ग्रंथि है, परंतु आकार में यकृत से छोटी होती है। यह प्लीहा के पास रहती है। इसके शिर, ग्रीवा, धड़ और पूँछ-ये चार भाग होते हैं। इसमें 'क्लोम रस' (Pancreatic Juice) रहता है, जो क्लोम ग्रंथि से निकल कर आँतों में जाता है। क्लोम रस एक प्रकार का क्षारीय द्रव होता है। क्लोम रस में तीन प्रकार के पाचक पदार्थ पाये जाते हैं-(1) प्रोटीन विश्लेषक, (2) कार्बोहाइड्रेड विश्लेषक तथा (3) वसा विश्लेषक। 'प्रोटीन विश्लेषक' की सहायता से प्रोटीन का विश्लेषण होता है। श्वेतसार विश्लेषक की सहायता से श्वेतसार से शर्करा का निर्माण होता है तथा वसा विश्लेषक की सहायता से वसा (चर्बी) से ग्लिसरीन-अम्ल तैयार होता है।

पित्त से मिलकर क्लोम रस की क्रिया अत्यन्त प्रबल हो जाती है। चर्बी वाले पदार्थों को पचाने के लिए इसकी बहुत आवश्यकता होती है। आँतों में पित्त के रहने से सड़ने की क्रिया कम होती है तथा न रहने पर अधिक होती है।

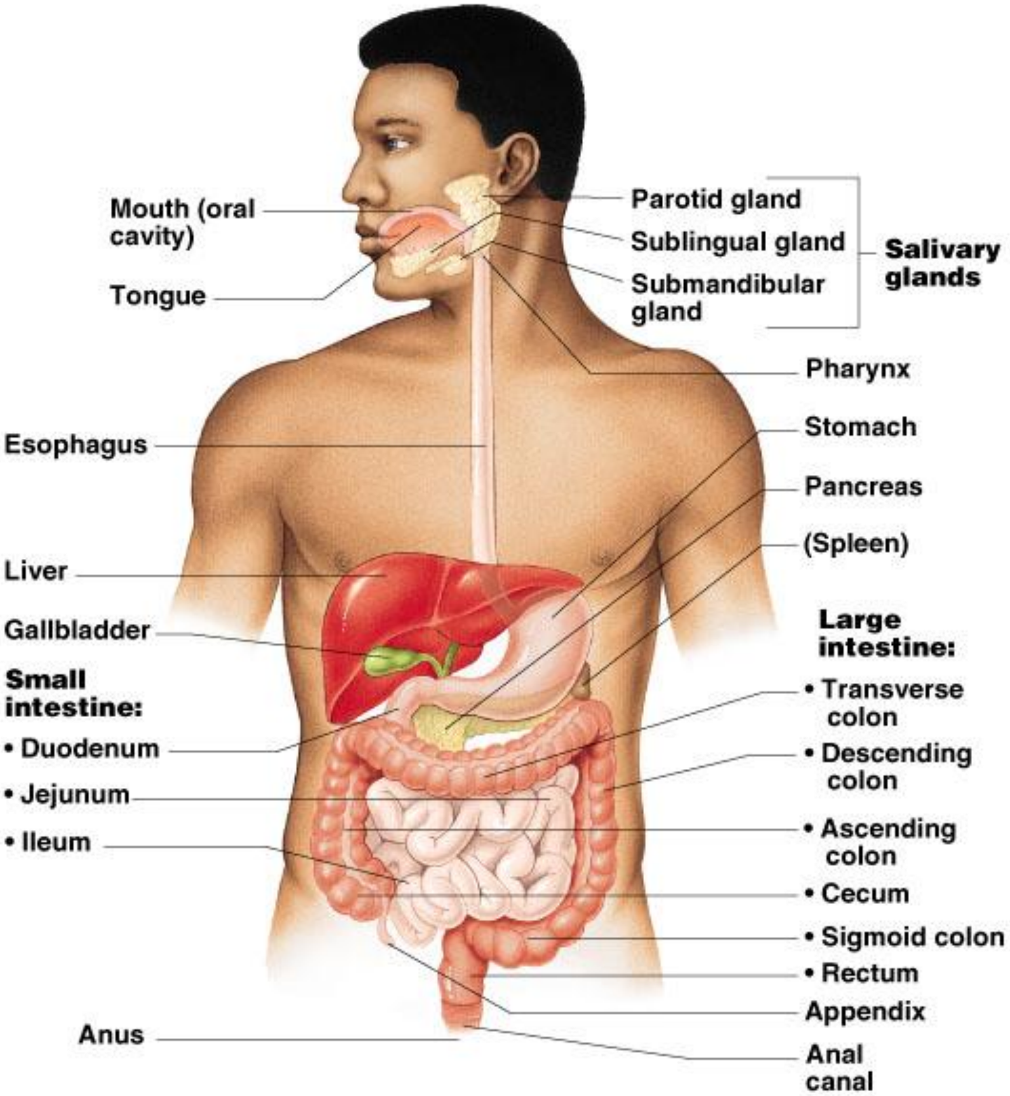


## 5.7 पाचन क्रिया

पाठकों ध्यान रहे - नवजात शिशु का पाचन-संस्थान भली-भाँति विकसित नहीं होता और उसमें पाचक-रस भी नहीं बनता है, इसी कारण वह माँ के दूध के अतिरिक्त और कुछ नहीं पचा पाता, परन्तु ज्यों-ज्यों वह बड़ा होने लगता है, त्यों-त्यों उसकी पाचन शक्ति भी बढ़ती चली जाती है। **50** वर्ष की आयु तक पाचन-शक्ति बढ़ती रहती है, तत्पश्चात् वह घटने लगती है। पाचन शक्ति के कमजोर हो जाने पर मनुष्य को ऐसा आहार लेने की आवश्यकता पड़ती है जो आसानी से पच जाये। वृद्धावस्था में सादा तथा हल्का भोजन लेना ठीक रहता है। भारी भोजन लेने से खून का दबाव बढ़ जाया करता है।

हम जो कुछ भी खाते हैं, वह सर्वप्रथम मुँह में पहुँचता है। वहाँ दांतों द्वारा उसे छोटे-छोटे टुकड़ों में कर दिया जाता है। मुँह की ग्रंथियों से निकलने वाला 'लार' नामक एक स्राव उस कुचले हुए भोजन को चिकना बना देता है, ताकि वह गले द्वारा आमाशय में आसानी से फिसल कर पहुँच सके। इस लार में कुछ ऐसे रासायनिक पदार्थ भी होते हैं जो भोजन को पचाने में सहायता करते हैं। इनमें से एक 'म्यूसिन' है, जो साग अथवा छिलकों पर अपनी क्रिया प्रकट करता है। दूसरा

'टाइलिन' है जिसकी क्रिया कार्बोहाइड्रेट्स पर होती है। जब आहार आमाशय में पहुँचने को होता है, उस समय आमाशय की ग्रंथियों से एक गैस्ट्रिक स्राव (Gastric Juice) निकलता है, जो एक तेजाब की तरह होता है। यह आहार द्वारा आमाशय में पहुँचे हुए जीवाणुओं को नष्ट करता तथा पाचन-क्रिया में सहायता पहुँचाता है। यह आहार को गला कर लेई के रूप (Chyme) में बदल देता है, जिसके कारण वह सुपाच्य हो जाता है। आमाशय का 'पेप्सीन' नामक एन्जाइम अर्थात् पाचक रस प्रोटीन पर मुख्य क्रिया करता है और उसे एक किस्म के रासायनिक योग पेप्टोन (Peptone) में बदल देता है। आमाशय में पहुँचा हुआ आहार एकदम लेई की भांति घुट जाता है। वहाँ से वह पक्वाशय में पहुँचाता है। यकृत से उत्पन्न होने वाला पित्त रस पक्वाशय में पहुँचकर इस आहार में जा मिलता है साथ ही से अग्न्याशय का रस भी जा मिलता है। इन रसों के संयोग से भोजन घुलनशील वस्तु के रूप में परिणत हो जाता है। आहार के पचने का अधिकांश कार्य आमाशय तथा पक्वाशय में ही होता है। तत्पश्चात् वह छोटी आँत में होता हुआ बड़ी आँत में जा पहुँचता है। आँतों की मांसपेशियाँ क्रमशः फैलती तथा सिकुड़ती हुई भोजन को आगे की ओर बढ़ाती रहती हैं। इस क्रिया को 'पेरीस्टालटिक गति' (Peristaltic Movement) कहते हैं। बड़ी आँतों में जल के भाग का शोषण हो जाने के बाद भोजन का सार भाग द्रव के रूप में रक्त में मिल जाता है तथा ठोस भाग मल के रूप में गुदा द्वार से बाहर निकल जाता है।

भोजन के सार भाग का शोषण दो प्रकार से होता है- (1) रक्त नलिकाओं द्वारा तथा (2) लसिका नलिकाओं द्वारा। प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा 40 प्रतिशत चर्बी का शोषण रक्त नलिकाओं द्वारा होता है तथा शेष चर्बी लसिका नलिकाओं द्वारा शोषित कर ली जाती हैं।

प्रोटीन का शोषण मांसपेशियों द्वारा होता है। ये अपनी आवश्यकतानुसार प्रोटीन ग्रहण कर शेष को छोड़ देती है, तब वह शेष प्रोटीन रीनल धमनी द्वारा वृक्क में पहुँचता है और मूत्र के रूप में परिणत होकर मूत्र-नली द्वारा बाहर निकल जाता है।

कार्बोहाइड्रेट का अधिक भाग ग्लूकोज के रूप में रक्त द्वारा शोषित होकर संपूर्ण शरीर में फैलकर उसे शक्ति प्रदान करता है। पित्त की क्रिया द्वारा चर्बी (1) साबुन तथा (2) इमल्शन-इन दो रूपों में बदल जाती है। साबुन वाला चर्म के निम्न भागों, गाल उदर की बाहरी दीवार तथा नितम्बों में एकत्र होता है तथा इमल्शन वाला भाग लसिका नलियों द्वारा संपूर्ण शरीर में फैलकर शरीर के भीतर गर्मी पहुँचाने का कार्य करता है।

**अभ्यास प्रश्न**

**1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।**

(क) छोटी आंत के दो भाग होते हैं जिन्हें..............और...............कहते हैं।

(ख) मुँह में रहने वाला............एन्जाइम भोजन में मिलकर कार्बोहाइड्रेट के पाचन में सहायता करता है।

(ग) मनुष्य शरीर की सबसे बड़ी ग्रन्थि...........है।

(घ) आंतों में होने वाली गति को...........गति कहते हैं।

(ड.) भोजन के सार भाग का शोषण.........और..........नलिकाओं द्वारा होता है।

**2. सत्य/असत्य बताइए।**

(क) यकृत मनुष्य शरीर में उदर से बांयी और वक्षोदरमध्यर पेशी के नीचे स्थित है।

(ख) चर्बी का इमल्शन वाला भाग लसिका नलियों द्वारा संपूर्ण शरीर में फैलकर शरीर के भीतर गर्मी पहुँचाने का कार्य करता है।

(ग) मल में दुर्गन्ध का कारण बड़ी आंत में उपस्थित इण्डोल व स्कैटोल पदार्थ हैं।

(घ) आमाशय की ग्रन्थियों से पित्त रस और क्लोम रस स्रावित होता है।

## 5.8 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप पाचन तंत्र प्रक्रिया को भली-भांति समझ चुके हैं। शरीर के आठ प्रमुख संस्थानों में पाचन तंत्र की अत्यधिक महत्व है। पाचन संस्थान मुख, अन्न प्रणाली, पाकस्थली, पक्वाशय, आंतों, यकृत पित्ताशय और अग्नाशय के माध्यम से पाचन क्रिया को सम्पादित करता है। हम जो भी खाते है वह सर्वप्रथम मुंह में जाता है और दांतों द्वारा छोटे टुकड़ों में बदल जाता है। मुंह में स्थित लार भोजन को अन्नप्रणाली के माध्यम से आमाशय तक पहुँचाती है। आमाशय की ग्रन्थियों से स्रावित गैस्टिक जूस पाचन क्रिया में सहायक होता है फिर भोजन पक्वाशय में पहुँच पित्त रस में मिल जाता है। तत्पश्चात् आंतों के माध्यम से ये शोषित होता है। भोजन का सार भाग शोषण के पश्चात् द्रव के रूप में रक्त में मिल जाता है तथा ठोस भाग गुदा द्वार से मल के रूप में बाहर निकल जाता है। इस प्रकार पाचन क्रिया विभिन्न अंगों के माध्यम से पूरी होती है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप सहज रूप से पाचक अंगों की संरचना व पाचन क्रिया को समझ गये होंगे।

## 5.9 शब्दावली

लार – लार मुख में पाया जाने वाला पाचन संगठन हैं।

कायम – आमाशय, छोटी आंत एवं बड़ी आंत की गतियों के फलस्वरूप भोज्य पदार्थ का छोटे-छोटे कणों में विभक्त होकर लुगदी जैसा बनने को कायम कहा जाता है।

पेप्सीन – प्रोटीन पाचक एन्जाइम

टायलिन – लार में पाये जाने वाला एन्जाइम

क्लोम – अग्न्याशय

लिवर – यकृत

## 5.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।**

(क) जेजूनम, इलियम

(ख) टाइलिन

(ग) यकृत

(घ) पेरीस्टालटिक

(ड.) रक्त, लसिका

(च) साबुन, डमल्शन

**2. सत्य/असत्य बताइए।**

(क) असत्य

(ख) सत्य

(ग) सत्य

(घ) असत्य

## 5.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।

2. गौढ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।

3. प्रकाश, ऐ0 (1998) अ टेक्स्ट बुक ऑफ एनाटॅामी एण्ड फिसियोलॉजी, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली।

4. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।

5. वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली

6. सक्सेना, ओ0 पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन,मथुरा

7. अग्रवाल, जी0सी0 (2010) मानव शरीर विज्ञान, एक्युप्रेशर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार संस्थान, इलाहाबाद

## 5.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. पाचन क्या है? पाचन संस्थान के मुख्य अंगों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

2. पाचन क्रिया को विस्तारपूर्वक समझाइये।

# इकाई 6 श्वसन तन्त्र की रचना व कार्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 श्वसन तंत्र : एक परिचय

6.4 श्वसन क्रिया के मुख्य अवयव

6.5 श्वसन क्रिया

6.6 श्वसन संस्थान के प्रमुख अंग

6.6.1 नाक

6.6.2 कण्ठ

6.6.3 स्वर यंत्र

6.6.4 श्वास नली

6.6.5 वक्ष गठर

6.6.6 फेफड़े

6.6.7 उदर-वक्ष व्यवधापक पेशी

6.7 सारांश

6.8 शब्दावली

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

## 6.11 निबंधात्मक प्रश्न

## 6.1 प्रस्तावना

इससे पहले की इकाई में आपने पढ़ा कि किस प्रकार पाचन तंत्र विभिन्न पाचन अंगों द्वारा पाचन में सहायता करता है तथा शरीर को पुष्ट रखने में योगदान देता है। आपने जाना कि पाचन क्रिया किन-किन अंगों से होती हुई सम्पन्न होती है तथा इन अंगों की क्या संरचना है।

इस इकाई में आप श्वसन तंत्र की प्रक्रिया व इससे संबंधित विभिन्न अंकों की संचना व क्रिया के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे। आप जानेंगे कि श्वसन तंत्र की क्या कार्य प्रणाली है तथा सांस लेना हमारे लिए कितना महत्वपूर्ण है तथा श्वसन संस्थान के अंग क्रमिक रूप से किस प्रकार श्वास क्रिया में हमारी सहायता करते है।

## 6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप :-

- श्वसन तंत्र का एक सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- श्वसन क्रिया में निहित मुख्य अवयवों का विस्तारपूर्वक अध्ययन कर सकेंगे।
- श्वसन क्रिया की कार्य प्रणाली की विस्तृत रूप से स्पष्ट कर सकेंगे।
- श्वसन संस्थान के प्रमुख अंगों के विषय में अध्ययन प्राप्त कर सकेंगे।
- नाक की संरचना एवं कार्य प्रणाली की विस्तृत रूप से विवेचना कर सकेंगे।
- कण्ठ की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से अध्ययन कर सकेंगे।
- श्वास नली की संरचना एवं कार्य का विश्लेषण कर सकेंगे।
- वक्ष गठर की संरचना एवं कार्य प्रणाली की विस्तृत रूप से विवेचना कर सकेंगे।
- फेफड़े की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत विवेचन कर सकेंगे।
- उदर-वक्ष व्यवधापक पेशी की संरचना एवं कार्य प्रणाली की विस्तृत रूप से विवेचना कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अंत में दिए गए प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे।

## 6.3 श्वसन तंत्र : एक परिचय

भोजन तथा पानी के बिना तो प्राणी कुछ समय तक जीवित भी रह सकता है, परन्तु श्वास के बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह पाता। जिस क्रिया द्वारा शरीर के विभिन्न भागों में उत्पन्न हुई 'कार्बनडाई आक्सइड' $CO_2$ आदि अशुद्धियों को बाहर निकाला जाता है तथा बाहरी वातावरण से शुद्ध प्राण-वायु अर्थात ऑक्सीजन (Oxygen) को ग्रहण किया जाता है, उसे श्वसन-क्रिया अथवा 'श्वासोच्छवास क्रिया' कहते हैं। प्रत्येक जीवित प्राणी के शरीर में यह क्रिया स्वाभाविक रूप से निरन्तर होती रहती है। इस क्रिया के बन्द होते ही मृत्यु हो जाती है। आगे आप श्वास क्रिया के मुख्य अवयवों के विषयमें पढ़ेंगे।

## 6.4 श्वसन क्रिया के मुख्य अवयव

- कण्ठ या गला अथ्वा गल कक्ष (Throat or Pharynx)
- स्वर यन्त्र (Larynx)
- वायुनली अथवा वायुनलिका (Wind-Pipe)
- श्वांस नली अथवा श्वांस नलिका (Branchi)
- फेफड़े (Lungs)
- वायुकोषायें (Air Cells or Alveoli)
- महाप्राचीरा पेशी अथवा वक्षोदर मध्यस्थ पेशी (Diaphragm)
- उदर की मांसपेशियाँ (Abdominal muscles)
- अन्तप्रर्शुकीय मांसपेशियाँ (Inter Costal Muscles)
- वक्षभित्ति (Chest Wall)
- श्वसनपेशियाँ (Respiratory Muscles)

उपरोक्त जानकारी के बाद सहज ही प्रश्न उठता है कि श्वसन क्रिया किस प्रकार संचालित होती है एवं उपरोक्त अंगल क्या-क्या भूमिका निभाते हैं। आगे आप इन सभी प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ हो पायेंगे।

## 6.5 श्वसन क्रिया

सर्वप्रथम वायु नाक के दोनों छिद्रों में होकर गले तथा स्वर-यन्त्र में होती हुई श्वांसनली में पहुँचकर, वायुनलिकाओं द्वारा फेफड़ों की छोटी-छोटी वायुकोषाओं में पहुँचती है। वहाँ रक्त तथा आई हुई वायु में ऑक्सीजन तथा कार्बन डाई ऑक्साइड का आदान-प्रदान होता है, जिसके कारण भीतर आई हुई वायु रक्त के कार्बन डाई ऑक्साइड से अशुद्ध होकर बाहर निकल जाती है तथा अशुद्ध रक्त वायु से ऑक्सीजन प्राप्त कर, चमकते हुए लाल रंग का होकर हृदय को लौट जाता है। एक स्वस्थ मनुष्य के शरीर में श्वासोच्छवास की यह क्रिया प्रति मिनट 16 से 24 बार तक होती है।

श्वासोच्छवास की क्रिया नाक के अतिरिक्त मुख्य द्वारा भी उत्पन्न हो सकती है। जुकाम हो जाने पर अथवा नाक में बलगम जमा हो जाने पर लोग मुँह से श्वांस लेते हैं, परन्तु मुँह से श्वांस लेना उचित  नहीं है। श्वास हमेशानामक से ही लेनी चाहिए। नाक के छिद्रों में छोटे-छोटे बाल होते हैं, जिनके द्वारा हवा छन कर ही भीतर प्रवेश कर पाती है, जबकि मुख द्वारा श्वास लेने पर उसके छनने की प्रक्रिया सम्पन्न नहीं हो पाती। फलत: वायु के साथ ही बाह्य वातावरण के जीवाणु भी भीतर प्रविष्ट हो जाते हैं। अत: श्वासोच्छवास की क्रिया हमेशा नासिका द्वारा ही सम्पन्न करनी चाहिए।

श्वसन—क्रिया (Respiration) में श्वास लेने की क्रिया को 'प्रश्वसन' (Inspiration) तथा वायु बाहर निकालने की क्रिया को 'नि:श्वसन' (Expiration) कहा जाता है।

छोटे बच्चों की श्वसन-क्रिया व्यस्कों की अपेक्षा अधिक होती है तथा वृद्धों की जवानों से कम होती है। श्वसन क्रिया पर मानसिक स्थिति का भी बहुत प्रभाव पड़ता है। क्रोध, भय, घबराहट तथा दौड़ने के समय श्वास की गति बढ़ जाती है तथा सोते समय घट जाती है।

श्वसन क्रिया मुख्यत: फेफड़ों के द्वारा होती है, परन्तु यह चर्म (त्वचा) के द्वारा भी होती है। त्वचा के भीतर जो असंख्य महीन छिद्र होते हैं, वे भी बाह्य  वातावरण से शुद्ध वायु को प्राप्त करके शरीर के भीतर पहुँचाते रहते हैं। श्वास क्रिया का मुख्य लाभ रक्त की शुद्धि है। श्वास क्रिया द्वारा जो बाहरी हवा शरीर के भीतर प्रविष्ट होती है, उसमें 79 प्रतिशत नाइट्रोजन तथा 21 प्रतिशत ऑक्सीजन होती है। ऑक्सीजन ही रकत को शुद्ध करती है तथा शरीर के भीतर होने वाली संकोच-क्रिया (Contraction) में सहायता पहुंचाती है।

जब हम श्वास लेते हैं, तब वायु सर्वप्रथम नाक में प्रविष्ट होकर 'नासाग्रसनी' में होती हुई मुँह के पृष्ठभाग में पहुंचाती है। वहाँ से वह स्वरयन्त्र (Larynx) में प्रवेश करती है। स्वर यन्त्र श्वसन संस्थान का वह अंग है, जो गले के मध्य भाग में स्थित होता है। इसके सामने दो चौड़ी तथा नरम हड्डियाँ होती हैं, जिन्हें 'थाइराइड कार्टिलेज' (Thyriod Cartilage) कहा जाता है। इसके ऊपरी भाग में एक ढक्कन होता है जिसे 'कण्ठच्छद' (Epiglottis) कहते हैं, लगा रहता है। जैसे ही भोजन गले में पहुँचता है, वैसे ही यह ढक्कन श्वास नली को ढक देता है, ताकि वह स्वर यन्त्र में न पहुँच

सके। श्वास प्रणाली तथा श्वसनी के भीतर एपिथीलियम (Epithelial) नामक कोष (Cells) होते हैं। ये तीन प्रकार के होते हैं – (1) स्तम्भाकार (Columnar) (2) रोमल (Ciliated) (3) श्लेष्मल (Mucus) रोमल सेल्स श्वसनी तथा श्वास प्रणाली में पाये जाते हैं। ये बाहर की ओर गति बढ़ाने में सहायक होते हैं। 'श्लेष्मल उपकला सेल्स' श्लेष्मिक झिल्ल्यिों में पाये जाते हैं। यह झिल्ली मुँह तथा श्वासनली के भीतर होती है। इसके भीतर ग्रंथि कोशिकाएँ (Glandular Cells) भी होते हैं, जिनसे एक प्रकार का तरल पदार्थ- श्लेष्मल (Mucus) निकलता है। इनमें कुछ झिल्लियों को मस्तिष्क आवरण, हृदयावरण, फुफ्फुसावरण तथा उदरावरण कहा जाता है।

## 6.6 श्वसन संस्थान के प्रमुख अंग

**6.6.1 नाक तथा नासा छिद्र (Nose and nostril)** नाक एक गठर के समान होती है। इसमें भीतर तथा बाहर की ओर दो द्वार होते हैं। बाहर की ओर के दोनों द्वार दायीं तथा बायीं ओर रहते हैं, जिन्हें 'नासा-रन्ध्र' कहा जाता है। इन दोनों रन्ध्रों के मध्य एक दीवार-सी होती है, जिसे नासिकास्थि पर्दा (Septum) कहा जाता है। यह दीवार अस्थि तथा उपास्थि के संयोग से निर्मित है।

**6.6.2 कण्ठ, गल-कक्ष अथवा गल कोष (Pharynx)** यह गह्वर मुख तथा नासिका के पृष्ठभाग को बनाता है तथा उससे एकदम मिला रहता है। इसके सामने वाले ऊपरी भाग में दोनों नासा-गठर, पृष्ठभाग में दोनों कण्ठ कर्णी नलियां मध्य में तथा सामने की ओर मुख तथा निम्न भाग में सामने की ओर वायुनली तथा पीछे की ओर कण्ठनली रहती है।

गल-कोष के उपरी भाग को नासा-स्वरयन्त्र, मध्यभाग को 'वाक् गलकक्ष' तथा निम्नभाग को 'स्वर यन्त्र' संबंधी गलकक्ष कहा जाता है।

**6.6.3 स्वर यंत्र (Larynx)** यह जीभ के पिछले भाग से अर्थात् जहाँ पर गलकोष की समाप्ति होती है, आरम्भ होती है। इसमें अनेक अस्थियाँ होती हैं, जैसे चुल्लिका उपास्थि, मुद्रा उपास्थि आदि। स्वर यन्त्र पर सर्वत्र श्लेष्मल झिल्ली चढ़ी होती है तथा इसके ऊपर की ओर 'गलकोष' तथा नीचे की ओर 'टेंटुआ' रहता है।

भोजन निगलते समय स्वर यन्त्र ऊपर को उठता है, फिर गिरता रहता है। जब इसमें वायु प्रविष्ट होती है तब स्वर उत्पन्न होता है। इसके सिरे पर एक ढक्कन सा होता है, जिसे स्वर यन्त्रच्छद कहते है। यह ढक्कन हर समय खुला रहता है, परन्तु खाना खाते समय बन्द हो जाता है, जिसके कारण भोजन स्वर यन्त्र में न गिरकर, अन्न प्रणाली में गिरता है।

**6.6.4 श्वास नली (Trachea) तथा वायुनली (Bronchi)** यह नली मुद्रा उपास्थि के निम्न भाग से उत्पन्न होती है। यह लगभग 4.5 इंच लम्बी तथा भीतर से खोखली होती है। यह गले के नीचे वक्ष-गह्वर में पहुँचकर दो शाखाओं में विभाजित हो जाती है। इन दोनों को वायु-नली कहते हैं। इसकी एक शाखा दायें फेफड़े में तथा दूसरी बायें फेफड़े में चली जाती है। ये दोनों शाखाऐं सूक्ष्म-से-सूक्ष्मतर होती हुई असंख्य शाखा-प्रशाखाओं में बँटकर फेफड़ों में फैल जाती हैं। उन प्रशाखाओं को 'श्वासोपनली' (Bronchial tubes) कहा जाता है। प्रत्येक श्वास नली के किनारों पर छोटे-छोटे अंगूर के गुच्छों की भांति कितने ही कोष अथवा थैलियाँ होती हैं, जिन्हें 'अति सूक्ष्म वायु कोष' (Air sacs) अथवा फुफ्फुस कोष (Lung sacs) कहा जाता है।

**6.6.5 वक्ष गठर (Thorax)** यह छाती के भीतर का भाग है जो दो भागों में विभक्त रहता है। हृत्पिण्ड तथा फेफड़े इसी में रहते हैं। प्रत्येक फेफड़े पर एक अत्यन्त कोमल परत चढ़ी रहती है, जिसे फुफ्फुसावरण (Pleura) कहा जाता है।

**6.6.6 फेफड़े (Lungs)** फेफड़े संख्या में दो होते हैं। ये वक्ष में, हृत्पिण्ड के दोनों ओर होते हैं, जिन्हें क्रमश: दाँया फेफड़ा कहा जाता है। इनका रंग धुमैला होता है। ये स्पंज की भांति कोमल, छेदभरे, फैलने तथा सिकुड़ने वाले तथा हल्के होते हैं।

दायें फेफड़े में तीन तथा बायें फेफड़ें में दो खण्ड (Lobes) होते हैं। प्रत्येक खण्ड कितने ही छोटे-छोटे उपखण्डों में बंटे रहते है। दोनों मुख्य खण्ड एक झिल्ली द्वारा एक दूसरे से अलग रहते हैं। ये दोनों फेफड़े मिलकर वक्ष:स्थल के तीन-चौथाई से भी अधिक भाग को घेरे रहते हैं। दोनों फेफड़ों में अनगिनत वायुकोष, श्वासनली, धमनी, शिराऐं तथा कोशिकाऐं भरी रहती हैं। वायुकोषों के चारों ओर असंख्य कोशिकाऐं लगी रहती हैं, जिनके दूसरे किनारे फुफ्फुसीय शिराओं के साथ मिले रहते हैं। वायुकोषों के कारण ही ये अंगूर के गुच्छों जैसे प्रतीत होते हैं। इन्हीं वायुकोषों में हवा भरती है।

दाँया फेफड़ा बाँया फेफड़े से आकार में 1 इंच छोटा, परन्तु कुछ अधिक चौड़ा होता है। दाँये फेफड़े का औसत भार 23 औंस तथा बाँये फेफड़े का 19 औंस होता है। स्त्रियों की अपेक्षा पुरूषों के फेफड़े कुछ भारी होते हैं। बाल्यावस्था में फेफड़ों का रंग कुछ लाल, युवावस्था में मटमैला तथा वृद्धावस्था में स्याहीकायल गहरे रंग का हो जाता है।

Pleural fluid produced by pleural membranes

- Acts as lubricant
- Helps hold parietal and visceral pleural membranes together

Two lungs- 1. Right lung : Three lobes, 2. Left lung : Two lobes

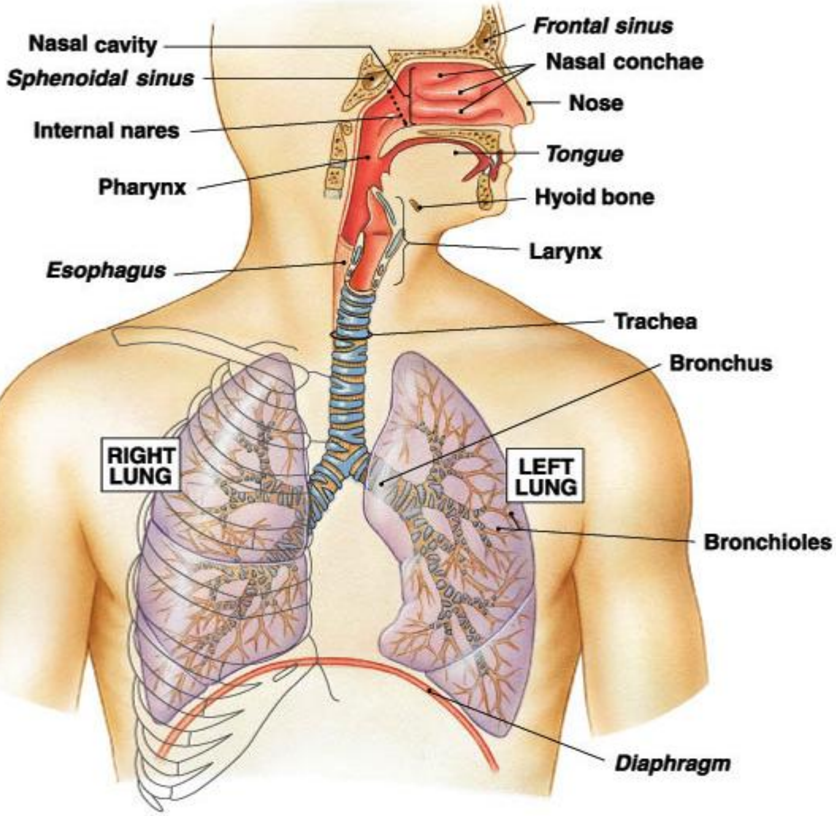


इन फेफड़ों द्वारा ही श्वास लेने तथा छोड़ने की क्रिया सम्पन्न होती है। रक्त शोधन की क्रिया में ये फेफड़े ही हृदय के मुख्य सहायक हैं। हृदय से आया हुआ अशुद्ध रकत शुद्ध होने के लिए फुफ्फुसीय धमनी (Pulmonary Artery) द्वारा इन दोनों फेफड़ों में पहुँचता है। ये उसमें से अशुद्ध वायु 'कार्बनडाई ऑक्साइड'को बाहर निकाल कर ऑक्सीजन भर देते हैं, जिससे रक्त शुद्ध हो जाता है और फेफड़ों द्वारा शुद्ध किया हुआ रक्त पुन: हृदय में पहुँच कर विभिन्न रक्त-वाहिनियों के माध्यम से सम्पूर्ण शरीर में संचरण करता है। इस प्रकार फेफड़े शरीर से मल बाहर निकालने वाले अंगों (Excretory Organs) का काम भी करते हैं।

दोनों फेफड़े अपने चारों ओर एक दोहरी झिल्ली से घिरे रहते हैं, जिसे फुफ्फुसावरण (Pleura) कहा जाता है।

**6.6.7 उदर-वक्ष व्यवधापक पेशी अथवा 'महाप्राचीरा'(Diaphragm)** वक्ष-गह्वर के नीचे की ओर एक चपटी मांसपेशी वक्ष-गह्वर तथा उदर को अलग करती है, उसी को 'उदर वक्ष' अथ्वा 'महाप्राचीरा' कहते हैं। यह पेशी दाँये फेफड़े के नीचे रहती है। इसके नीचे यकृत रहता है। इस पेशी

का मध्यभाग हृदय के नीचे रहता है तथा उसके नीचे आमाशय का स्थान है। इसी प्रकार बाँये फेफड़े के नीचे भी महाप्राचीरा रहती है तथा उसके नीचे 'प्लीहा' का स्थान है।

महाप्राचीरा एक गोल गुम्बद जैसी होती है। सिकुड़ने पर यह चपटी हो जाती है, जिसके कारण वक्ष-गुहा का आयतन बढ़ जाता है। वक्ष की कुछ पेशियाँ पसलियों के बीच में रहती है। उन पेशियोंके संकोचन के समय पसलियाँ कुछ ऊपर को उठ जाती हैं जिसके कारण छाती की हड्डी उभर जाती है। छातीकी भीतरी पसलियों के ऊपर उठने तथा महाप्राचीरा पेशी के चपटे होने के कारण वक्ष-गुहा का भीतरी आयतन सब ओर का बढ़ जाता है, उससे फेफड़े को अधिक फैलने के लिए स्थान प्राप्त होता है। फेफड़े के फैलने पर उसके भीतर बढ़ेहुए स्थान में हवा भर जाती है। श्वास छोड़ने पर यह पेशी पुन: ढीली होकर गुम्बद के आकार ही हो जाती है तथा वक्षगुहाका आयतन कम हो जाता है।

महाप्राचीरा के भीतर से ही गलनली तथा महाधमनी प्रवेश कर पाती है। अधोगा महाशिरा एवं वक्ष-प्रणाली से अन्य स्नायु तथा रक्तवाहिनी नाडियाँ जाती हैं।

यथार्थ में महाप्राचीरा के दो स्तम्भ होते हैं, जिनके ऊपर दोनों फेफड़े स्थित रहते हैं।

फेफड़े के सभी अंग दिन-रात स्वत: ही अपना-अपना कार्य करते रहते हैं। फेफड़ों का कार्यकरना बन्द कर देने को 'श्वासावरोध'कहते हैं। सामान्यत: मृत्यु होने तक फेफड़े अपना कार्य करना बन्द नहीं करते, परन्तु कभी-कभी किन्हीं विशेष कारणों, जैसे-पानी में डूब जाना, बिजली का झटका लगना आदि से कुछ देर के लिए श्वास-क्रिया में अवरोध उत्पन्न हो जाता है। उस समय कृत्रिम श्वसन विधि का सहारा लिया जाता है। कृत्रिम श्वसन विधि का प्रयोग सफल हो जाने पर फेफड़े पुन: अपना कार्य करना आरम्भ कर देते हैं।

**अभ्यास प्रश्न**

1) **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।**

(क) एक स्वस्थ मनुष्य के शरीर में श्वासोच्छवास की प्रक्रिया.....................बार प्रति मिनट होती है।

(ख) फेफड़ों पर चढ़ी कोमल परत को.........................कहते है।

(ग) दाएँ फेफड़े का औसत भार.....................औंस तथा बाएँ फेफड़े का औसत भार..............औंस होता है।

(घ) फेफड़ों का कार्य बंद कर देने को...............कहते है।

(ङ) हृदय से आया हुआ अशुद्ध रक्त शुद्ध होने के लिए................द्वारा फेफड़ों में पहुँचता है।

(च) श्वास प्रणाली तथा श्वसनी के भीतर............कोषा होते हैं।

**2) सत्य/असत्य बताइए।**

(क) श्वसन-क्रिया में श्वास लेने की क्रिया को नि:श्वसन तथा श्वास छोड़ने की क्रिया को प्रश्वसन

कहते हैं।

(ख) दाएँ फेफड़े में दो तथा बाएँ फेफड़े में तीन खण्ड होते हैं।

(ग) महाप्राचीरा सिकुड़ने पर चपटी हो जाती है जिससे वक्ष-गुहा का आयतन बढ़ जाता है।

(घ) नासिका छिद्रों के मध्य एक दीवार होती है जिसे 'सेप्टम' कहते हैं।

## 6.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप जान चुकें है कि श्वसन तंत्र द्वारा शरीर के विभिन्न भागों में उत्पन्न हुई कार्बन डाई ऑक्साइड आदि अशुद्धियाँ बाहर निकलती हैं तथा बाहर के वातावरण से शुद्ध प्राण वायु ऑक्सीजन नासिका छिद्रों के माध्यम से अंदर प्रतिष्ट करती है। श्वसन क्रिया के मुख्य अवयव नाक, कण्ठ, स्वर, यंत्र, श्वास नली, वक्ष गठर, फेफड़े और उदर-वक्ष व्यवधापक पेशी हैं। श्वसन क्रिया में श्वास लेने की क्रियाको 'प्रश्वसन'तथा श्वास बाहर निकालने की क्रिया को 'नि:श्वसन' कहा जाता है। श्वसन क्रिया में नासिका छिद्रों द्वारा वायु गले एवं स्वर यंत्र से होती हुई श्वासनली में पहुँचती है। वहाँ रक्त तथा आई हुई वायु में ऑक्सीजन व कार्बन डाई ऑक्साइड का आदान-प्रदान होता है तथा अशुद्ध वायु बाहर निकल जाती है तथा शुद्ध वायु रक्त में मिल जाती है। श्वास लेना मनुष्य के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

## 6.8 शब्दावली

प्रश्वसन - वायु को नासिका द्वारा भीतर लेने को प्रश्वसन कहा जाता है।

नि:श्वसन – वायु बाहर निकालने की क्रिया।

श्वासोच्छवास – श्वास लेने एवं छोड़ने की क्रिया।

अस्थियाँ – हड्डियाँ

रक्तशोधन – रक्तका शुद्ध होना।

मल – विषाक्त पदार्थ, जो शरीर के लिए हानिकारक होते है।

श्वासावरोध – श्वास लेने एवं छोड़ने में बाधा उपस्थित होना।

## 6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।**

(क) 16-24

(ख) फुफ्फुसावरण

(ग) 23,19

(घ) श्वासवरोध

(ङ) फुफ्फुसीय धमनी/पल्मोनरी धमनी

(च) एपीथीलियल

**2. सत्य/असत्य**

(क) असत्य

(ख) असत्य

(ग) सत्य

(घ) सत्य

## 6.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, प्रो. अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।
2. गौढ़ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवेरोड रोहतक।
3. प्रकाश, ऐ. (1998) अ टेक्स्ट बुक ऑफ एनाटॉमी एण्ड फिसियोलॉजी, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली।

4. शर्मा डा. तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।
5. पाण्डेय डा. के.के. (2003) रचना शरीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।
6. वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली।
7. दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन, मथुरा।
8. सक्सेना, ओ.पी. (2009) एनाटॉमी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन, मथुरा।
9. अग्रवाल, जी.सी. (2010) मानव शरीर विज्ञान, एक्युप्रेशर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार संस्थान, इलाहाबाद।
10. Chaurasia's B.D. (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.

## 6.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. श्वसन क्रिया के मुख्य अवयवों का परिचय दीजिए।
2. श्वसन क्रिया को विस्तारपूर्वक समझाइए।

## इकाई 7 – तंत्रिका तंत्र की रचना व कार्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 तंत्रिका तंत्र – एक परिचय

7.4 तंत्रिका तंत्र के विभाग

7.4.1 मस्तिष्क – सुषुम्ना (केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र)

7.4.2 संवेदनात्मक अथवा स्वचालित तंत्रिका तंत्र

7.4.3 परिसरीय तन्त्रिका तंत्र

7.5 सारांश

7.6 शब्दावली

7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.9 निबंधात्मक प्रश्न

## 7.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने श्वसन संस्थान की रचना व कार्यविधि का अध्ययन किया और जाना कि किस प्रकार श्वास का आरोहण फेफड़ों के द्वारा शरीर में होता है तथा अवशिष्ट वायु कार्बनडाई आक्साइड के रूप में श्वास के अवरोहण में निकलती हैं।

प्रस्तुत इकाई में आप शरीर के एक प्रमुख तंत्र तंत्रिका तंत्र के विषय में पढ़ेंगें कि तंत्रिका तंत्र किस प्रकार शरीर की तथा उसके विभिन्न भागों एवं अंगों की समस्त क्रियाओं का नियन्त्रण, नियमन तथा समन्वयन करता है और समस्थिति बनाए रखता है यह आप सरलता से जानेगे व शरीर के सभी ऐच्छिक व अनैच्छिक कार्यो पर नियंत्रण तथा समस्त संवेदनाओं को ग्रहण कर कैसे मस्तिष्क में पहुँचाया जाता है इसके विषय में आप ज्ञान अर्जित करेंगे।

तंत्रिका तंत्र के तीन मुख्य विभाग है – पहला मस्तिष्क सुषम्ना तंत्र तथा दूसरा संवेदनात्मक अथवा स्वचलित तंत्र परिसरीय तन्त्रिका तन्त्र व आगे आप पढ़ेंगे कि ये भाग कौन-कौन से होते हैं और किस प्रकार कार्य करते हैं।

## 7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- तंत्रिका तंत्र के बारे में एक सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

- तंत्रिका तंत्र की रचना का विस्तृत रूप से विवेचन कर सकेंगे।
- तंत्रिका तंत्र के प्रमुख विभाग प्रकारों को भली-भॉंति समझ सकेंगे।
- मस्तिष्क-सुषम्ना संस्थान के विभिन्न अंगों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- मस्तिष्क-सुषुम्ना संस्थान के विभिन्न अगों के कार्यो के बारे में विस्तारपूर्वक ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- मस्तिष्क के विभाग व उपविभागों की कार्य प्रणाली व महत्वपूर्ण मुख्य कार्यो के विषय में विस्तार से वर्णन कर सकेंगे।
- सुषुम्ना के मुख्य विभाग व महत्वपूर्ण कार्यो के बारें में जानकारी प्राप्त कर उनका वर्णन कर सकेंगे।
- संवेदनात्मक अथवा स्वचलित तंत्रिका तंत्र के स्वरूप एवं विभिन्न कार्यो के विषय में विस्तृत अध्ययन कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में दिए गए प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे।

## 7.3 तंत्रिका तंत्र

मानव-शरीर की देखभाल तथा शारीरिक अंगों का समुचित रूप से संचालन करने का दायित्व ‘तंत्रिका तंत्र’ पर होता है। ये नाड़ियाँ छोटी-बड़ी विभिन्न आकारों में| सहस्राधिक संख्या में| शरीर के विभिन्न भागों में फैली रहती हैं तथा शरीर के सभी अंग-प्रत्यंग इन्हीं के आधार पर सुगठित तथा सक्रिय बने रहते हैं। यही सम्पूर्ण शरीर पर शासन करती हैं तथा दिन-रात नियमित रूप से अपने कार्य में संलग्न बनी रहकर, कभी एक क्षण के लिए भी विश्राम नहीं करती है तथा तंत्रिका तंत्र शरीर की असंख्य कोशिकाओं की क्रियाओं में एक प्रकार का सामंजस्य उत्पन्न करता है ताकि सम्पूर्ण शरीर एक इकाई के रूप में कार्य कर सके व तन्त्रिका तंत्र तन्त्रिका ऊतकों से बना होता है। जिनमें तंत्रिका कोशिकाओं या न्यूरॉन्स और इससे सम्बन्धित तंत्रिका तन्तुओं तथा एक विशेष प्रकार के संयोजी ऊतक जिसे न्यूरोग्लिया कहते है का समावेश होता है।

## 7.4 तंत्रिका तंत्र के विभाग

तंत्रिका तंत्र को निम्न तीन भागों में विभाजित किया गया है-

(A) मस्तिष्क सुषुम्ना संस्थान (Cerebral Spinal) इसे ‘केन्द्रीय तन्त्रिका तंत्र’ (Central of Cerebral Nervous System) भी कहा जाता है। इसमें ऐच्छिक (Voluntary) तंत्रिकाए होती हैं।

(B) संवेदनात्मक संस्थान (Sympathetic Spinal) इसे ‘स्वतंत्र नाड़ी संस्थान’ (Autonomic Nervous System) अथवा स्वचालित तन्त्रिका तन्त्र (Autonomus Nervous System or

Sympathetic Nervous System) भी कहा जाता हैं। इसमें अनैच्छिक (Involuntary) तन्त्रिकाएं होती हैं।

(C) परिसरीय तन्त्रिका तन्त्र।

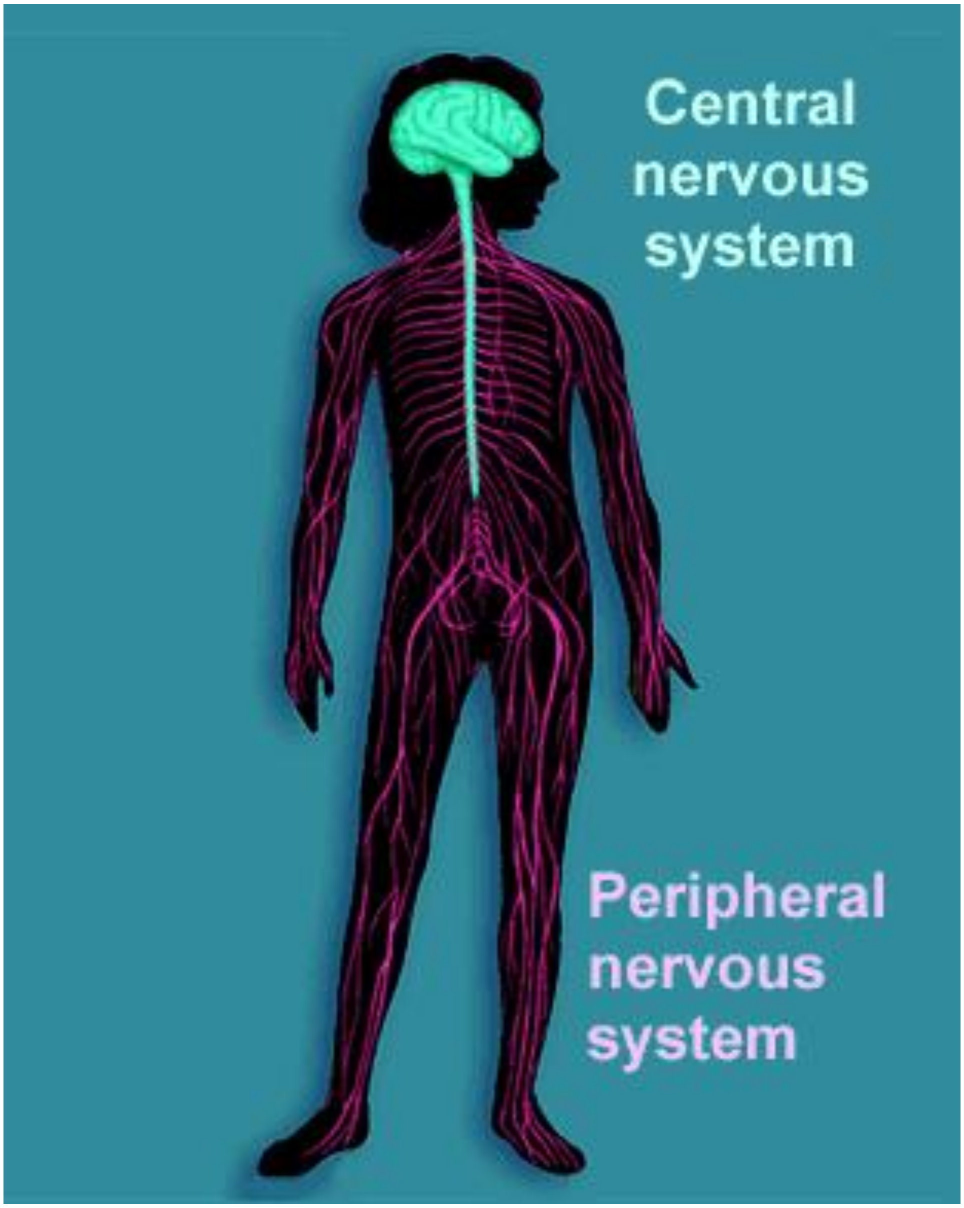


**Nervous System**

**7.4.1 मस्तिष्क-सुषुम्ना अथवा केन्द्रीय तन्त्रिका तंत्र** - इस भाग में निम्नलिखित अंगों का समावेश होता है-

**(A) मस्तिष्क**

(क) अग्रमस्तिष्क (Forebrain)

(ख) मध्यमस्तिष्क (Mid Brain)

(ग) पश्चमस्तिष्क (Hind Brain)

**(B) मस्तिष्क सेतु (Pons Veolia)**

**(C) सुषुम्ना नाड़ी** – इसमें निम्न दो भाग है।

(1) सुषुम्ना काण्ड अर्थात् मेरुदण्ड (Spinal Cord)

(2) सुषुम्ना शीर्ष

**(A) मस्तिष्क -** यह मन, बुद्धि तथा शारीरिक चेतना का मूलाधार है। यह मनुष्य की इच्छानुसार सम्पूर्ण शरीर को संचालित करता है। यह आठ हड्डियों से बने एक कोष्ठ-खोपड़ी (Cranium) की भीतरी गुहा के भीतर स्थित होता है। इसका निर्माण नर्व-सेल्स से होता है, अतः यह एक बहुत ही कोमल अंग है। संसार के समस्त प्राणियों में मनुष्य का मस्तिष्क ही सर्वाधिक विकसित माना गया है। अन्य अंगों की अपेक्षा इसका आकार भी बड़ा होता है।

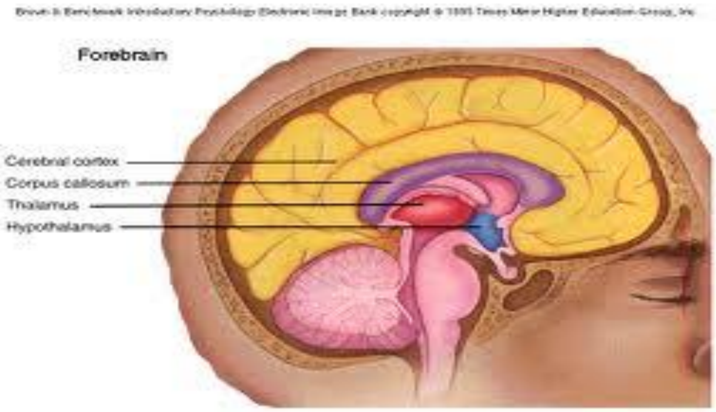


मनुष्य के मस्तिष्क की बनावट 'अखरोट' से मिलती-जुलती है। इसका रंग भूरा होता है। इसके आगे-पीछे के भाग की लम्बाई लगभग 6 इंच तथा दाँई-बाँई ओर चौड़ाई लगभग 5 इंच होती है। इन आकारों में न्यूनाधिकता भी पाई जाती है।

पुरुष के मस्तिष्क का भार 50 से 60 औंस तथा स्त्रियों के मस्तिष्क का भार 45 से 48 औंस तक होता है। यह एक प्रकार के 'धूसर पदार्थ' तथा 'श्वेत पदार्थ' के वात-कोषों एवं वात-तन्तुओं का बना होता है। आयु के प्रथम चार वर्षों तक इसका भार तेजी से बढ़ता है तथा 20 वर्ष की आयु तक इसका भार एक निश्चित परिमाण तक पहुँच जाता है।

मस्तिष्क - मस्तिष्क को सामान्य रूप से तीन भागों में बॉटा गया है – (क) अग्रमस्तिष्क

(ख) मध्यमस्तिष्क (ग) पश्चमस्तिष्क इनका विवरण इस प्रकार है –

(क) अग्रमस्तिष्क – यह मस्तिष्क का आगे का भाग होता है जिसमें निम्न रचनाऍं स्थित रहती है –

प्रमस्तिष्क या सेरीब्रम – यह केन्द्रिय तंत्रिका तंत्र का प्रमुख तथा मस्तिष्क का सबसे बड़ा भाग है। प्रमस्तिष्क के ऊपर का भाग गुम्बज की तरह और नीचे का भाग समतल होता है व कपाल गुहा का अधिक भाग प्रमस्तिष्क से भरा रहता है तथा प्रमस्तिष्क एक गहरी लम्बवत् दरार या विदर के द्वारा दाहिने एवं बाये अर्द्ध गोलार्द्ध में विभाजित रहता है। यह पृथ्क्करण आगे एवं पीछे के भाग पर पूर्ण होता है लेकिन मध्य में ये अर्द्धगोलार्द्ध तंत्रिका तन्तुओं की चौड़ी पट्टी के द्वारा आपस में जुड़े रहते है जिसे कॉर्पस कैलोसम कहते है जो तंत्रिका कोशिकाओं का बना होता है और भूरे रंग का होता है। इसे ग्रे मैटर कहते है।

**प्रमस्तिष्क के कार्यात्मक क्षेत्र –**

1. संवेदी क्षेत्र – यह मध्य दरार के ठीक पीछे पैराइटल लेब में स्थित क्षेत्र होता है।

- ब्रोजाक क्षेत्र – यह लेटरल सल्कस के ठीक ऊपर तथा प्रेरक पूर्व क्षेत्र होता है।
- वाणी क्षेत्र – यह लेटरल लेब के निचले भाग में स्थित क्षेत्र होता है।
- दृष्टि क्षेत्र – यह आम्क्सीपिटल लेब के निचले सिरे पर स्थित क्षेत्र होता है। जिसमें वस्तुओं के चित्रों एवं अन्य दृष्टि सम्बन्धी संवेदों को गृहण किया जाता है।

2. बेसल को गृहण किया जाता है।

3. थैलेमस

(ख) मध्यमस्तिष्क - मध्यमस्तिष्क, अग्र – मस्तिष्क एवं पश्च - मस्तिष्क के बीच और मस्तिष्क स्तम्भ के ऊपर स्थित रहता है इसमें सेरीब्रल पेडन्कल्स एवं कॉर्पोरा क्वाड्रिजेमिना समावेश होता है। जो प्रमस्तिष्कीय कुल्या को घेरे रहते है जो

कि तृतीय एवं चतुर्थ वेन्ट्रिकलों के बीच एक नलिका होती है सेरीब्रल पेडन्कल्स डंटलनुमा रचनाए होती है जो इसकी वेंट्रल सतह पर स्थित होती है। कॉर्पोरा क्वाड्रिजेमिना डॉर्सल सतह पर चार गोलाकार उभार होते है जिन्हें दो जोड़े संवेदी केन्द्रों में विभक्त किया गया है एक को सुपीरियर कोलीकुलि तथा दूसरे को इन्फीरियर कोलीकुलि कहते है तथा सुपीरियर कोलीकुलि द्वारा किसी वस्तु को देखने की क्रिया सम्पन्न होती है।

(ग) पश्च मस्तिष्क – यह मस्तिष्क का सबसे पीछे का भाग होता है जिसमें पोन्स, मेड्यूला ऑब्लांगेटा तथा अनुमस्तिष्क का समावेश रहता है।

(1) पोन्स – यह अनुमस्तिष्क के आगे मध्यमस्तिष्क के नीचे तथा मेड्यूला ऑब्लांगेटा के ऊपर स्थित रहता है यह मस्तिष्क स्तम्भ के बीच का भाग होता है।

(2) मेड्यूला ऑब्लांगेटा – यह मस्तिष्क स्तम्भ का सबसे नीचे का भाग होता है जो ऊपर की ओर पोन्स एवं नीचे की ओर स्पाइनल कॉर्ड के बीच स्थित रहता है।

(3) अनुमस्तिष्क या सेरीबेलम – यह प्रमस्तिष्क के ऑक्सिपिटल लोब के नीचे पीछे की ओर उभरा हुआ भाग होता है जो मेड्यूला ऑब्लांगेटा के ऊपर, पोन्स के पीछे कपालीय गुहा में स्थित होता है।

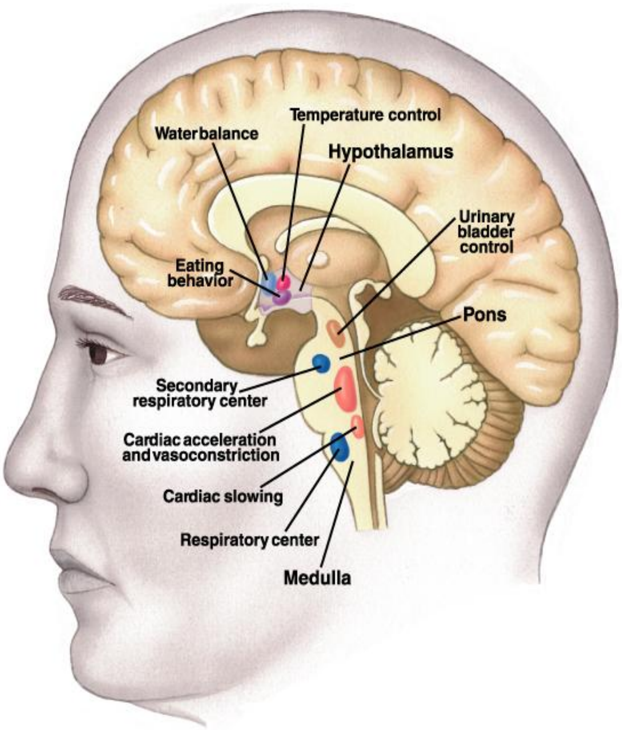

(B) **मस्तिष्क सेतु** (Pons Verily) & यह लघु मस्तिष्क के सामने का एक गोल घुमावदार तथा सफेद रंग का अवयव है। सुषुम्ना, लघु मस्तिष्क तथा वृहद् मस्तिष्क में जाने वाली सभी नाड़ियाँ यहीं से निकलती हैं। इसके नीचे छोटे-छोटे गोल दाने होते हैं, जिन्हें 'वृन्तपिण्ड' (Corpus mammillae) कहा जाता है। इसी के सामने एक वृहद् पिण्ड (Hypnosis) फिर दृष्टि - योजिका (Optic Chiasm) तत्पश्चात् सुषुम्ना (Medulla Oblongata) अथवा घ्राण-पथ है।

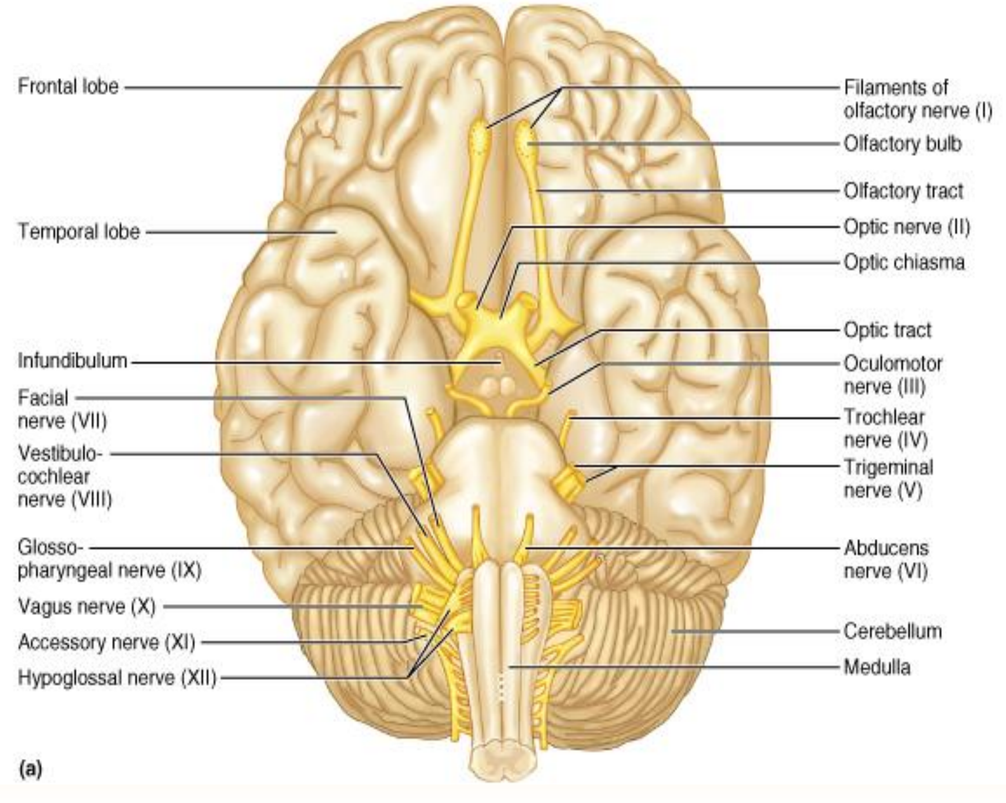


**(C) सुषुम्ना नाड़ी -** यह एक सुई जैसी शक्ल की नाड़ी है, जिसका लगभग डेढ़ इंच लम्बा सिरा ऊपर की ओर रहता है। इसकी मोटाई सर्वत्र एक समान नहीं होती है। इसका ऊपरी भाग सफेद तथा भीतरी भाग धुमैले रंग का होता है। इसके मध्य भाग में एक छिद्र है, जिसमें एक नाली रहती है और वह मस्तिष्क के चतुर्थ कोष्ठ से जा मिलती है। यह नाड़ी पश्चाद् कपालास्थि के महाविवर से निकलती है।

इसका दूसरा सिरा मेरुदण्ड की मध्य प्रणाली में रहता है। गर्दन में प्रवेश के स्थान पर यह लगभग आधा इंच मोटी होती है तथा आगे चलकर पतली और नुकीली हो जाती है।

इस नाड़ी के दो मुख्य भाग हैं-

1- सुषुम्ना कॉर्ड (Spinal Cord)

2- सुषुम्ना शीर्ष (Medulla Oblongata)

(1) सुषुम्ना कार्ड - लघु मस्तिष्क जहाँ समाप्त होता है, वहीं से सुषुम्ना आरंभ हो जाती है। इसे मस्तिष्क की ही एक शाखा कहा जा सकता है। यह वातनाड़ी के रूप में सुषुम्नाकार्ड (मेरुदण्ड) के भीतर रहती है तथा अपने ऊपरी भाग में 'सुषुम्ना-शीर्ष' से मिली रहती है। मस्तिष्क की भाँति इसके ऊपर भी तीन आवरण चढ़े रहते हैं। यह प्रथम ग्रैवेयक कशेरुक से लेकर प्रथम कटि-कशेरुक तक रहती है। अपने अन्तिम भाग में यह घोड़े की पूंछ के समान नाड़ियों के समूह में बदल जाती है। इसके ऊपर चढ़े हुए आवरणों को क्रमशः 1. डयूरामेटर, 2. आर्कनायडमेटर, 3. पायामेटर कहा जाता है। इनमें ऊपरी आवरण सबसे मोटा तथा मजबूत होता है।

(2) सुषुम्ना शीर्ष - यह सुषुम्ना काण्ड का ऊपरी भाग है, जो सुषुम्ना नाड़ी से मस्तिष्क का सम्बन्ध जोड़ता है। यह लगभग डेढ़ इंच लम्बा तथा लगभग पौना इंच मोटा होता है। यह अवयव मस्तिष्क का सबसे पिछला भाग है तथा सिर के पीछे एवं गर्दन के ऊपरी भाग में स्थित रहता है। इसका ऊपरी भाग चौड़ा तथा निम्न भाग सँकरा होता है। इसका पृष्ठ भाग मस्तिष्क के चतुर्थ निलय की छत का निर्माण करता है। यह उन तन्त्रिकाओं से मिलकर बना है, जो सुषुम्ना से आरम्भ होकर मस्तिष्क की ओर जाती हैं, तथा लघु मस्तिष्क से आरम्भ होकर सुषुम्ना की ओर जाती हैं। इस स्थान पर तन्त्रिकाएं एक दूसरों को पार करती हुई दांये से बांये तथा बांये से दांयी ओर को जाती हैं। ये तन्त्रिकाएं लघु मस्तिष्क से भी सम्बन्ध रखती हैं। सुषुम्ना शीर्ष का आधार चतुर्थ निलय से मिलकर बना है और यह पतंग के आकार का होता है।

'सुषुम्ना शीर्ष' में शारीरिक क्रिया के प्रायः सभी महत्वपूर्ण केन्द्र रहते हैं, जैसे-रक्त संचरण केन्द्र (Circulation Centre) तथा श्वसन केन्द्र (Respiratory Centre) आदि। निम्नलिखित 12 जोड़ी मस्तिष्कीय-नाड़ियाँ इसी से निकलती हैं-

- घ्राण नाड़ी (Olfactory Nerve) & यह पूर्ण सांवेदानिक (Sensory) नाड़ी मस्तिष्क को घ्राण (गंध) का ज्ञान कराती है।

- दृष्टि नाड़ी (Optic Nerve) & इस सांवेदनिक (Sensory) नाड़ी द्वारा मस्तिष्क को दृष्टि का ज्ञान होता है। इसके द्वारा देखने की क्रिया सम्पन्न होती है।

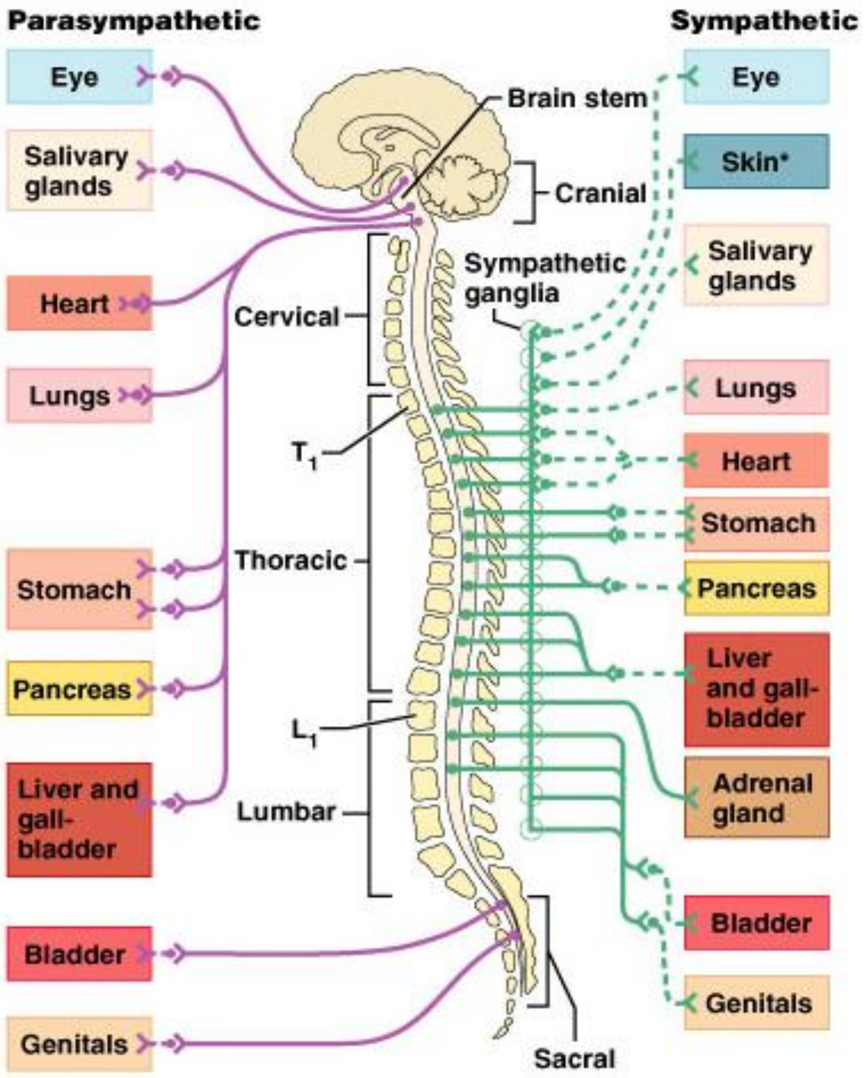


- नेत्रसंचालिनी तृतीया नाड़ी (Ocular-Motor Nerve) यह गतिवाहक अथवा चेष्टावह (Motor) नाड़ी आँख की मांसपेशियों को गति देकर, अँधेरे तथा उजाले में दृष्टि-नियमन (Accommodation) का कार्य करती है । नेत्र संचालिनी चतुर्थी नाड़ी (Trochlear) & यह भी गतिवाही अथवा चेष्टावह (Motor) नाड़ी है। यह आँख की पलकों को खोलने तथा बन्द करने का कार्य करती है।

- त्रिशाखा नाड़ी (Trigeminal Nerve) यह एक शिरा अर्थात् गतिवाहक एवं संज्ञावह (Sensory and Motor) नाड़ी है। यह जबड़े की मांसपेशियों, जीभ, दाँत तथा मस्तक की मांसपेशियों की क्रियाओं को सम्पन्न करती है।

- नेत्र संचालिकी षष्ठिका नाड़ी (Abducesns) यह भी गति वाहक (Motor) नाड़ी है। यह आँखों के ढेलों पर लगाम जैसा काम करती है। इसके प्रभाव से दोनों नेत्र-गोलक किसी दिशा में एक ही साथ घूमते हैं, जिसके कारण दृष्टि-क्षेत्र में भी अधिक स्पष्टता आ जाती है।

- मौखिकीया नाड़ी (Facial) & यह भी गतिवाहिका (Motor) नाड़ी है। यह चेहरे की मांसपेशियों में संकोच उत्पन्न करके क्रोध, घृणा, प्रसन्नता, वैराग्य, गंभीरता आदि के भाव प्रकट करती है।

- नाड़ी (Auditory) यह सांवेदनिक (Sensory) नाड़ी है। यह श्रवण - शक्ति (Hearing) तथा शरीर के सन्तुलन (Balance) को स्थिर करती है।

- जिह्वा कण्ठीय नाड़ी (Glassy Pharyngeal) यह गतिवाहक तथा संज्ञावह (Sensory and Motor) नाड़ी है। यह जिह्वा के अग्रिम 2/3 भाग पर स्वाद तथा निगलने वाली मांसपेशियों (swallowing Muscles) के कार्यों पर नियन्त्रण करती है।

- वेगस नाड़ी (Vegas) यह भी भिन्न प्रकार की (Sensory and Motor) नाड़ी है। यह स्वरयन्त्र (Larynx)] हृदय (Heart)] फेफड़े (Lungs)] आमाशय (Stomach)] यकृत (Liver)] अग्नाशय (Pancreas)] प्लीहा (Spleen) तथा आँतें (Intestines) आदि अंगों के कार्य को नियन्त्रित करती है।

- सहायिका नाड़ी (Accessory) यह चेष्टावह (Motor) वर्ग की नाड़ी है। इसका महत्व नाममात्र का होता है। यह गर्दन तथा पीठ की मांसपेशियों की गति के ऊपर नियन्त्रण रखती है।

- जिह्वा अधोवर्ती नाड़ी (Hypoglossal) यह भी चेष्टावह (Motor) नाड़ी है। यह बोलते समय अथवा भोजन चबाते समय जिह्वा की मांसपेशियों पर नियन्त्रण रखती है तथा उनके समाचार संवेदनाओं आदि से मस्तिष्क को परिचित कराती है साथ ही मस्तिष्क द्वारा प्रदत्त आज्ञाओं को सम्बन्धित अवयवों की मांसपेशियों तक पहुँचा कर उन्हें कार्यरूप में परिणत कराने में सहायक बनती है।

- सुषुम्ना से उत्पन्न अन्य तन्त्रिकाएँ **(**Spinal Nerves**)** सुषुम्ना से नाड़ियों के कुल 31 जोड़े निकलते हैं। ये नाड़ियाँ सुषुम्ना से दो ओर से जुड़ी रहती हैं तथा दोनों ओर के छिद्रों से निकल कर सम्पूर्ण शरीर में फैली रहती हैं। ये नाड़ियाँ जिन दो भागों से जुड़ी रहती हैं, उन्हें क्रमशः 1) पूर्व मूल (Anterior or Motor) तथा 2) पाश्चात्यमूल (Posterior) कहा जाता है। कुछ स्थानों पर ये नाड़ियाँ गुच्छे का रूप ग्रहण कर लेती हैं। नाड़ियों के 31 जोड़े निम्नांकित हैं-

1. कण्ठदेशीय अथवा ग्रैव तन्त्रिकाऐं (Cervical Nerves) - 8

2. वक्षदेशीय तन्त्रिकाएँ (Thoracic Nerves) - 12

3. कटि स्थानीय तन्त्रिकाएँ (Lumber Nerves) - 5

4. त्रिक-स्थानीय तन्त्रिकाएँ (Sacral Nerves) - 5

5. अनुत्रिक अथवा गुदास्थि तन्त्रिका (Coccygeal Nerves) - 1

कुल - 31 जोड़े

**7.4.2 संवेदनात्मक अथवा स्वचालित तंत्रिका तंत्र -** शरीर के वे अंग, जिनका निर्माण अनैच्छिक मांसपेशियों (Involuntary Muscle Fibers) द्वारा हुआ है, स्वतंत्रता पूर्वक संचालित होते हैं और उनकी गति का ज्ञान भी हमें नहीं हो पाता, जैसे- हृदय, गर्भाशय, उदर, प्लीहा, आँत आदि 'स्वचालित - तन्त्रिका तन्त्र' ऐसे ही अंगों का संचालन करते हैं। इन अनैच्छिक अंगों का संचालन करने वाली दो प्रकार की तन्त्रिकाएँ (Nerves) होती हैं -

1. त्वरक तन्त्रिकाएँ (Accelerator Nerves) - ये तन्त्रिकाएँ अंगों की क्रिया को तेज करती हैं। इन तन्त्रिकाओं की उत्तेजना के कारण ही इनसे सम्बन्धित अंगों की क्रिया में तेजी आती है। इन्हें 'अनुकम्पी तन्त्रिका' भी कहा जाता है।

2. संदमक तन्त्रिकाएँ (Depressor or Inhibitory Nerves) & इन तन्त्रिकाओं की उत्तेजना से पहले वाले अंगों की शक्ति में कमी आती है। जब ये तन्त्रिकाएँ अधिक उत्तेजित हो जाती है, तब इनसे सम्बन्धित अंगों की क्रिया एकदम रुक जाती है। इन्हें 'परानुकम्पी तन्त्रिका' भी कहा जाता है।

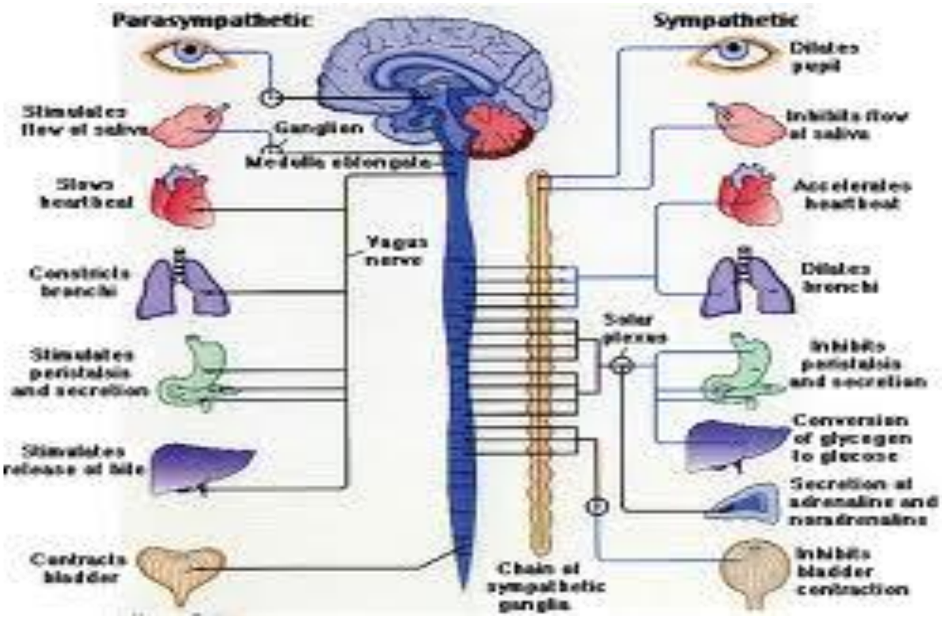


संवेदनात्मक अथवा स्वचालित अथवा अनैच्छिक तन्त्रिकाएँ जिन अंगों पर प्रभाव डालती हैं, वे निम्न हैं-

1. लार ग्रंथियाँ 2. स्वर यंत्र

3. फेफड़े 4. हृदय

5. धमनियाँ 6. आमाशय

7. आँतें 8. वृक्क

9. गर्भाशय 10. अग्नाशय

11. यकृत 12. त्वचा

**7.4.3 परिसरीय तन्त्रिका तंत्र –**

तन्त्रिका तंत्र के इस भाग में मस्तिष्क से निकलने वाली 12 जोड़ी कपालीय तन्त्रिकाओं एवं स्पाइनल कॉर्ड से निकलने वाली 31 जोड़ी स्पाइनल तन्त्रिकाओं का समावेश होता है जिनसे शाखाये निकलकर शरीर के विभिन्न अंगों एवं ऊतकों में पहुँचाती है।

1. तन्त्रिका – तंत्रिका, केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र के बाहर मस्तिष्क एवं स्पाइनल कोर्ड को शरीर के विभिन्न अंगों से सम्बन्ध रखने वाली तंत्रिका तन्तुओं की एक-एक पूलिका (बंडल) अथवा पूलिकाओं का एक समूह होती है।

तंत्रिकाएँ निम्न तीन प्रकार की होती है-

1. संवेदी या अभिवाही तंत्रिकाएँ

2. प्रेरक या अपवाही तंत्रिकाएँ

3. मिश्रित तंत्रिकाएँ

- स्पाइनल तंत्रिकाएँ – स्पाइनल कौर्ड से 31 जोड़ी स्पाइनल तंत्रिकाएँ निकलती है जो सटी हुई बर्टीबीज वर्तिब्रीज से बने इन्टरवर्टिब्रल रन्ध्रों से होकर वर्टिब्रल केनाल के बाहर निकलती है ये तंत्रिकाएँ निम्नलिखित है –

1. 8 जोड़ी सर्वाइकल तंत्रिकाएँ

2. 12 जोड़ी थॉरेसिक तंत्रिकाएँ

3. 5 जोड़ी लम्बर तंत्रिकाएँ

4. 5 जोड़ी सैक्रल तंत्रिकाएँ

5.1 जोड़ी कॉक्सिजियल तंत्रिकाएँ

**अभ्यास प्रश्न**

**1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।**

(क) वृहद मस्तिष्क............खण्डों में विभाजित होता है।

(ख) सुषुम्ना नाड़ी के............और............दो मुख्य विभाग हैं।

(ग) ...............तंत्रिकाएँ अंगों की क्रिया को तेज करती हैं।

(घ) संदमक तंत्रिकाओं को.............तन्त्रिका भी कहते हैं।

(ड.) .............नाड़ी बोलते समय अथवा भोजन चबाते समय जिह्वा की मांसपेशियों पर नियन्त्रण रखती हैं।

(च) सुषुम्ना से नाड़ियों के कुल..........जोड़े निकलते हैं।

**2. सत्य/असत्य बताइए।**

(क) मस्तिष्क सुषुम्ना तंत्र में अनेच्छिक तंत्रिकाएँ होती हैं तथा संवेदनात्मक तंत्र में ऐच्छिक तंत्रिकाएँ होती है।

(ख) सुषुम्ना शीर्ष में शारीरिक क्रिया के प्राय: सभी महत्वपूर्ण केन्द्र रहते हैं।

(ग) जब संदमक तंत्रिकाएँ अधिक उत्तेजित हो जाती हैं तब इनसे संबंधित अंगों की क्रिया तेज हो जाती है।

(घ) लघु मस्तिष्क का बाहरी भाग भूरे पदार्थ से तथा भीतरी भाग श्वेत पदार्थ से भरा रहता है।

## 7.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ चुके हैं कि तंत्रिका तंत्र शरीर का सबसे महत्वपूर्ण तंत्र है तथा मानव शरीर की देखभाल तथा शारीरिक अंगों का समुचित रूप से संचालन करने का दायित्व तंत्रिका तंत्र पर ही होता है। तंत्रिका तंत्र में निहित नाड़ियाँ पूरे शरीर में फैली होती है तथा किसी भी मानसिक तथा शारीरिक संवेदना को मस्तिष्क में पहुँचाने का कार्य करती हैं। मस्तिष्क में पहुँचने के बाद ही हमें उस संचेदना की अनुभूति होती है। तंत्रिका तंत्र के दो प्रमुख भाग हैं पहला मस्तिष्क-सुषम्ना संस्थान तथा दूसरा संवेदनात्मक संस्थान। मस्तिष्क सुषम्ना संस्थान में ऐच्छिक तंत्रिकाएँ होती हैं तथा यह मस्तिष्क, मस्तिष्क सेतु, सुषुम्ना नाड़ी, सुषुम्ना कार्ड और सुषुम्ना शीर्ष में विभाजित होता है। इसी प्रकार संवेदनात्मक संस्थान त्वरक तंत्रिकाएँ तथा संदनक तंत्रिकाओं में विभाजित होता है। इस प्रकार शरीर की ऐच्छिक व अनैच्छिक क्रियाओं का सम्पादन होता है।

## 7.6 शब्दावली

चेब्टावह नाड़ी – यह मोटर नाड़ी भी कही जाती है। ये ऐच्छिक पेशियों में आवेगों का मुख्य पथ बनते है।

ऐच्छिक–जिस क्रिया पर हमारा नियंत्रण रहता है।

अनैच्छिक- जिस क्रिया पर हमारा नियंत्रण नही रहता रहता है।

## 7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए**

(क) चार

(ख) सुषुम्ना कॉर्ड, सुषुम्ना शीर्ष

(ग) त्वरक

(घ) परामुकम्पी

(ड.) जिह्वा अधोवर्ती/हाइपोग्लोसल

(च) 31

**2. सत्य/असत्य बताइए**

(क) असत्य

(ख) सत्य

(ग) असत्य

(घ) सत्य

## 7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।

2. गौढ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।

3. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।

4. पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शारीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।

5. वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली

6. दीक्षित, राजेश ( 2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन,मथुरा

7. सक्सेना, ओ0 पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन,मथुरा

8. Chaurasia's B.D (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.

## 7.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. अग्र मस्तिष्क, मध्य मस्तिष्क तथा पश्च मस्तिष्क का विस्तार से उल्लेख कीजिए।

2. तन्त्रिका तन्त्र की रचना व क्रिया का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

# इकाई 8 -उत्सर्जन तंत्र की रचना एवं कार्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 उत्सर्जन तंत्र : एक परिचय

8.4 उत्सर्जन संस्थान के अवयव

8.5 फेफड़े

8.6 त्वचा

8.7 बड़ी आंत

8.8 मलाशय

8.9 वृक्क अथवा गुर्दे

8.9.1 गुर्दे के कार्य

8.9.2 मूत्राशय

8.10 सारांश

8.11 शब्दावली

8.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

8.14 निबंधात्मक प्रश्न

## 8.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने तंत्रिका तंत्र की रचना व कार्यविधि का अध्ययन किया। वास्तव में मानव शरीर की देखभाल तथा शारीरिक अंग-अवयवों की के सफल संचालन का महत्वपूर्ण कार्य तन्त्रिका तंत्र से होता है। इसके साथ-साथ पूरे शरीर में भोजन के चपापचय तथा शरीर की कोशिकाओं में निरन्तर होने वाली टूट-फूट एवं मरम्मत से कई प्रकार के वर्ज्य पदार्थ निष्कासित होते है। जिसका वर्णन उत्सर्जन तन्त्र में आता है।

इस इकाई में आप शरीर के एक महत्वपूर्ण तंत्र उत्सर्जन तंत्र के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे तथा आप जानेंगे कि किस प्रकार उत्सर्जन तंत्र अपने विभिन्न अवयवों की सहायता से शरीर के दूषित पदार्थो को बाहर निकालने में सहायता प्रदान करता है।

इसके अतिरिक्त उत्सर्जन तंत्र किस प्रकार से कार्य करता है तथा किस प्रकार शरीर को रोग रहित रखता है इसके बारे में आप जानकारी प्राप्त करेंगे।

## 8.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- उत्सर्जन तंत्र के बारे में सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- उत्सर्जन तंत्र की कार्य प्रणाली के बारे में विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगे।
- उत्सर्जन संस्थान के मुख्य अवयवों को विस्तार से जान सकेंगे।
- फेफड़ों की संरचना एवं कार्य प्रणाली को उत्सर्जन तंत्र के परिपेक्ष्य में समझ सकेंगे।
- त्वचा की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से वर्णन कर सकेंगे।
- बड़ी आंत की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विश्लेषण कर सकेंगे।
- मलाशय की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से वर्णन कर सकेंगे।
- गुर्दो की संरचना एवं कार्य प्रणाली को भी जान सकेंगे।
- मूत्राशय की संरचना एवं कार्य प्रणाली की विवेचना कर सकेंगे।
- उत्सर्जन क्रिया की संरचना एवं कार्य प्रणाली के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अंत में दिए गए प्रश्नों का उत्तर दें सकेंगे।

## 8.3 उत्सर्जन संस्थान-एक परिचय

जीवित रहने, स्वस्थ रहने के लिए प्रकृति ने इस शरीर में पोषण जैसी महत्वपूर्ण प्रणाली के साथ निष्कासन प्रणाली भी बनाई है। यह प्रणाली यदि शरीर में ठीक प्रकार से कार्य न करें तो शरीर से वर्ज्य पदार्थ नहीं निकल पायेंगे एवं शरीर रोगों का घर बन जायेगा। भोजन के पाचन तथा शरीर की अन्य कोशिकीय क्रियाओं प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप जो निरन्तर कोशिकाओं की टूट-फूट होती रहती है। इस टूट-फूट एवं मरम्मत की क्रियाओं के फलस्वरूप बहुत से दूषित पदार्थ शरीर में एकत्रित होते रहते है। इन दूषित पदार्थो को शरीर विभिन्न प्रक्रियाओं के द्वारा बाहर निकालता रहता है यही उत्सर्जी अंग उत्सर्जन संस्थान का निर्माण करते हैं। वृक्क, त्वचा, फेफड़े, बड़ी आंत, मूत्राशय एवं मलाशय इत्यादि सभी उत्सर्जक अंग हैं। वृक्क रक्त से यूरिन अम्ल, जल आदि को अलग करता है तथा त्वचा अतिरिक्त जल एवं दूषित पदार्थो को, फेफड़ें कार्बन डाइऑक्साइड एवं बड़ी आंत (दूषित) भोजन को शरीर से बाहर निष्कासित करती हैं।

## 8.4 उत्सर्जन संस्थान के अवयव

उत्सर्जन संस्थान के अन्तर्गत निम्नलिखित अवयवों की गणना की जाती है-

- फेफड़े (Lungs)
- त्वचा (Skin)
- बड़ी आँत (Large Intestines)
- वृक्क या गुर्दे (Kidney)
- मूत्राशय (Bladder)
- मलाशय (Rectum)

उत्सर्जन संस्थान के अवयवों की कार्य-प्रणाली निम्नानुसार होती है-

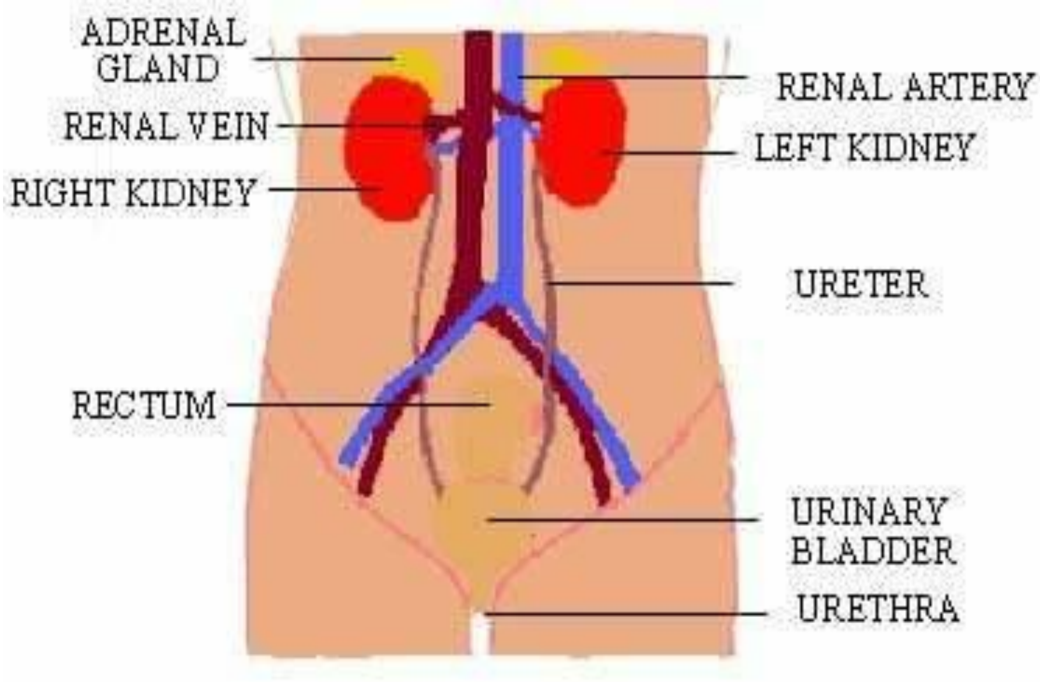


**Image of the Excretory System**

## 8.5 फेफड़े

फेफड़ों के द्वारा रक्त की विषाक्त गैस (कार्बन डाई ऑक्साइड) को बाहर निकाला जाता है। यह स्पंजी शंक्वाकार होते हैं तथा वक्ष गुहा के दोनों ओर स्थित होते हैं एवं वे प्रत्येक शंक्वांकार फेफड़ा शरीर की मध्य रेखा के दोनों ओर स्थित

होते है तथा यह मीडियास्टाइनम द्वारा एक दूसरे से पृथक रहते है तथा गर्दन के निचले भाग में स्थित क्लेविकल अस्थि से डायफ्राम तक कैसे होते हैं। प्रत्येक फेफड़े को दोहरी परत वाली सीरमी कला जिसे प्लूरा कहा जाता है घेरे रहती है। प्रत्येक फेफड़ा खण्डों में विभाजित होता है तथा बॉया दो खण्डों में तथा दायां तीन खण्डों में विभक्त रहता है और दोनों

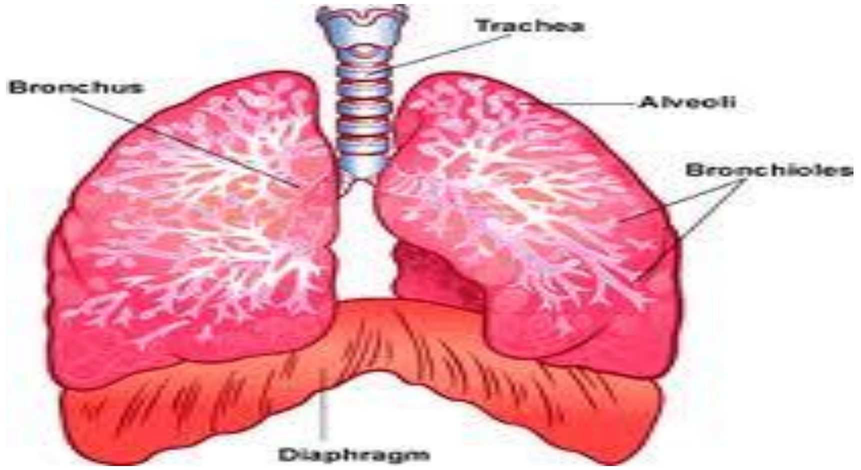


फेफड़ों के ये खण्ड पुन: छोटे-छोटे भागों में विभक्त होते हैं एवं छोटे-छोटे खण्ड भी पुन: कई छोटी-छोटी इकाइयों से मिलकर बनते हैं, इन्हें 'लोब्यूल्स' या खण्डल कहा जाता है।

लोब्यूल्स में वायुकोष भरे होते हैं एवं यही फेफड़ों के श्वसनी भाग होते हैं यही पर गैसे का आदान-प्रदान होता है तथा लोब्यूल्स के चारों ओर धमनी तथा शिराओं का जाल फैला रहता हैं। इन्ही के द्वाव गैस का परिभ्रमण पूरे शरीर में सम्भव हो पाता है।

## 8.6 त्वचा

शरीर की अशुद्धियों को पसीने के रूप में बाहर निकालने का कार्य 'त्वचा' करती है। पसीने में **98** प्रतिशत जल तथा **2** प्रतिशत शारीरिक-अशुद्धियाँ अम्ल तथा खनिज द्रवों के रूप में रहती है तथा भोजन के प्रकार एवं ऋतु के प्रभावानुसार पसीने की मात्रा बढ़ जाती है और ग्रीष्म ऋतु में जब पसीना खूब निकलता है, तब मूत्र की मात्रा घट जाती है, परन्तु शीत ऋतु में पसीना बहुत कम निकलने पर मूत्र की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। त्वचा में तंत्रिक तन्तुओं का जाल बिछा रहता है और त्वचा शरीर के तापक्रम को साम्यावस्था में बनाये रखने का महत्वपूर्ण कार्य करती है।

त्वचा परत – 1. बाह्य त्वचा/ एपीडर्मिस

2. अन्त: त्वचा/ डर्मिस

बाह्य त्वचा शरीर के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न मोटाई की होती है। हथेली, तलवों की त्वचा मोटी होती है। हथेली के पिछले भाग, पलकों, होंठों आदि की त्वचा पतली और कोमल होती है।

अन्त: त्वचा कठोर होती है एवं लचीली होती है। इसमें वसा केशाएँ, रक्त वाहिकाएं, लसीका वाहिकाएँ एवं अनैच्छिक पेशियों भी अल्प मात्रा में उपस्थित होते हैं।

उत्सर्जी अंग के रूप में स्वेद ग्रन्थियां बहुत महत्वपूर्ण होती हैं। स्वेद ग्रन्थियां अन्त: त्वचा में कुण्डली के आकार में उत्सर्णी वाहिना की बनी होती है। यह छिद्र द्वारा त्वचा की सतह पर खुलती है। समस्त शरीर में यह असंख्य मात्रा में पाई जाती है और शरीर में यह कहीं-कहीं अधिक और कहीं-कहीं कम मात्रा पाई जाती हैं। पसीना निरन्तर शरीर से निकलता रहता है। इसी कारण शरीर का ताप नियन्त्रित होता है एवं विजातीय द्रव्य बाहर निकलते रहते है। पसीना सक्रिय स्राव है एवं इसका संगठन जल, लवण एवं अन्य अल्प व्यर्थ पदार्थो का होता है।

सामान्यतया पसीना एवं स्वस्थ सामान्य वयस्न व्यक्ति में 500-600 मि0ली0 उत्सर्जित होता है। मानसिक अशान्ति में, मिर्च-मसाला युक्त भोजन के समय उत्तेजित अवस्था में, रक्त शर्करा व श्वासावरोध बढ़ जाने पर पसीना अधिक निकलता है। त्वचा का यह महत्वपूर्ण अंग तत्व नियन्त्रण, जल संतुलन हेतु लवण सन्तुलन हेतु, अम्ल क्षार नियन्त्रण, त्वचा की कोमलता के लिये अत्यावश्यक अंगक है।

## 8.7 बड़ी आँत

यह शरीर के विषैले तथा अपशिष्ट पदार्थ को मल के रूप में बाहर निकालने का कार्य करती है और बड़ी आंत एक महत्वपूर्ण उत्सर्जी अंग है व बड़ी आंत पाचन-प्रणाली का अंत का सबसे अन्तिम भाग है। बड़ी आंत की लम्बाई लगभग 1.5 मीटर तक होती है। छोटी आंत का पचा हुआ भोजन बड़ी आंत में आने के बाद पुन: छोटी आंत में वाल्व होने के कारण नहीं जा पाता है तथा बड़ी आंत जो कि 'कोलन' नाम से भी जानी जाती है इसे निम्न सात भागों में बॉटा गया है जिनका विवरण इस प्रकार है –

1. सीकम भाग
2. आरोही भाग
3. अनुप्रस्थ भाग
4. अवरोही भाग
5. सिग्मॉयड कॉलन
6. मलाशय
7. गुद नली

## 8.8 मलाशय

बड़ी आँत से आया हुआ मल इसमें होता हुआ गुदा द्वार से बाहर निकल जाता है तथा इसकी रचना कोलन (बड़ी ऑत) के समान होती है परन्तु इसकी पेशीय परत अधिक मोटी होती है।

## 8.9 वृक्क अथवा गुर्दे (Kidney)

वृक्क- शरीर में जो अवयव मूत्र-निर्माण का कार्य करते हैं, उन्हें वृक्क अथवा गुर्दे कहा जाता है। ये संख्या में **2** होते हैं (**1**) दाँया और (**2**) बाँया। ये गुर्दे रीढ़ के दायीं ओर तथा बायीं ओर **12**वीं पसली के सामने तथा चौथे कटि-कशेरूक के बीच रहते हैं। इन ग्रंथियों का आकार 'गुठली' अथवा 'लोबिये के बीज' जैसा होता है। एक वृक्क आकार में **5** इंच लम्बा, 2.5 इंच चौड़ा तथा **1** इंच मोटा तथा लगभग **150** ग्राम भार वाला होता है। इसका रंग कुछ बैंगनी जैसा होता है। दाँया वृक्क कुछ नीचे तथा बाँया वृक्क कुछ ऊपर की ओर होता है। वृक्क के ऊपर एक आवरण सा चढ़ा रहता है। प्रत्येक वृक्क का बाहरी भाग कुछ उत्तल अर्थात उभरा तथा भीतरी भाग कुछ अवतल (दबा) होता है। वृक्क के उपरी सिरे पर टोपी जैसी एक प्रणाली विहीन ग्रंथि होती है, जिसे उपवृक्क कहा जाता है। इसके धँसे हुए भाग के बीच के छिद्र को 'हाइलम' (Hilum) कहते हैं। प्रत्येक वृक्क के भीतर लगभग डेढ़ लाख अत्यन्त महीन नलिकाए (Tubules) होती हैं, जो आकार में एक दूसरे से भिन्न होती हैं।

**8.9.1 गुर्दे के कार्य -** वृक्क के दोनों ओर से एक-एक नली निकलती है, जिन्हें 'मूत्र-प्रणाली' (Ureters) कहा जाता है। यह प्रणालियाँ मूत्र के तैयार होते ही उसे मूत्राशय (Urinary Bladder) में पहुँचाने का कार्य करती है। मूत्राशय गुर्दे के भीतर ही रहता है। मूत्र-प्रणाली एक छोटी सी नली होती है जो कीड़े की भांति गति करती है। इसका विस्तार गुर्दे से मूत्राशय तक ही रहता है। इनकी लम्बाई 10 से 12 इंच तक पायी जाती है। इनके दो सिरे होते हैं। ऊपर वाला चौड़ा सिरा वृक्क से तथा नीचे वाला पतला सिरा 'वस्तिगह्वर' (Pelvis) में 'मूत्राशय' (Bladder) से मिला रहता है। मूत्र पहले वृक्क (Kidney) की मीनारों (Pyramids) से मूत्र-प्रणाली के चौडे भाग में आता है, फिर इसके द्वारा बहता हुआ मूत्राशय में जा पहुँचता है।

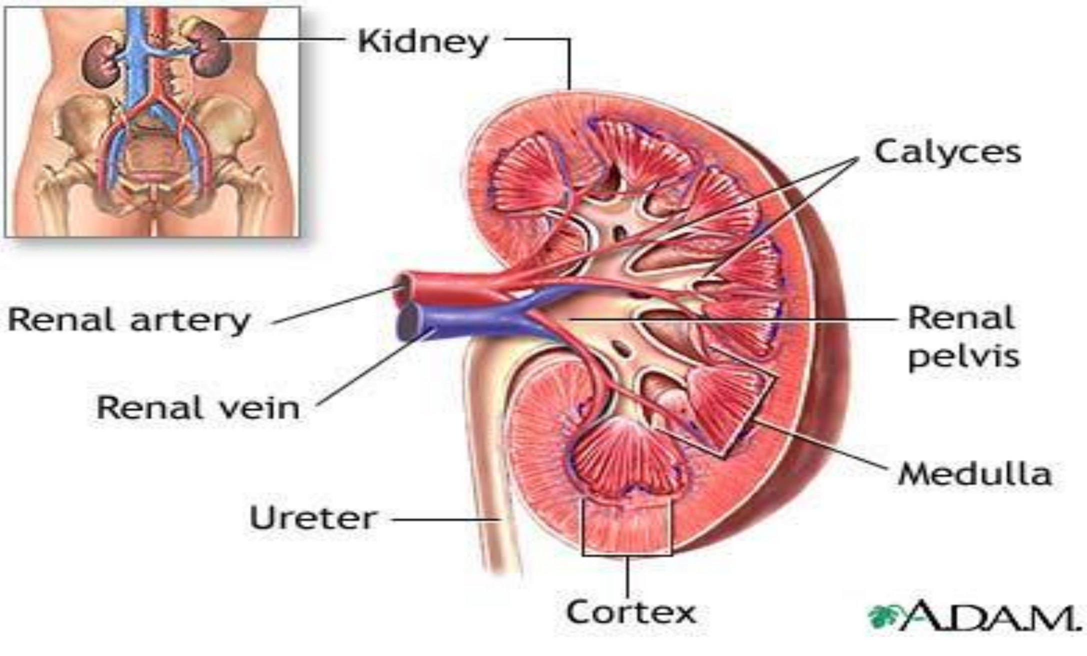


वृक्क का कार्य बूँद-बूँद करके मूत्र बनाना तथा उसे मूत्राशय में भेजना है। स्मरणीय है कि मूत्र के मुख्य अवयव वृक्क के भीतर तैयार न होकर शरीर के अन्य भागों में ही बनते हैं, वृक्क उन्हें रक्त से अलग करके 'मूत्र का रूप' दे देता है तथा वृक्क का सबसे महत्वपूर्ण कार्य रकत् को छानना व छने हुए पदार्थो में से शरीर के लिए उपयोगी आवश्यक पदार्थों को

पनु: अवशोषित करना एवं गन्दगियों को बाहर निकालन है। और यह भोजन के चयापचय के आन्तरिक उत्पाद जल, यूरिया, यूरिक ऐसिड आदि का उत्सर्जन करने का कार्य करते हैं साथ ही शरीर में अथवा रक्त में स्थित कुछ हानिकारक दवाइयों, औषधियों, विषैले अथवा रासायनिक पदार्थों के उत्सर्जन का भी कार्य करते है तथा शरीर में स्थित तरल के परासरणी दाब को बनाए रखने में मदद करते है व शरीर के तरलों के आयतन, उनकी तानता एवं प्रतिक्रिया को नियन्त्रित करते है। करने में मदद करता है।

**Venous blood is returned through a series of vessels that generally correspond to the arterial**

Copyright © The McGraw-Hill Companies, Inc. Permission required for reproduction or display.

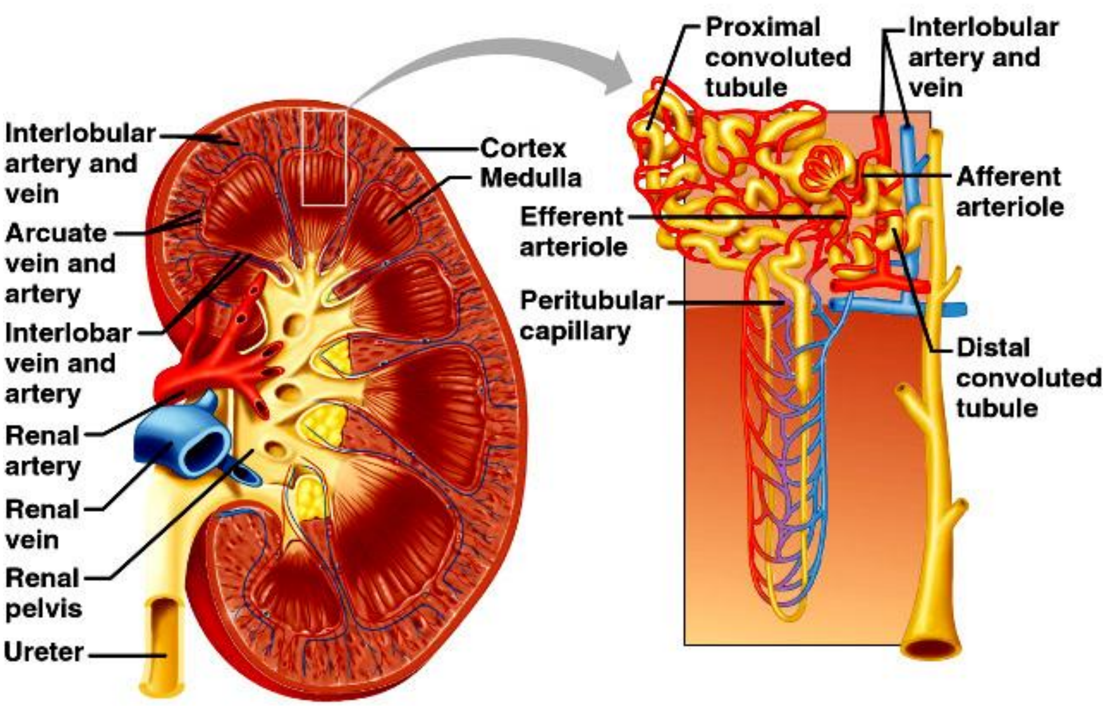

**8.9.2 मूत्राशय -** इसे 'वस्ति' अथवा 'मसाना' भी कहते हैं। यह एक थैली जैसी होती है, जिसमें मूत्र-प्रणालियों द्वारा लाया गया मूत्र संचित होता रहता है। यह उदर में सबसे निचले भाग में, (Pelvis) में रहता है। पुरूषों में यह मलांग के सामने की ओर तथा स्त्रियों में जरायु के सामने वाले भाग में रहता है। खाली होने पर आकार 'तिकोना' होता है तथा भर जाने पर यह बिल्कुल 'गोल' हो जाता है। मूत्र से भर जाने पर यह उठा रहता है। इसके भर जाने पर मनुष्य को मूत्र-त्यागने की इच्छा होती है। मूत्राशय सामान्यतः 5 इंच लम्बा तथा 3 इंच चौड़ा होता है। इसमें 7 औंस तक मूत्र समा सकता है। पुरूषों में इसके पीछे शुक्राशय तथा स्त्रियों में गर्भाशय (Uterus) की स्थिति रहती है और जिस रास्ते से मूत्र निकलता है उसे मूत्रमार्ग कहते हैं। यह मूत्राशय के एकदम निचले भाग से एक नली के रूप में आरंभ होता है। पुरूषों में यह लगभग 8-9 इंच लम्बा होता है तथा इसमें 2 झुकाव या घुमाव होते हैं। इसके प्रारंभिक भाग में प्रोस्टेट ग्रंथि (Prostate Gland) रहती है। यह मार्ग प्रोस्टैंट ग्रंथि के आगे से शिश्न (Penis) के निम्न भाग तक रहता है तथा शिश्न (लिंग) के बहिर्भाग पर जो छिद्र होता है, वहाँ समाप्त होता है। लिंग के इस छिद्र को 'मूत्र बहिर्द्वार' कहते हैं। इसके मार्ग में दो घुमाव होते हैं। शिश्न के एक ही छिद्र से मूत्र तथा शुक्र (वीर्य) दोनों के अलग-अलग निकलने की क्रियाऐं सम्पन्न होती हैं।

स्त्रियों का मूत्र मार्ग 1.5 इंच लम्बा होता है। उसकी नली योनि की दीवार से मिली रहती है तथा उसका छिद्र योनि-छिद्र से लगभग आधा इंच ऊपर की ओर रहता है। स्त्रियों के मूत्र मार्ग से केवल मूत्र ही निकलता है।

'मूत्र' एक प्रकार का तरल पदार्थ है, जिसमें रक्त से छोड़ा हुआ दूषित पदार्थ रहता है। जब रक्त भ्रमण करता हुआ वृक्क (Kidney) में पहुँचता है, तो उस समय वृक्क अनावश्यक पदार्थों के रूप में पृथक कर जलीय तरल अर्थात् 'मूत्र' के रूप में मूत्राशय (Bladder) में धकेल देता है और इसके बाद वह मूत्र नली द्वारा शरीर से बाहर निकल जाता है।

मूत्र का रंग स्वच्छ पीला अथवा भूरा होता है। समयानुसार इसके रंग में थोड़ा बहुत परिवर्तन होता रहता है। जैसे- रात भर सोने के बाद प्रातःकाल इसका रंग गहरा होता है। गर्मी के दिनों में भी इसका रंग गहरा हो जाता है। मूत्र की मात्रा घटने से भी रंग गहरा हो जाता है तथा बढ़ने पर हल्का हो जाता है। रूग्णावस्था में भी मूत्र का रंग बदल जाता है।

मूत्र में 960 भाग जल तथा 40 भाग ठोस-पदार्थ (Solids) पाये जाते हैं। 24 घंटे में प्रायः 2-2.5 औंस ठोस-पदार्थ मूत्र द्वारा हमारे शरीर से बाहर निकलते हैं जिसमें यूरिया, सोडियम तथा क्लोराइड की मात्रा ही अधिक पायी जाती है।

जब व्यक्ति रोग की अवस्था में होता है तो उसके मूत्र से रक्त, पीब, पित्त, शर्करा इत्यादि अस्वाभाविक पदार्थ भी निकलते हैं।

सामान्य स्थिति में एक व्यस्क मनुष्य 24 घण्टे में लगभग 1 से 1.5 किलो तक मूत्र का त्याग करता है। इससे कम अथवा अधिक मात्रा में मूत्र का निकलना ठीक नहीं माना जाता। ग्रीष्म ऋतु में पसीना अधिक निकलने पर मूत्र की मात्रा में कमी आ जाती है तथा शीत ऋतु में वृद्धि हो जाती है-यह बात पहले भी कही जा चुकी है।

अन्य कार्य- 'वृक्क' हृदय का भी एक महत्वपूर्ण सहायक अंग है। यदि किसी कारणवश वृक्क के कार्य में रूकावट पड़ जाती है तो रक्त के भीतर अम्ल तथा क्षार के अनुपात में अन्तर आ जाता है एवं रक्त का दबाव अधिक बढ़ जाता है।

वृक्क प्लाज्मा (Plasma) पर भी नियंत्रण (Control) करता है तथा ग्लूकोज (Glucose) एवं यूरिया (Urea) नामक तत्वों के घनत्व को भी नियन्त्रित रखता है।

**अभ्यास प्रश्न**

**1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।**

(क) सामान्य सिथति में एक व्यस्क मनुष्य 24 घण्टे में लगभग.............किलो तक मूत्र त्याग करता है।

(ख) शरीर में गुर्दो की संख्या..........है।

(ग) वृक्क...........और...........नामक तत्वों के घनत्व को नियंत्रित रखता है।

(घ) मूत्र में..........भाग जल तथा.........भाग ठोस पदार्थ पाये जाते हैं।

(ड.) वृक्क के दोनों ओर से एक-एक नली निकलती है, जिन्हें.........कहते हैं।

(च) दायां फेफड़ा.........खण्डों में तथा बायां फेफड़ा.............खण्डों में बंटा होता है।

**2. सत्य/असत्य बताइए।**

(क) 'वृक्क' हृदय का भी एक महत्वपूर्ण सहायक अंग है।

(ख) किसी कारणवश यदि वृक्क के कार्य में रूकावट पड़ जाती है तो रक्त का दवाब कम हो जाता है।

(ग) बड़ी आंत का अन्तिम भाग सीकम भाग है।

## 8.10 सारांश

प्रस्तुत इकाई से आप उत्सर्जन तंत्र का सम्पूर्ण परिचय प्राप्त कर चुके है उत्सर्जन क्रिया को समझ चुके हैं। उत्सर्जन क्रिया द्वारा शरीर के निस्सार द्रव्य बाहर निकल जाते हैं तथा शरीर स्वस्थ बना रहता है। उत्सर्जनक्रिया के मुख्य अंग फेफड़े, त्वचा, बड़ी आंत, मलाशय तथा गुर्दे हैं जो शरीर के विभिन्न विषाक्त व हानिकारक पदार्थों को निकालने में सहायक होते हैं तथा फेफड़ों द्वारा रक्त से हानिकारक गैस कार्बन डाई ऑक्साइड को निकाला जाता है। त्वचा के माध्यम से शरीर की अशुद्धियॉं पसीने द्वारा बाहर निकलती हैं। बड़ी आंत के माध्यम से मल के रूप में भोजन का निस्सार पदार्थ बाहर निकलता है। गुर्दे या वृक्क द्वारा रक्त से छोड़ा हुआ दूषित पदार्थ मूत्र के रूप में बाहर निकलते है। मूत्र पहले वृक्क की मीनारों से मूत्र प्रणाली के चौड़े भाग में आता है, फिर इसके द्वारा बहता हुआ मूत्राशय में बाहर निकल जाता है। इस प्रकार हानिकारक पदार्थ शरीर से बाहर निकल जाते हैं। इस अध्याय के अध्ययन के बाद आप विभिन्न अंगों द्वारा हो रही उत्सर्जन क्रिया को भली-भॉति समझ गये होंगे।

## 8.11 शब्दावली

उपवृक्क – अधिवृक्क ग्रन्थि, यह प्रत्येक वृक्क के ऊपरी भाग में स्थित होती है तथा अन्त: स्रावी तंत्र का भाग होती है।

कोलन – बड़ी आन्त्र को कहा जाता है।

उत्सर्जी – व्याज्य, अपशिष्ट, दूषित

निष्कासन – निकालना, बाहर कर देना

डायफ्राम – एक मांसपेशी जो फेफड़ों का आधार देती है।

प्लूरा – फेफड़े की परत।

## 8.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

### 1. रिक्त स्थानों की पूर्ति

(क) 1-1.5 किलो (ख) 2 (ग) ग्लूकोज, यूरिया (घ) 960, 40
(ड.) मूत्र प्रणाली/यूरेटर्स (च) 3 और 2

### 2. सत्य/ असत्य

(क) सत्य (ख) असत्य (ग) असत्य

## 8.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।

2. गौढ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।

3. प्रकाश, ऐ0 (1998) अ टेक्स्ट बुक ऑफ एनाटॉमी एण्ड फिसियोलॉजी, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली।

4. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।

5. पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शारीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।

6. वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली

7. दीक्षित, राजेश ( 2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन,मथुरा

8. सक्सेना, ओ0 पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन,मथुरा

9. अग्रवाल, जी0सी0 (2010) मानव शरीर विज्ञान, एक्युप्रेशर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार संस्थान, इलाहाबाद

10. Chaurasia’s B.D (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.

## 8.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. उत्सर्जन संस्थान का परिचय देते हुए वृक्क के कार्यो को समझाइये।

2. फेफड़े किस प्रकार उत्सर्जन का कार्य संपादित करते हैं समझाइये।

3. उत्सर्जन तन्त्र की पूरी प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

# इकाई 9 -ज्ञानेन्द्रिय तंत्र की रचना एवं कार्य

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 ज्ञानेन्द्रिय तंत्र: एक परिचय
9.4 ज्ञानेन्द्रिय तंत्र के अवयव
9.5 दृश्येन्द्रिय
9.6 श्रवणेन्द्रिय
9.7 घ्राणेन्द्रिय
9.8 स्वादेन्द्रिय
9.9 स्पर्शेन्द्रिय
9.10 सारांश
9.11 शब्दावली
9.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची
9.14 निबंधात्मक प्रश्न

## 9.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आप शरीर के अति महत्वपूर्ण संस्थानों (पाचन, श्वसन, परिसंचरण, तंत्रिका) का अध्ययन किया है। पाठकों प्रस्तुत इकाई में आप ज्ञानेन्द्रिय तंत्र महत्वपूर्ण संस्थान के बारे में जानेंगे।

इस इकाई में आप शारीरिक इन्द्रियों के विषय में पढ़ेंगे और समझेंगे। किस-किस प्रकार की शारीरिक इन्द्रियां अथवा ज्ञानेन्द्रियाँ हमारे शरीर में होती हैं जो दैनिक क्रियाओं को करने में हमारी सहायता करती हैं इसके विषय में आप जानेंगे। देखना, सुनना, किसी वस्तु का स्पर्श करना, किसी खाद्य पदार्थ का गुण पहचानना, सूंघना आदि कार्य कैसे ज्ञानेन्द्रियों द्वारा संचालित एवं क्रियान्वित होते हैं- आगे आप यह जान सकेंगे।

## 9.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- ज्ञानेन्द्रिय तंत्र का एक सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- ज्ञानेन्द्रिय तंत्र के प्रमुख अवयवों का विस्तारपूर्वक वर्णन कर सकेंगे।
- स्पर्शन्द्रिय की संरचना एवं मुख्य कार्यो के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- घ्राणेन्द्रिय की संरचना एवं मुख्य कार्यो के बारे में समझ सकेंगे।
- श्रवणेन्द्रिय की संरचना एवं मुख्य कार्यो के बारे में जान सकेंगे।
- द्रश्येन्द्रिय की संरचना एवं मुख्य कार्यो के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अंत में दिए गए प्रश्नों का उत्तर दें सकेंगे।

## 9.3 ज्ञानेन्द्रिय तंत्र – एक परिचय

हम इस संसार में विभिन्न भौगोलिक, सामाजिक परिस्थितियों में रहते हैं। सही प्रकार से व्यवहार करने के लिये एवं सामन्जस्य बिठाये रखने के लिए संवेदनाओं का होना अति आवश्यक है। इन संवेदनओं का अनुभव हम तभी कर सकते है जब उससे सम्बन्धित संवेदी तंत्रिकाओं को उत्तेजना अथवा उद्दीपन प्राप्त हो सके। विभिन्न उत्तेजनाओं के फलस्वरूप संवेदनाएँ मस्तिष्क में संवेदी तंत्रिकाओं के द्वारा जाती हैं वहां संवेदनाओं का विश्लेषण केन्द्रीय तंत्रिका तन्त्र के द्वारा होता है तथा उसके पश्चात् शरीर किसी कार्य को करने के लिये इन्हीं संवेदी तंत्रिकाओं से उत्तेजना पाकर कार्य करता है। हमारा यह शारीरिक तंत्र प्रकाश, गंध, दाब, ध्वनि आदि के सांवेदिक अंगों पर निर्भर करती है। ये संवेदी अंग विशिष्ट संवेदनाओं को ग्रहण करके बाह्य जगत का ज्ञान प्राप्त करती है। मानव शरीर में पांच संवेदी अंग हैं जिन्हें ज्ञानेन्द्रियां कहा जाता है आंख, कान, नाक, जिह्वा एवं त्वचा। आगे आप इनके विषय में विस्तृत ज्ञान प्राप्त करेंगे।

## 9.4 ज्ञानेन्द्रिय तंत्र के अवयव

मनुष्य शरीर में 1. दृष्टि, 2. श्रवण 3. घ्राण 4. स्वाद तथा 5. स्पर्श - इन बातों का ध्यान कराने वाली 5 ज्ञानेन्द्रियाँ ईश्वर ने दी हैं, जिनकी क्रिया विधि मुख्यतः वातनाड़ी संस्थान से ही सम्बन्ध रखती है। ये इन्द्रियाँ निम्न हैं- आप जानते ही है

1. आँख (Eye) – इनका कार्य दृश्य या रूप को ग्रहण करना है।
2. कान (Ear)- इनका काम ध्वनि को सुनना है।
3. नाक (Nose)- इसका काम सूँघना है।
4. जिह्वा (Tongue) – स्वाद लेने का कार्य जिह्वा द्वारा होता है।
5. त्वचा (Skin) - इसका काम स्पर्शानुभूति है।

ये सभी इन्द्रियाँ विभिन्न संवेदनाओं को मस्तिष्क तक पहुँचाती हैं तथा मस्तिष्क द्वारा प्रदत्त आज्ञाओं का पालन भी करती हैं।

## 9.5 दृश्येन्द्रिय

यह दृष्टि-विषयक ज्ञानेन्द्रिय है। इसका सम्बन्ध दृष्टि-नाड़ी द्वारा मस्तिष्क से रहता है। मनुष्य के कपाल के भीतर, नाक के दोनों ओर एक-एक गहरा गड्ढा है, जिसे 'नेत्र गुहा' (Orbit) कहते हैं। इन्हीं गड्ढों में एक-एक आँख स्थित रहती है। आँखें अपने सामने की ओर एक पर्दे से ढँकी रहती है, जिसे 'पलक' (Eyelids) कहा जाता है। ये पलकें दो भागों में बँटी रहती है- ऊपरी तथा निचली। पलकें एक प्रकार की कड़ी तह (Tartus) द्वारा स्थित रहती है। इनके किनारे पर छोटे-छोटे केश होते हैं। जो बाहरी धूल-गर्द आदि से आँखों की रक्षा करते हैं। पलकों के भीतरी भाग में 'श्लेष्मला' (Conjuctiva) नामक एक महीन पारदर्शी झिल्ली लगी रहती है, यह दुहरी होकर नेत्र-गुहा को ढँके रखती है। आँख का बाह्य आयतन बादाम जैसा होता है। परन्तु पिछला भाग गोल रहता है, जो मस्तिष्क से जुड़ा रहता है। आँख के उपांग निम्न है-

**1- भौहें (Eye Brows)** ये प्रत्येक चक्षु-गह्वर के ऊपर एक टेढ़ी केशदार लकीर के रूप में रहती है। इनमें छोटे-छोटे बाल होते हैं।

**2. पलक (Eye-lids)** यह बराबर खुलती तथा बन्द होती रहती है। इनके द्वारा आँखों की रक्षा होती है। इनका वह भाग-जो ऊपरी तथा निचली पलक से मिला रहता है, चक्षु-कोण (Canthus) कहा जाता है।

**3. अश्रु ग्रंथियाँ (Lacrymal Glands)** पलकों के भीतर कुछ ऐसी ग्रंथियाँ भी रहती है जो अश्रु अर्थात् आँसू उत्पन्न करती है। पलकों के स्वतन्त्र भाग में एक तिरछी नली निकलती है, जिसके द्वारा ये आँसू आँखों के पास गिरते हैं। इसी नली के मिडियल (Medial) सिरे से एक अन्य नली आरंभ होती है, जो सीधी नाक में जाकर खुलती है, इसे अश्रुनासा नली (Naso-Lacrymal Duct) कहते हैं। इसका नियन्त्रण अनैच्छिक तन्त्रिकाओं द्वारा होती है।

## 9.6 श्रवणेन्द्रिय

यह श्रवण - क्रिया विषयक ज्ञानेन्द्रिय है। ये खोपड़ी की जड़ में दाँई तथा बाँई ओर स्थित रहते हैं। इस प्रकार आँख की भाँति कान भी संख्या में दो होते हैं। रचना के आधार पर इसके तीन विभाग होते हैं-

1. बाह्य कर्ण (External Ear)
2. मध्य कर्ण (Middle Ear)
3. अन्तः कर्ण (Internal Ear)

वायुमण्डल में उपस्थित ध्वनि-लहरों (Sound Waves) को बाह्य कर्ण इकट्ठा करके मध्यकर्ण स्थित श्रवण झिल्ली (Tympanic membrane or Ear Drum) पर टकराने के लिए भेजता है, जिसके फलस्वरूप वात-प्रेरणाएँ (Nervous Impulses) उत्पन्न होती है। उन श्रवण संवेदनाओं को अन्तःकर्ण श्रवण-नाड़ी (Auditory Nerve) द्वारा मस्तिष्क में भेज देता है, जिससे सुनने की क्रिया सम्पन्न होने लगती है।

## 9.7 घाणेन्द्रिय

यह घ्राण क्रिया विषयक ज्ञानेन्द्रिय है। यह चेहरे के बीचों-बीच, दोनों आँखों के मध्य में स्थित है। इसकी लम्बी दीवार एक उपास्थि द्वारा निर्मित होती है, जो इसे दो भागों में विभाजित करती है। अतः नाक के दो छिद्र होते हैं। नाक के बाहरी भाग को बर्हिनासा (External Nose) तथा भीतरी भाग को 'नासागुहा' (Nosal Fossa) कहा जाता है।

बर्हिनासा का ऊपरी कठोर भाग अस्थि निर्मित होता है तथा नीचे का कोमल भाग मांस, कार्टिलेज तथा त्वचा निर्मित होता है। दोनों नासा-छिद्रों (Nostrils) में छोटे-छोटे बाल उगे रहते हैं, जो बाहरी गन्दगी को नाक के भीतर प्रविष्ट होने से रोकते हैं।

नाक के भीतरी भाग में सर्वत्र एक श्लैष्मिक-झिल्ली चढ़ी रहती है। इसके पीछे तन्त्रिका जाल होता है, जहाँ से 'तन्त्रिका सूत्र' (Nerve Fibres) निकलते हैं। वे एक छलनी जैसे छिद्र के द्वारा मस्तिष्क के धरातल पर पहुँच कर घ्राण खण्ड (Olfactory Lobe) में जा मिलते हैं।

जब हम किसी वस्तु को नासा-छिद्रां के समीप ले जाते हैं, तब उसकी गंध श्लैष्मिक झिल्लियों में होकर 'तन्त्रिका-कोषा' (Nerve Buds) के सम्पर्क में पहुँचती है। वहाँ से वह 'तन्त्रिका सूत्र' के द्वारा 'घ्राण कन्द' में पहुँच कर, घ्राण पथ (Olfactory Tract) से होती हुई 'घ्राण कर्षण' (Olfactory Gyrus) पर पहुँचती है, जहाँ से कि गंध का अनुभव होता है।

## 9.8 स्वादेन्द्रिय

यह स्वाद-विषयक ज्ञानेन्द्रिय है, जो मुँह के भीतर रहती है। यह मांस तथा मांसपेशियों से निर्मित है तथा इसके ऊपर श्लैष्मिक कला चढ़ी रहती है। इसके निचले भाग की श्लैष्मिक कला चिकनी तथा ऊपरी भाग की खुरदुरी होती है। यह मांसपेशियों द्वारा हन्वान्थि तथा कण्ठिकास्थि से मिली होती है। इसके मांस में संकोच की शक्ति होती है। अतः इसे इच्छानुसार छोटा-बड़ा तथा लम्बा-चौड़ा किया जा सकता है।

जीभ का अग्रभाग पतला तथा मूल भाग चौड़ा और मोटा होता है। इसके सिरे, जड़ तथा किनारों पर 'स्वादकोष' (Taste Buds) होते हैं, जिनसे विभिन्न प्रकार के स्वादों का अनुभव होता है।

खाने-पीने की कोई भी वस्तु जब मुँह में डाली जाती है तो वह श्लैष्मिक-झिल्ली के सम्पर्क में आती है तथा उसका स्वाद जिह्वा तन्त्रिका कलिकाओं (Lingual Nerve Buds) से जिह्वा-तन्त्रिका में (Lingual Nerve) में पहुँचता है। वहाँ से तन्त्रिकाएँ उसे मस्तिष्क में ले जाती है।

जीभ की नोंक पर पाई जाने वाली स्वाद कोषों से मिठास का अनुभव होता है। जिह्वा के दोनों किनारों से खट्टेपन का तथा मध्य भाग से नमकीन स्वाद का अनुभव होता है तथा जिह्वा के पिछले भाग से कड़वे स्वाद का अनुभव होता है।

मुँह में डाली हुई वस्तु चर्बण क्रिया तथा लार की सहायता से गल जाती है, तभी स्वाद का अनुभव होता है यदि जीभ अधिक तिक्त वस्तुओं के सम्पर्क में आती है, तो उससे पानी गिरने लगता है, ताकि वह तीतापन हल्का हो जाये और उसकी तीक्ष्णता से जीभ के कोमल ऊतकों को कोई हानि न पहुँचे। यह (जीभ) स्वाद की अनुभूति के अतिरिक्त भोजन को पचाने तथा बोलने में भी सहायक होती है।

## 9.9 स्पर्शेन्द्रिय

यह स्पर्श विषयक ज्ञानेन्द्रिय है। यह सम्पूर्ण शरीर को ढँके रखती है। इसके द्वारा ही हमें गर्मी, सर्दी, कोमलता, कठोरता आदि का अनुभव होता है। जब हम किसी वस्तु का स्पर्श करते हैं अथवा कोई वस्तु हमारी त्वचा के सम्पर्क में आती है, तब हमें उसके स्पर्श का अनुभव होता है।

त्वचा के दो भाग होते हैं-

1- बाह्य त्वचा (Epidermis)

2- अन्तः त्वचा (Dermis)

बाह्य त्वचा - इसकी मोटाई शरीर के विभिन्न अवयवों पर अलग-अलग पाई जाती है। उदाहरण के लिए तलवों पर इसकी मोटाई **1/20** इंच तथा चेहरे पर **1/200** इंच होती है। बाहरी त्वचा एपीथीलियम-कोषाओं की अनेक तहों के मिलने से बनती है। ये कोषाऐं भीतरी सैलों की रक्षा करते हैं तथा स्वयं निरंतर घिसते रहते हैं। घिसे हुए कोषाओं (Cells) के स्थान पर नये कोषा आते रहते हैं। ऊपरी त्वचा की निचली तह में जिस रंग के कोषा होता है, हमारा शरीर भी उन्हीं के आधार पर गोरा, काला, सांवला अथवा गेहुआ दिखाई देता है। इन भीतरी सैलों को 'रंजक-कोष' (Pigment Cells) कहा जाता है।

बाह्य-त्वचा में रक्त-नलिकाऐं नहीं होती। इनके भीतरी सैल उस लसीका से पोषण प्राप्त करते हैं, जो अन्तः त्वचा के सैलों से धीरे-धीरे निकलते हैं। बाह्य त्वचा में स्नायु-सूत्र भी अत्यधिक कम परिमाण में पाये जाते हैं।

अन्तः त्वचा - यह बाह्य त्वचा के नीचे रहती है तथा संयोजक ऊतक - तन्तुओं (Connective Tissues) से बनी होती है। ये तन्तु ऊपरी भाग में दृढ़ता से संलग्न रहते हैं तथा निम्न भाग में कुछ ढीले होते हैं। इन तन्तुओं के निम्न भाग में थोड़ी सी चर्बी भी रहती है। अन्तः त्वचा के नीचे दूसरे ऊतक होते हैं, जिनमें चर्बी की मात्रा अधिक पाई जाती है।

त्वचा में दो प्रकार की ग्रंथियाँ होती है- 1. तैल जैसी चिकनाई निकालने वाली ग्रंथियां (Sebaceous or Oil Glands) तथा 2. पसीना निकालने वाली ग्रंथियां (Sweat Glands)

चिकनाई निकालने वाली ग्रंथियों बालों (रोमों) की जड़ों से सम्बन्धित होती हैं तथा पसीना निकालने वाली ग्रंथियों शरीर के मल को पसीने के रूप में बाहर निकालती रहती हैं।

बाह्य त्वचा की पर्त पर असंख्य छोटे-छोटे छिद्र पाये जाते हैं। इन्हीं के द्वारा पसीना बाहर निकलता है तथा इन्हीं छिद्रों में होकर रोंए भी निकलते हैं। इन छिद्रों को 'रोमकूप' (Pores of the Skin) भी कहा जाता है।

नख -अंगुलियों पर पाये जाने वाले नाखून भी बाह्य त्वचा के ही रूपान्तर हैं। ये अंगों की रक्षा तथा स्पर्श-शक्ति में सहायता करते हैं। इनके ऊपरी भाग को देह (Body) तथा त्वचा के निचले भाग को जड़ (Root) कहा जाता है।

**अभ्यास प्रश्न**

**1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।**

(क) ....................ग्रन्थियॉ अश्रु उत्पन्न करती हैं।

(ख) नाक के भीतरी भाग को...........कहते है।

(ग) जिह्वा के दोनों किनारों से............का तथा मध्य भाग से.............स्वाद का अनुभव होता है।

(घ) त्वचा में............और............ग्रन्थियॉ पायी जाती है।

(ड.) .............अंगों की रक्षा तथा स्पर्श-शक्ति में सहायता करते हैं ।

(च) त्वचा की पर्त पर असंख्य छोटे-छोटे छिद्रों को..........कहते हैं।

**2. सत्य/असत्य बताइए।**

(क) अश्रुनासा नली का नियन्त्रण ऐच्छिक तंत्रिकाओं द्वारा होता है।

(ख) नखों के ऊपरी भाग को जड़ तथा त्वचा के निचले भाग को देह कहा जाता है।

(ग) रंजक कोषा के आधार पर हमारा शरीर गोरा, काला, सांवला अथवा गेहुँआ दिखाई देता है।

(घ) रचना के आधार पर कान के तीन विभाग होते है।

## 9.10 सारांश

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुकें हैं कि मनुष्य शरीर में दृष्टि, श्रवण, घ्राण, स्वाद एवं स्पर्श-इन क्रियाओं का ध्यान कराने वाली पांच ज्ञानेन्द्रियॉं हैं। इन ज्ञानेन्द्रियों की क्रिया विधि मुख्यत: वात नाड़ी संस्थान से सम्बन्ध रखती है। ज्ञानेन्द्रियॉं विभिन्न संवेदनाओं को मस्तिष्क तक पहुँचाती हैं तथा मस्तिष्क द्वारा प्रदत्त आज्ञाओं का पालन करती हैं। स्पर्शेन्द्रिय, स्वादेन्द्रिय, श्रवणेन्द्रिय एवं दृश्येन्द्रिय यह पांच प्रकार की ज्ञानेन्द्रियॉं हैं त्वचा, जिह्वा, नाक, कान एवं ऑंख इन ज्ञानेन्द्रियों से संबंधित अंग हैं। त्वचा किसी भी शारीरिक अनुभूति को समझने में सहायक है। जिह्वा स्वाद की अनुभूति कराती है। नाक सूंघने में सहायक है। कान सुनने की तथा ऑंखे देखने की क्रिया करती हैं।

## 9.11 शब्दावली

खाद्य – खाने योग्य

ज्ञानेन्द्रियॉं – संवेदी अंग अर्थात जो संवेदनाओं को ग्रहण करती है। इनकी संख्या पांच है।

प्रदत्त – दी गई, प्राप्त की गई

चक्षु – नेत्र

अनैच्छिक – जिन पर प्राणी का नियंत्रण नहीं होता अर्थात जो स्वत: होती रहती है।

श्रवण – सुनने की क्रिया।

वात – वायु

घ्राण – सूँघना

चर्वण क्रिया – चबाने की क्रिया।

स्नायु सूज – तंत्रिका सूज

संयोजक – जोड़ने का कार्य करने वाले।

ऊतक सूज – तंत्रिका तंत्र के विशेष संदेशग्राही एवं संवाहन अंग।

## 9.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

### 1. रिक्त स्थानों की पूर्ति

(क) लेक्रीमल

(ख) नोजल कोसा/नासा गुहा

(ग) खट्टेपन, नमकीन

(घ) सेवोशियन, स्वेद

(ङ.) नख

(च) रोमकूप

### 2. सत्य/असत्य

(क) असत्य (ख) असत्य (ग) सत्य (घ) सत्य

## 9.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।
2. गौढ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।
3. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।
4. पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शारीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।
5. दीक्षित, राजेश ( 2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन,मथुरा
6. सक्सेना, ओ0 पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन,मथुरा


## 9.14 निबंधात्मक प्रश्न प्रश्न

1. ज्ञानेन्द्रियों के कार्यो की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।
2. त्वचा व स्वादेन्द्रिय के कार्यो का वर्णन कीजिए।

# इकाई 10 - अन्त:स्रावी तंत्र की रचना एवं कार्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 अन्त:स्रावी ग्रन्थियॉ : एक परिचय

10.4 अन्त:स्रावी ग्रन्थियों के प्रकार

- 10.4.1 पीयूष ग्रन्थि
- 10.4.2 थायरॉइड ग्रन्थि
- 10.4.3 पैराथायरॉइड ग्रन्थि
- 10.4.4 एड्रीनल ग्रन्थि
- 10.4.5 अग्न्याशय
- 10.4.6 पीनियल ग्रन्थि
- 10.4.7 थायमस ग्रन्थि
- 10.4.8 जनन ग्रन्थि

10.5 सारांश

10.6 शब्दावली

10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

10.9 निबंधात्मक प्रश्न

## 10.1 प्रस्तावना

शारीरिक इंद्रियॉं मनुष्य जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग हैं, यह आपने पूर्व की इकाई में पढ़ा और समझा। आपने जाना कि शरीर में पांच प्रमुख ज्ञानेन्द्रियाँ हैं जिनमें स्पर्शेन्द्रिय, स्वादेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, श्रवणेन्द्रिय तथा दृश्येन्द्रिय निहित हैं। एक भी इन्द्रिय यदि सुचारू रूप से कार्य न करें तो जीवन व्यर्थ लगने लगता है।

इस इकाई में आप अंत:स्रावी तंत्र या संस्थान के विषय में पढ़ेंगे। अंत:स्रावी तंत्र या संस्थान शरीर का वह प्रमुख संस्थान है, जो तन्त्रिका तंत्र के साथ मिलकर शरीर की विभिन्न क्रियाओं का नियमन करता है।

आगे आप जानेंगे कि अन्त: स्रावी ग्रन्थियों द्वारा स्रावित द्रव्य जिसे हॉर्मोन कहते हैं। शरीर के विभिन्न सामयिक व शारीरिक विकासक्रम को कैसे प्रभावित करता है। यदि यह हॉर्मोन्स समय पर स्रावित न हों तो किस प्रकार के रोग हमारे शरीर में हो सकते हैं, इन सभी विषयों का अध्ययन हम प्रस्तुत इकाई में करेंगे।

## 10.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- अंत:स्रावी तंत्र के विषय में अध्ययन कर सकेंगे।
- हार्मोन्स के मापी एवं महत्व स्पष्ट कर सकेंगे।
- अंत:स्रावी तंत्र की प्रमुख ग्रन्थियों के विषय में विस्तृत रूप से ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- पीयूष ग्रन्थि की संरचना एवं मुख्य कार्यो की विस्तृत रूप से विवेचना कर सकेंगे।
- पीयूष ग्रन्थि से स्रावित होने वाले विभिन्न हार्मोन्स के विषय में विस्तृत रूप से अध्ययन प्राप्त कर सकेंगे।
- थाइरॉयड ग्रन्थि की संरचना एवं मुख्य कार्यो की विस्तृत रूप से विवेचना कर सकेंगे।
- थाइरॉयड ग्रन्थि से स्रावित होने वाले विभिन्न हॉर्मोन्स के विषय में विस्तृत रूप से वर्णन कर सकेंगे।
- पैराथाइरॉयड ग्रन्थि की संरचना एवं मुख्य कार्यो की विस्तृत रूप से विवेचना कर सकेंगे।
- पैराथाइरॉयड ग्रन्थि से स्रावित होने वाले विभिन्न हॉर्मोन्स के कार्यों का अध्ययन कर सकेंगे।
- एड्रीनल ग्रन्थि की संरचना एवं मुख्य कार्यो का विस्तृत विवेचन कर सकेंगे।
- एड्रीनल ग्रन्थि से स्रावित होने वाले विभिन्न हार्मोन्स के विषय में विस्तृत रूप से अध्ययन प्राप्त कर सकेंगे।
- अग्नाशयिक द्वीपिकाएँ की संरचना एवं मुख्य कार्यो की विस्तृत रूप से विवेचना कर सकेंगे।
- अग्नाशयिक द्वीपिकाएँ से स्रावित होने वाले विभिन्न हॉर्मोन्स के कार्यों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- पीनियल ग्रन्थि की संरचना एवं मुख्य कार्यो की विस्तृत रूप से विवेचना कर सकेंगे।
- पीनियल ग्रन्थि से स्रावित होने वाले विभिन्न हॉर्मोन्स की महत्ता एवं कार्यप्रणाली का अध्ययन कर सकेंगे।
- थाइमस ग्रन्थि की संरचना एवं मुख्य कार्यो का वर्णन कर सकेंगे।
- थाइमस ग्रन्थि से स्रावित होने वाले विभिन्न हार्मोन्स के विषय में विस्तृत रूप से अध्ययन प्राप्त कर सकेंगे।
- जनन ग्रन्थि की संरचना एवं मुख्य कार्यो को स्पष्ट कर सकेंगे।
- जनन ग्रन्थि से स्रावित होने वाले विभिन्न हॉर्मोन्स के विषय में विस्तृत रूप से ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अंत में दिए गए प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ हो सकेंगे।

## 10.3 अन्त:स्रावी ग्रन्थियां : एक परिचय

अन्तः स्रावी संस्थान शरीर का वह प्रमुख संस्थान है, जो तन्त्रिका तन्त्र के साथ मिलकर शरीर की विभिन्न क्रियाओं का नियमन करता है। अन्तःस्रावी संस्थान ऊतकों या अंगों जिन्हें अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ (Endocrine Glands) कहा जाता है, से मिलकर बनता है। इस प्रकार की ग्रन्थियों में वाहिकाएँ नहीं होती, अतः इन्हें वाहिकाविहीन (Ductless Glands) भी कहा जाता है।

इनमें उत्पन्न स्राव हॉर्मोन (Hormone) कहलाता है, जो ग्रंथियों से निकलकर सीधे रक्त में मिल जाते हैं और रक्त के साथ भ्रमण करते हुए शरीर के उस अंग में पहुँचते हैं जिस पर उनकी क्रिया होती है।

शरीर में कुछ ग्रन्थियाँ ऐसी भी होती हैं जिनमें नलियाँ होती हैं, जिनसे होकर इनका स्राव या रस शरीर में उपयुक्त स्थान पर पहुँचता रहता है, इन्हें वाहिकामय ग्रन्थियाँ (Duct Glands) या वहिःस्रावी ग्रन्थियाँ (Exocrine Glands) भी कहा जाता है। जैसे- लार ग्रन्थियाँ, स्वेद ग्रन्थियाँ, यकृत एवं अग्न्याशय आदि।

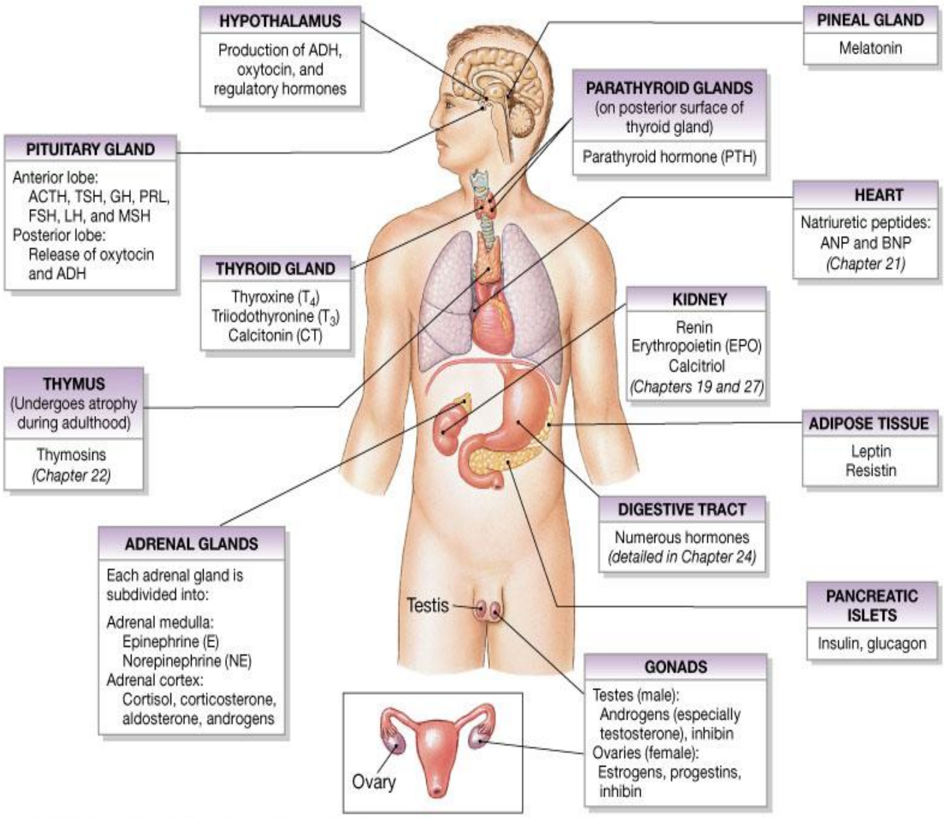


**The Endocrine System**

**हार्मोन** (Hormone) हार्मोन शरीर की किसी अन्तःस्रावी ग्रन्थि में उत्पन्न होने वाला तथा रक्त के साथ भ्रमण करता हुआ अन्य किसी अंग या ऊतक में पहुँचने वाला एक रासायनिक संदेश वाहक (Chemical messenger) है जो उस अंग या ऊतक पर क्रिया करके उसकी क्रियाशीलता को बढ़ा देता है या कम कर देता है। हॉर्मोन अति सूक्ष्म मात्रा में उत्पन्न होते हैं और प्रत्येक हार्मोन का एक निश्चित कार्य होता है। हार्मोन्स का रक्त में सामान्य से कम या अधिक होना दोनों ही स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

**हार्मोन्स के कार्य -**

1. हॉर्मोन शरीर की वृद्धि में सहायक होते हैं।

2. यह शरीर की रोगों से रक्षा करते हैं।

3. यह चयापचय को तथा पाचन संस्थान, श्वसन संस्थान, रक्त परिसंचरण आदि संस्थानों के कार्यों को प्रभावित करके स्वस्थ बनाये रखते हैं।

4. जनन स्रावों को प्रभावित करते हैं।

### 10.4.1 अन्त:स्रावी ग्रन्थियों के प्रकार

मानव शरीर में निम्न अंत:स्रावी ग्रंथियाँ होती हैं -

पीयूष ग्रंथि **(Pituitary Gland)**

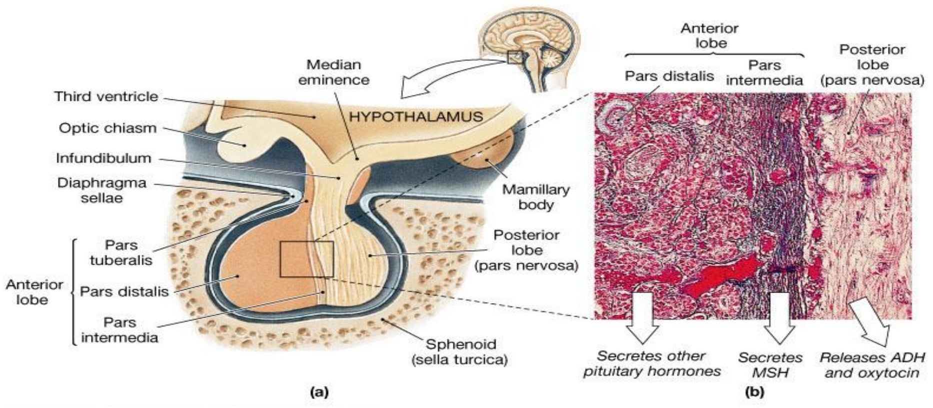


**The Anatomy and Orientation of the Pituitary Gland**

इसे हाइपोफाइसिस के नाम से भी जाना जाता है। यह खोपड़ी के आधार की स्फीनॉइड अस्थि के सेला टर्शिका (Sellaturcica) या हाइपोफाइसियल फोसा में हाइपोथैलेमस के नीचे स्थित एक छोटी सी (मटर के दाने के बराबर) भूरे रंग की ग्रन्थि होती है।

यह मुख्य अन्तःस्रावी ग्रन्थि है। इससे उत्पन्न हॉर्मोन अन्य अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की सक्रियताओं का उद्दीपन करते हैं। यह ग्रंथि अग्रखण्ड (Anterior lobe) तथा पश्चखण्ड (Posterior lobe) दो खण्डों में विभाजित रहती है। अग्रखण्ड तथा पश्चखण्ड से अलग-अलग हॉर्मोन स्रावित होते हैं।

अग्रखण्ड द्वारा स्रावित होने वाले हॉर्मोन - पीयूष ग्रन्थि के अग्र खण्ड से निम्न हॉर्मोन स्रावित होते हैं।

वृद्धि हार्मोन (Growth Hormone - GH) या सोमेटोट्रॉपिक हॉर्मोन (Somatotorpic Hormone) यह शरीर की वृद्धि के लिए आवश्यक हॉर्मोन है। किसी विशिष्ट अंग लक्ष्य को प्रभावित करने के बजाय यह हॉर्मोन वृद्धि से सम्बन्धित शरीर के भागों को प्रभावित करता है। यह वृद्धि की दर को बढ़ाता है और जब एक बार परिपक्वता की स्थिति निर्मित हो जाती है तब उसे बनाए रखता है।

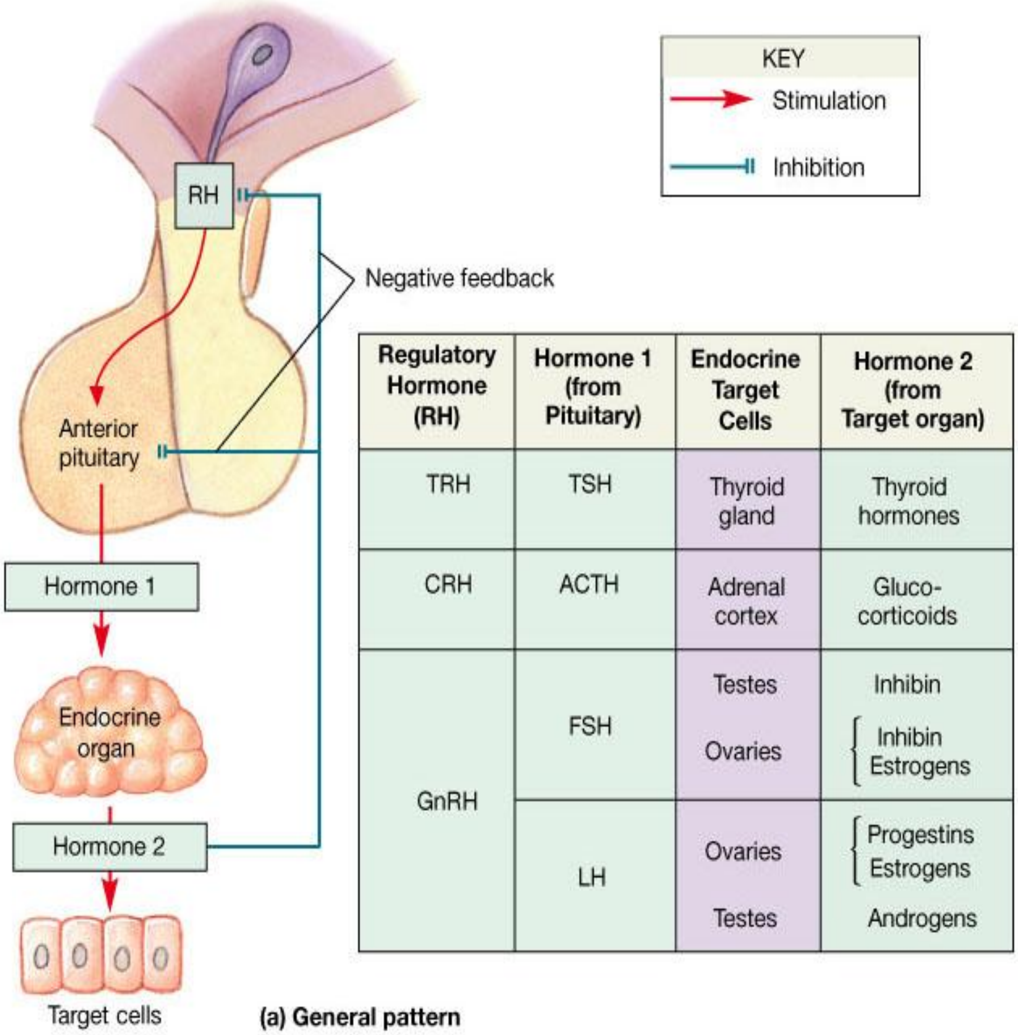


| Regulatory Hormone (RH) | Hormone 1 (from Pituitary) | Endocrine Target Cells | Hormone 2 (from Target organ) |
|---|---|---|---|
| TRH | TSH | Thyroid gland | Thyroid hormones |
| CRH | ACTH | Adrenal cortex | Gluco-corticoids |
| GnRH | FSH | Testes | Inhibin |
| | | Ovaries | { Inhibin, Estrogens |
| | LH | Ovaries | { Progestins, Estrogens |
| | | Testes | Androgens |

(a) General pattern

**Feedback control of Endocrine Secretion**

- स्तन प्रेरक या दुग्ध जनक हॉर्मोन (Prolactin or Lactogenic Hormone) & स्त्रियों में प्रोलेक्टिन के दो कार्य होते हैं – एस्ट्रोजन एवं प्रोजेस्टेरोन हॉर्मोन के साथ मिलकर यह गर्भावस्था के दौरान स्तनों में नलियों को विकसित करता है।

  प्रसव के दौरान दुग्ध उत्पादन को प्रेरित करता है।

- अधिवृक्क - प्रान्तस्थाप्रेरक या एड्रीनोकार्टिकोट्रोपिक हॉर्मोन (Adrenocorticotropic Hormone - ACTH) & यह हॉर्मोन एड्रीनल कॉर्टेक्स को उद्दीप्त करता है और उसमें रक्त प्रवाह को बढ़ाता है इससे एड्रीनल

कॉर्टेक्स से स्टीरायड हॉर्मोन्स का उत्पादन बढ़ जाता है तथा विशेष रूप से कॉर्टिसॉल की निकासी बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त ACTH मैलेनिन के उत्पादन में भी प्रभावी है।

- थाइरॉयड उद्दीपक हॉर्मोन (Thyroid Stimulatory Hormone - TSH) यह हॉर्मोन थाइरॉयड ग्रन्थि की वृद्धि और उसकी क्रिया शीलता को उद्दीप्त करता है जिससे थाइरॉक्सिन (Thyroxine-T4) तथा ट्राइआयडोथाइरोनीन (Tridothyronine-T3) हॉर्मोन स्रावित होते हैं। जब रक्त में T3 व T4 हॉर्मोन कम हो जाते हैं तो TSH का स्रावण बढ़ जाता है।

जनन ग्रन्थि पोषक या गोनाडोट्रॉफिक हॉमोन (Gonadotropic hormones or Sex hormones) स्त्री एवं पुरुष दोनों में अग्रज पीयूष ग्रन्थि से निम्न दो जनन ग्रन्थि पोषक या लिंग हॉर्मोन उत्पन्न होते हैं-

(1) ल्यूटिनाइजिंग हॉर्मोन (Latinizing Hormone - LH) & स्त्रियों में एक अस्थायी अन्तःस्रावी ऊपक-कॉर्पस ल्यूटियम (Corpus Luteum) का निर्माण होता है जो स्त्री सेक्स हॉर्मोन्स, प्रोजेस्टेरॉन एवं ईस्ट्रोजन का स्रावण करता है। LH डिम्बोत्सर्जन को उद्दीप्त करता है, जिसमें प्रत्येक माह डिम्बाशय (Ovary) से परिपक्व अण्डे (natural egg) का क्षरण (release) होता है। LH पुरुषों में शुक्रग्रन्थियों में अन्तरालीय कोशिकाओं को उद्दीप्त करता है जिससे टैस्टोस्टेरोन हॉर्मोन उत्पन्न होते हैं।

(2) फॉलिकल्स उद्दीपक हॉर्मोन (Follicle- stimulating hormone - FSH) स्त्रियों में यह प्रत्येक मासिक चक्र के दौरान ओवेरियन फॉलिकल्स या ग्राफियन फॉलिकल्स की वृद्धि एवं उनकी परिपक्वता को उद्दीप्त करता है। यह ओवेरियन फॉलिकल को ईस्ट्रोजन हॉर्मोन स्रावित करने के लिए भी प्रेरित करता है। FSH पुरूषों में वृषणों (testes) की शुक्राणु जनक कोशिकाओं को उद्दीप्त करता है। जिससे शुक्राणुओं की उत्पत्ति (Spermatogenesis) होती है साथ ही यह शुक्राणुओं के निर्माण को भी नियन्त्रित करता है।

**Three Methods of Hypothalamic Control over the Endocrine System**

पश्चखण्ड द्वारा स्रावित होने वाले हॉर्मोन - पीयूष ग्रन्थि के पश्चखण्ड से दो हॉर्मोन स्रावित होते हैं-

- एन्टीडायूरेटिक हॉर्मोन या वैसोप्रेसिन (Antidiuretic Hormone -ADH or Vasopressin) यह हॉर्मोन जल के लिए वृक्कीय नलिकाओं की पारगम्यता को बढ़ाकर उनमें जल के पुनः अवशोषण को बढ़ाता है जिससे कम मात्रा में मूत्र विसर्जित होता है।

- ऑक्सीटोसिन हॉर्मोन (Oxytocin Hormone) & ऑक्सीटोसिन हॉर्मोन प्रसव के दौरान गर्भाशयिक संकुचनों (Uterine Contractions) एवं प्रसव के उपरानत शिशु के दुग्धपान के लिए दुग्ध निक्षेप करता है। पुरुषों में इसकी क्रिया अज्ञात है।

**10.4.2 थाइरायड ग्रन्थि** (Thyroid Gland) इस ग्रंथि के स्राव का प्रभाव सम्पूर्ण शरीर पर पड़ता है। यह स्राव शरीर की रासायनिक क्रिया को ठीक रखने में तथा शरीर की सम्यक् वृद्धि तथा पुष्टि में महत्वपूर्ण भाग लेता है।

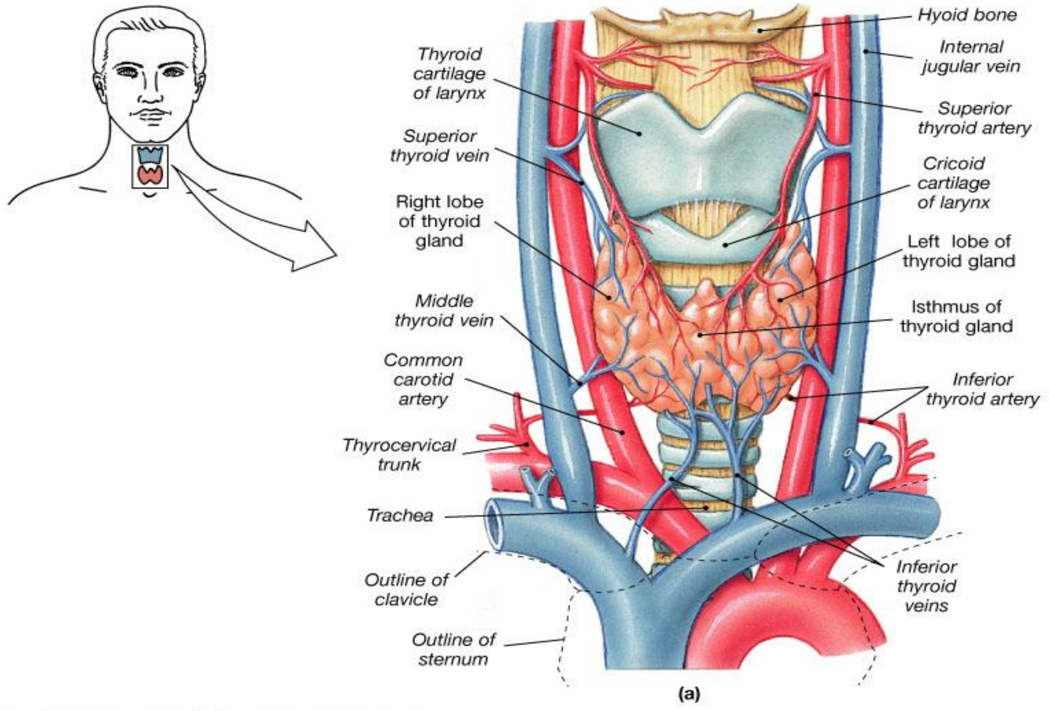


**The Thyroid Gland**

यह दो लम्बी ग्रंथियाँ श्वास नली के दोनों ओर स्थित हैं तथा अपने मध्यभाग में एक लम्बे भाग द्वारा एक दूसरी से अंग्रेजी के H अक्षर की भाँति जुड़ी रहती हैं। इनके ऊपर एक झिल्ली का आवरण चढ़ा रहता है तथा इनके भीतर अनेक छोटी-छोटी नलियाँ होती हैं जो भीतरी केन्द्र में एकत्र रहती हैं। इस ग्रंथि का भार लगभग 30 अंश होता है तथा रंग पीलापन लिए रहता है। थाइरॉयड ग्रन्थि दो तरह की कोशिकाओं - फॉलिक्यूलर तथा पैराफॉलिक्यूलर कोशिकाओं (C Cells) से निर्मित होती है। फॉलिक्यूलर कोशिकाएं ट्राइआयडोथाइरोमीन (T3) का निर्माण व स्रावण करती है। पैराफॉलिक्युलर कोशिकाएं कैल्सिटोनिन हॉर्मोन का निर्माण व स्रावण करती हैं।

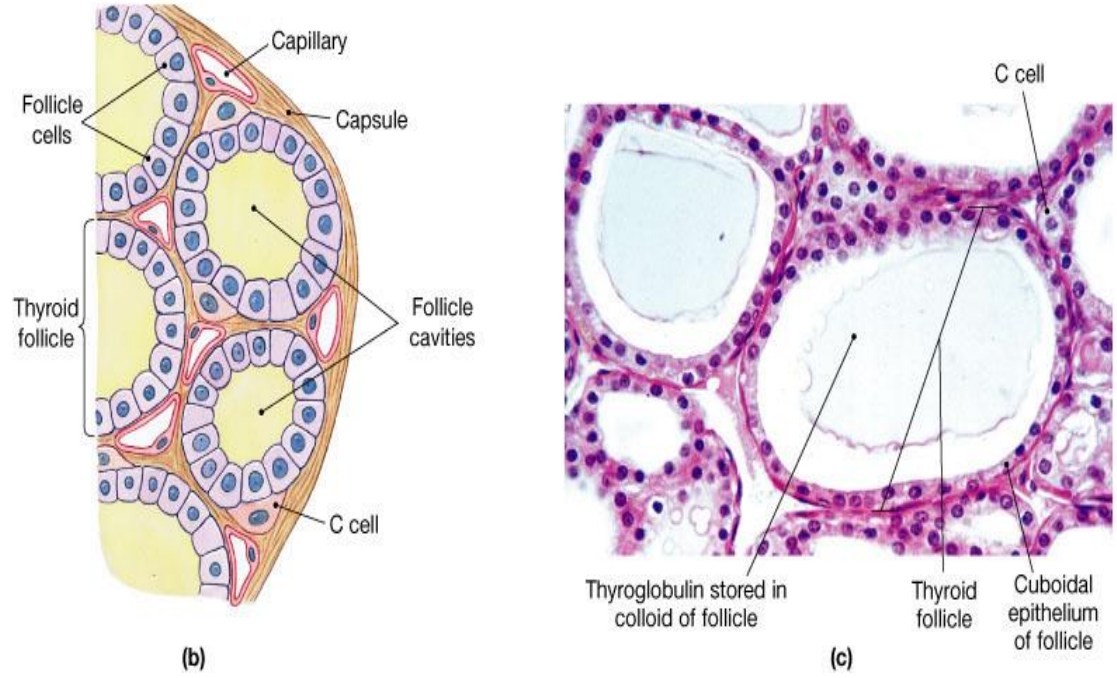


**The Thyroid Gland**

**कार्य** & T4 व T3 हॉर्मोन्स चयापचय की गति को बढ़ाते हैं तथा तन्त्रिका ऊतकों की वृद्धि एवं विकास को नियन्त्रित करते हैं। मूत्र के निर्माण को बढ़ाते हैं। प्रोटीन के विभाजन और कोशिकाओं के द्वारा ग्लूकोज के अन्तर्ग्रहण को बढ़ाते हैं। कैल्सिटोनिन हॉर्मोन रक्त में कैल्शियम सान्द्रता को कम करता है।

**न्यूनता -** भोजन या जल में आयोडीन की कमी हो जाने से थाइरॉयड हॉर्मोन उपयुक्त मात्रा में नहीं बन पाते तथा TSH का स्रावण बढ़ जाता है जिससे गलगण्ड या घेंघा (Goitre) रोग हो जाता है।

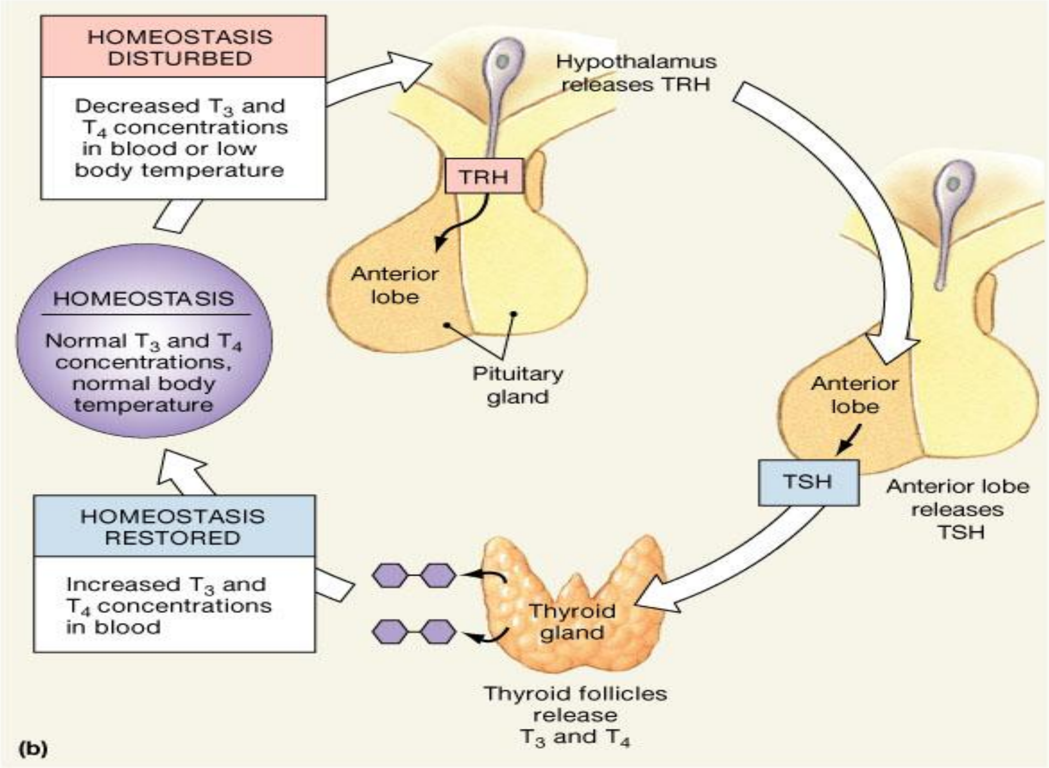


**The Thyroid Follicles**

अधिकता (Hyper Secretion) & अधिक मात्रा में Secretion से Hyperthyroidism की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसमें प्रायः नेत्रोत्संधी गलगण्ड (Exopthalmic goitre) हो जाता है।

**10.4.3 पैराथाइरॉइड ग्रन्थि** (Para Thyroid Gland) & पैराथाइरॉयड ग्रन्थियाँ मसूर के दाने के आकार की चार छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ होती हैं। जिनमें से प्रायः दो-दो थाइरॉइड ग्रन्थि के प्रत्येक खण्ड की पोस्टीरियर (पिछली) सतह में अवस्थित रहती है।

**कार्य -** ये ग्रन्थियाँ पैराथॉर्मोन (Parathormone- PTH) नामक हॉर्मोन स्रावित करती हैं जो शरीर में कैल्शियम एवं फॉस्फोरस के वितरण एवं चयापचय को नियन्त्रित करता है। रक्त में कैल्शियम एवं फॉस्फोरस आयनों का उचित सन्तुलन न होने से तन्त्रिका आवेगों का संचारण गड़बड़ा जाता है, अस्थि ऊतक नष्ट हो जाते हैं। अस्थि विकास रूक जाता है तथा टिटैनी नामक रोग हो जाता है।

**न्यूनता -** पैराथॉर्मोन के अल्पस्रावण से रक्त में कैल्शियम की मात्रा की कमी हो जाती है परिणामस्वरूप टिटैनी नामक रोग हो जाता है। जिसमें हाथ पैर ऐंठ जाते हैं और आक्षेप अर्थात् दौरे आने लगते हैं।

**अधिकता -** अतिस्रावण से रक्त में फॉस्फोरस की मात्रा कम, परन्तु कैल्शियम की मात्रा अधिक हो जाती है किन्तु हड्डियों में कैल्शियम की कमी हो जाने से वे छिद्रमय व भुरभुरी हो जाती है। रक्त में कैल्शियम अधिक होने से वृक्कों में कैल्शियम जमा होने लगता है तथा गुर्दों में पथरियाँ (Renal Stones) बन जाती हैं।

**10.4.4 एड्रीनल या सुप्रारीनल ग्रन्थियाँ** (Adrenal Gland or Suprarenal Glands) **-** दो एड्रीनल या सुप्रारीनल ग्रन्थियाँ प्रत्येक वृक्क के ऊपरी एवं सामने के भाग पर स्थित रहती हैं। ये ग्रन्थियाँ तिकोने आकार की होती हैं। प्रत्येक ग्रन्थि का बाह्य भाग कॉर्टेक्स तथा आन्तरिक भाग मेड्यूला (Medulla) कहलाता है। इन दोनों भागों से स्रावित हॉर्मोन्स अलग-अलग होते हैं व इनके कार्य भी अलग होते हैं-

- एड्रीनल कॉर्टेक्स (Adrenal cortex)
- एड्रीनल मेड्यूला (Adrenal Medulla)

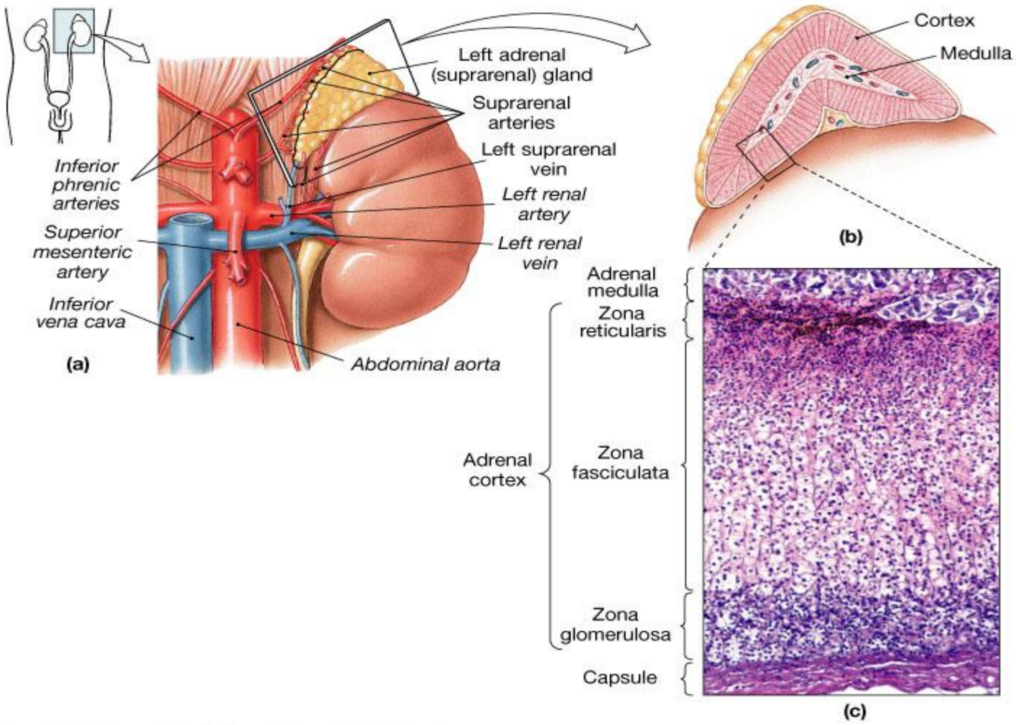


**The Adrenal Gland**

(क) एड्रीनल कॉर्टेक्स - इनसे कई हॉर्मोन्स उत्पन्न होते हैं जिन्हें सामूहिक रूप से कार्टिकोस्टीरॉयड्स कहा जाता है। कॉर्टेक्स तीन क्षेत्रों में विभाजित रहता है जिनसे निम्न तीन मुख्य वर्गों के स्टीरॉयड हॉर्मोन स्रावित होते हैं-

**1**) वाह्य क्षेत्र से मिनरलोकॉर्टिकायड्स - इनके अन्तर्गत एल्डोस्टीरॉन तथा डीहाइड्रोइपीएण्ड्रोस्टेरोन दो हार्मोन्स का समावेश होता है जिनमें एल्डोस्टेरोन प्रमुख हैं। इसका कार्य शरीर में सोडियम एवं पोटेशियम के सन्तुलन को बनाए रखना है।

2) मध्य क्षेत्र से ग्लूकोकोर्टिकॉयड्स - ये रक्त शर्करा की सान्द्रता को नियन्त्रित करने में सहायक होते हैं ये निम्न दो तरह के होते हैं- कार्टिसॉल या हाइड्रोकॉर्टिसोन एवं कॉर्टिकोस्टीरॉन सभी तरह के भोज्य पदार्थों के चयापचय को प्रभावित करते हैं, एन्टी इन्फ्लेमेटरी ऐजेण्ट की भांति कार्य करते हैं, वृद्धि को प्रभावित करते हैं तथा शारीरिक अथवा

मानसिक तनावों को कम करते हैं। ये यकृत द्वारा संग्रह किये गए प्रोटीन को ग्लाइकोजन में परिवर्तित (Gluconeogenesis) करते हैं और कोशिकाओं द्वारा ग्लूकोज के उपयोग को कम करते हैं जिससे रक्त शर्करा स्तर बढ़ जाता है लेकिन यह पेन्क्रियाज द्वारा स्रावित इन्सुलिन के प्रयोग से सन्तुलित रहता है। इनके अतिस्रावण से कुशिंग रोग उत्पन्न हो जाता है।

3) आन्तरिक क्षेत्र से सेक्सहॉर्मोन या गोनाडोकॉर्टिकॉयड्स - इसके अन्तर्गत एण्ड्रोजन्स (Androgen)] ईस्ट्रोजन्स (Estrogens) तथा प्रोजेस्टेरोन (Progesterone)] इन तीन लिंग हॉर्मोन्स का समावेश होता है। जिनका सम्बन्ध जनन तथा लैंगिक विकास से होता है।

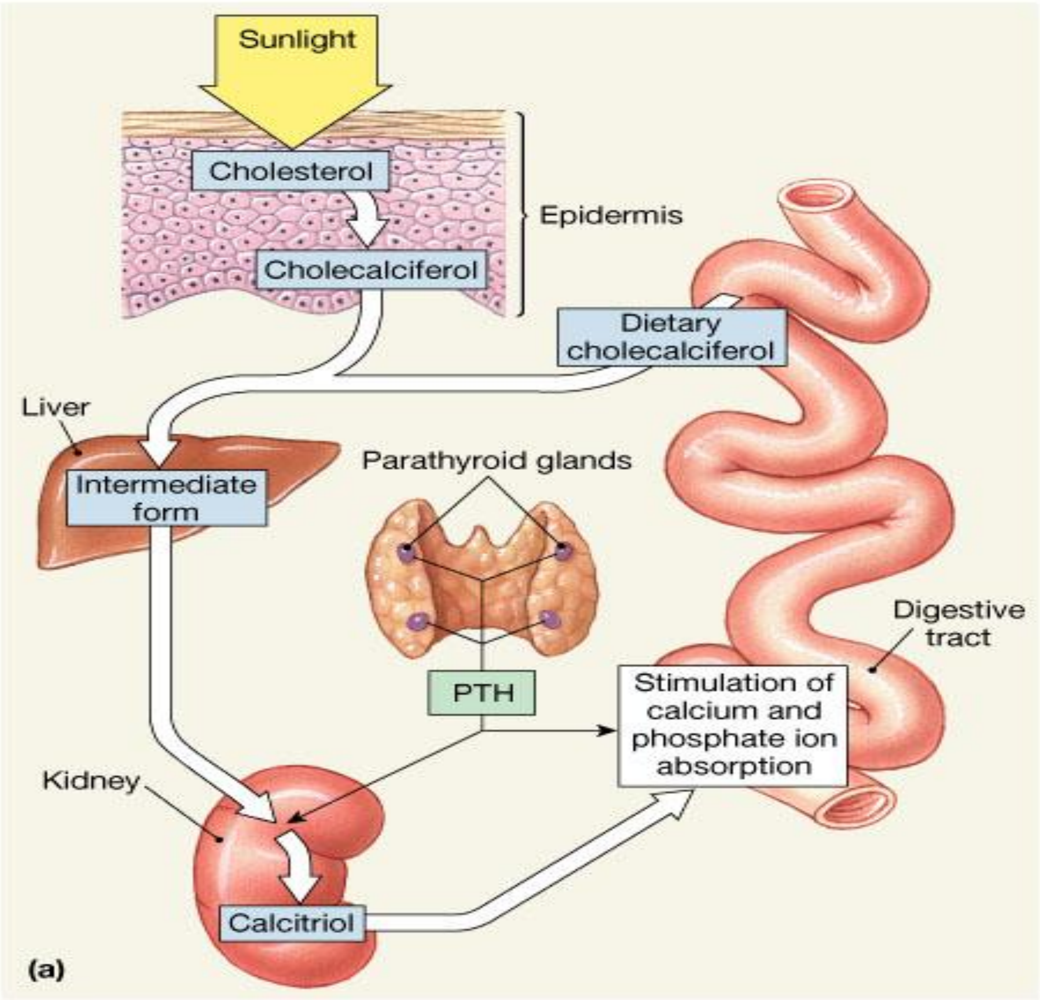


**Endocrine Functions of the Kidneys**

(ख) एड्रीनल मेड्यूला - यह एड्रीनल ग्रन्थि का आन्तरिक भाग होता है जो कॉर्टेक्स से पूर्ण रूप से ढका रहता है। इससे केटेकोलामाइन (Catecholamines) अर्थात् एड्रीनेलिन या एपिनेफ्रीन तथा नॉरएड्रीनालीन या नॉरएपिनएफ्रीन दो हॉर्मोन्स उत्पन्न होते हैं।

एड्रीनेलिन या एपिनेफ्रीन के कार्य -

- कंकालीय पेशियों एवं अन्तरांग की रक्तापूर्ति करने वाली

  धमनियों को विस्तारित करता है।

- हृदय धड़कन की दर एवं शक्ति को बढ़ाता है। हृदय से रक्त की

  निकासी (Cardiac output) को बढ़ाता है।

- बढ़ी हुई हृदय रक्त की निकासी एवं परिसरीय वाहिका संकुचन (peripheral vasoconstriction) अर्थात् त्वचा की रक्तवाहिनियों को संकुचित करके रक्तचाप को बढ़ाता है।
- पाचन संस्थान (digestive system) की चिकनी पेशियों के संकुचन को रोककर शिथिलता उत्पन्न करता है।
- श्वास नलिकाओं को विस्तारित करता है तथा श्वास दर (respiratory rate) को बढ़ाता है।
- कंकालय पेशियों में होने वाली थकान की दर को घटाता है।
- चयापचयी दर को बढ़ाता है। यकृत एवं पेशियों में विद्यमान ग्लाइकोजन को ग्लूकोज में परिवर्तित करके रक्त में शर्करा का स्तर तथा पेशियों में लैक्टिक एसिड का स्तर बढ़ाता है।
- नानएडीनेलिन के कार्य -
- हृदय की रक्तवाहिकाओं को विस्तारित करता है तथा अन्य अंगों में वाहिकासंकुचन करता है। हृदय धड़कन की दर एवं इसकी रक्त निकासी को बढ़ाता है।
- परिसरीय वाहिकासंकुचन करके रक्तचाप को बढ़ाता है।
- जठरान्त्र पथ की चिकनी पेशी को शिथिल करता है।
- लिपिड चयापचय को बढ़ाता है तथा वसा ऊतक को उन्मुक्त वसीय अम्लों को मुक्त करता है।

**10.4.5 अग्न्याशय** (Pancreas) अग्न्याशय ग्रंथि के बाँए सिरे पर कुछ ग्रंथियां एकद्वीप की भाँति होती हैं। इन ग्रंथियों के स्राव को 'मधुसूदनी' अथवा 'इन्सुलिन' (Insulin) कहा जाता है। यह इन्सुलिन लैगरहेन्स की द्विपीकाओं से निकलता

है। यह स्राव रक्त में मिलकर कार्बोहाइड्रेट के अंश तथा ग्लूकोज आदि को धारण कर उन्हें शरीर में प्रयुक्त होने योग्य बनाता है। इस स्राव की कमी से मनुष्य को 'मधुमेह' (Diabetes) नामक रोग हो जाता है।

जब यकृत के भीतर कोई दोष उत्पन्न हो जाता है अथवा मनुष्य चीनी का अधिक सेवन करता है, उस समय रक्त के भीतर चीनी की मात्रा अधिक बढ़ जाती है, तब उक्त ग्रंथियाँ जिन्हें 'आइसलेट्स आफ लैंगर हैन्स' (Islets of langer hans) कहते हैं, उत्तेजित होकर अधिक इन्सुलिन उत्पन्न करती है।

अग्न्याशय अर्थात् क्लोम ग्रंथि से अग्नाशय रस का स्राव होता है, जो भोजन को पचाने में सहायता करता है।

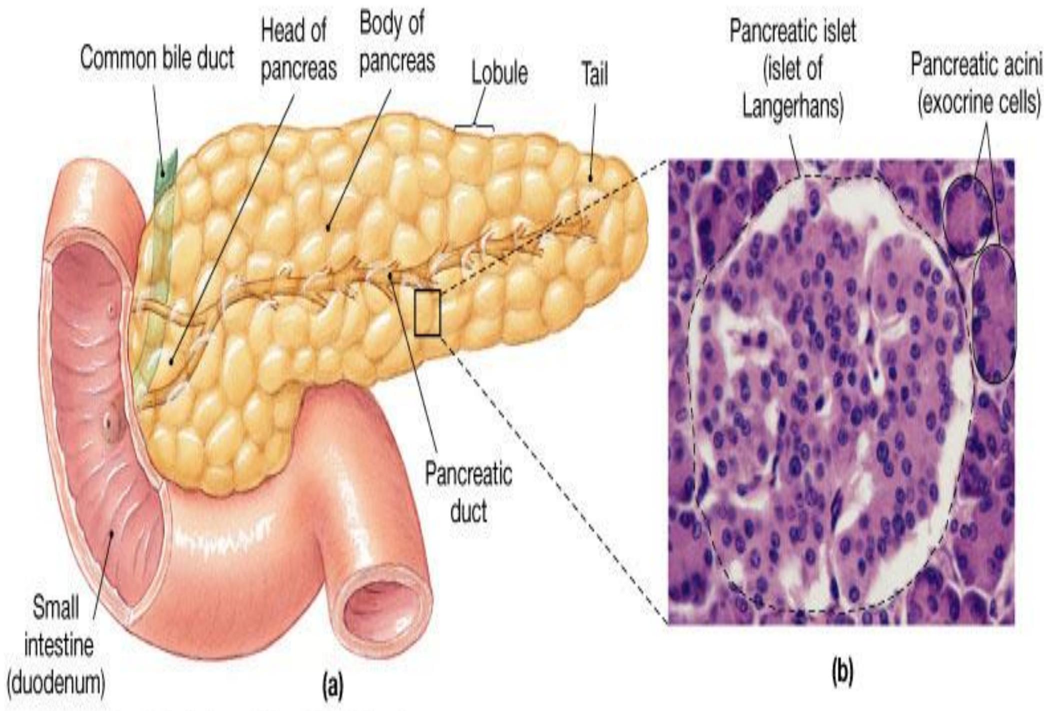


**The Endocrine Pancreas**

वयस्क पैंक्रियाज में 2,00,000 एवं 20,00,000 के बीच अग्नाशयिक द्वीपिकाएँ विद्यमान रहती हैं जो सम्पूर्ण ग्रन्थि में छितराई हुई फैली रहती हैं। द्वीपिकाओं में चार विशेष प्रकार की कोशिकाएँ रहती हैं जिन्हें एल्फा, बीटा, डेल्टा तथा एफ कोशिकाएँ कहा जाता है। इनमें से एल्फा कोशिकाएँ ग्लूकैगॉन नामक हॉर्मोन उत्पन्न करती हैं जो यकृत को उद्दीप्त करके ग्लाइकोजन को ग्लूकोज में परिवर्तित कर देता है जिससे रक्त में ग्लूकोज का स्तर बढ़ जाता है।

बीटा कोशिकाएँ इन्सुलिन नामक हॉर्मोन उत्पन्न करती हैं जो रक्त में विद्यमान ग्लूकोज को ग्लाइकोजन में परिवर्तित करता है, तदुपरान्त यह यकृत एवं पेशियों में संचित हो जाता है। इन्सुलिन शरीर की ऊतक कोशिकाओं की पारगम्यता को बढ़ा देता है जिससे रक्त से ग्लूकोज कोशिकाओं में पहुँच जाता है। इन्सुलिन एवं ग्लूकेगॉन दोनों हॉर्मोन्स प्रायः एक-दूसरे के विपरीत कार्य करते हैं जिससे रक्त में ग्लूकोज का स्तर सामान्य बना रहता है। डेल्टा कोशिकाएँ

सोमेटोस्टेटिन नामक हॉर्मोन स्रावित करती हैं जो अग्रपिट्यूटरी ग्रन्थि से वृद्धि हॉर्मोन को मुक्त होने में बाधा उत्पन्न करता है तथा ग्लूकेगॉन एवं इन्सुलिन दोनों के स्राव को भी रोकता है। एफ कोशिकाएँ अग्न्याशयिक पॉलीपेप्टाइड स्रावित करती हैं जो भोजन के उपरान्त रक्तधारा में पहुँचता है, परन्तु इसके अन्तःस्रावी कार्य अभी अज्ञात है।

**10.4.6 पीनियल ग्रंथि** (Pineal Gland) इस ग्रंथि का स्राव पुरुषों तथा स्त्रियों में समय से पूर्व पुरुषत्व अथवा स्त्रीत्व के चिह्न प्रकट नहीं होने देता।

यह मटर के दाने के आकार की लाल से भूरे रंग की रचना है जो मस्तिष्क के प्रमस्तिष्कीय अर्द्धगोलार्द्धों के भीतर गहराई में, तृतीय वेन्ट्रिकल के पिछले छोर पर स्थित रहती है। इसका कार्य अज्ञात है। यौवनारम्भ के पश्चात् इस ग्रन्थि का अपक्षय हो जाता है और वृद्धावस्था में यह कैल्सिफाइड हो जाती है तथा खोपड़ी के एक्स - रे में यह उपयोगी पहचान चिन्ह का कार्य करती है।

**10.4.7 थायमस ग्रन्थि** (Thymus Gland) इस ग्रंथि का स्राव बालक के शरीर की वृद्धि करने में सहायक होता है। इस स्राव की कमी से मनुष्य छोटे कद का तथा दुर्बल रह जाता है। किसी-किसी मनुष्य में इस ग्रंथि की स्राव की कमी के कारण 'श्वास' या 'दमा' (Asthama) नामक रोग भी हो जाता है। थाइमस ग्रन्थि वक्षीय गुहा में स्टर्नम के पीछे श्वासप्रणाल के विभाजन के स्तर पर स्थित एक लिम्फॉयड अंग है। इसमें दो खण्ड होते हैं जो संयोजी ऊतक की एक परत से आपस में जुड़े रहते हैं। यह उम्र के अनुसार भिन्न-भिन्न आकार की होती है। जब तक बालक की उम्र दो वर्ष की नहीं हो जाती तब तक बढ़ती रहती है, इसके बाद यह सिकुड़ती जाती है, अतः वयस्क में यह मात्र तन्तुमय अवशेष की अवस्था में पायी जाती है।

**कार्य** – थायमस ग्रन्थि का मुख्य कार्य टी-कोशिकाओं का निर्माण करना है जो शरीर की रोगक्षमता बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इस ग्रन्थि से स्रावित स्राव का प्रभाव जननेन्द्रियों के विकास तथा यौवनारम्भ पर पड़ता है। अस्थियों का पूर्ण विकास होने तक यह उनके विकास पर नियन्त्रण रखता है।

**10.4.8 जनन ग्रन्थियाँ** (Gonads - Ovaries and Testes) - पुरुषों में वृषण ग्रन्थियाँ और स्त्री में डिम्ब ग्रन्थियाँ जनन ग्रन्थियाँ या लिंग ग्रन्थियाँ कहलाती हैं। ये वो हॉर्मोन्स स्रावित करती है जो प्रजनन कार्यों के नियमन में सहायता करते हैं। पुरुष में वृषण ग्रन्थियों से टेस्टोस्टीरॉन तथा स्त्रियों में डिम्ब ग्रन्थियों से एस्ट्रीजन एवं प्रोजेस्टेरॉन हॉर्मोन स्रावित होते हैं।

वृषण ग्रंथि - ये संख्या में दो होती हैं। प्रत्येक ग्रंथि में लगभग **1000** मुड़ी हुई पतली नलियाँ रहती है। प्रत्येक नली की लंबाई **2** से **3** फुट तक होती है। अण्ड ग्रंथियां अण्डकोष के दाँई तथा बाँई ओर रहती है। यथार्थ में ये पतली नलियों की गुच्छ ही होती है। प्रत्येक गुच्छ की लम्बाई लगभग डेढ़ इंच**,** चौड़ाई **1** इंच तथा मोटाई **1** इंच होती है। पुरुषों की अण्ड ग्रंथियों से उत्पन्न होने वाले स्राव को 'टेस्टीकुलर हॉरमोन' (Testicular Hormone) कहते हैं। यह स्राव पुरुषोचित गुणों का विकास कर शरीर को स्वस्थ बनाता तथा शक्ति प्रदान करता है।

डिम्ब ग्रंथि - ये ग्रंथियां दो प्रकार के स्रावों को बनाती हैं, 1. ऋतु जनक स्राव (Oestrogenic Hormoen) तथा 2- स्तन्यवर्द्धक स्राव (Luteal Hormone)।

ऋतुजनक स्राव' स्त्रियों के शरीर में स्त्रियोचित गुणों का विकास कर, उन्हें कोमलता, सुन्दरता, शारीरिक सौष्ठव, स्तनों की सुडोलता एवं मासिक धर्म की नियमितता आदि प्रदान करता है। 'स्तन्यजनक स्राव' गर्भावस्था में माता के स्तनों में दूध उत्पन्न करता है। इस स्राव का प्रभाव केवल गर्भावस्था में तथा शिशु के जन्म के बाद उसके स्तन-पान करने की अवधि तक ही रहता है। उसके बाद यह बन्द हो जाता है।

ऋतुजनक स्राव' अपना कार्य नियमित रूप से करता रहता है। इस स्राव के न होने पर स्त्रियों को दुर्बलता, हृदय की धड़कन का बढ़ना, सिर का चकराना तथा स्वभाव में चिड़चिड़ापन आदि व्याधियों का शिकार होना पड़ता है।

डिम्ब ग्रंथियाँ भी संख्या में दो होती हैं। एक गर्भाशय के दाँई ओर तथा दूसरी गर्भाशय के बाँई ओर रहती है। इनकी बनावट भी पुरुषों की अण्ड-ग्रंथियों जैसी ही होती है।

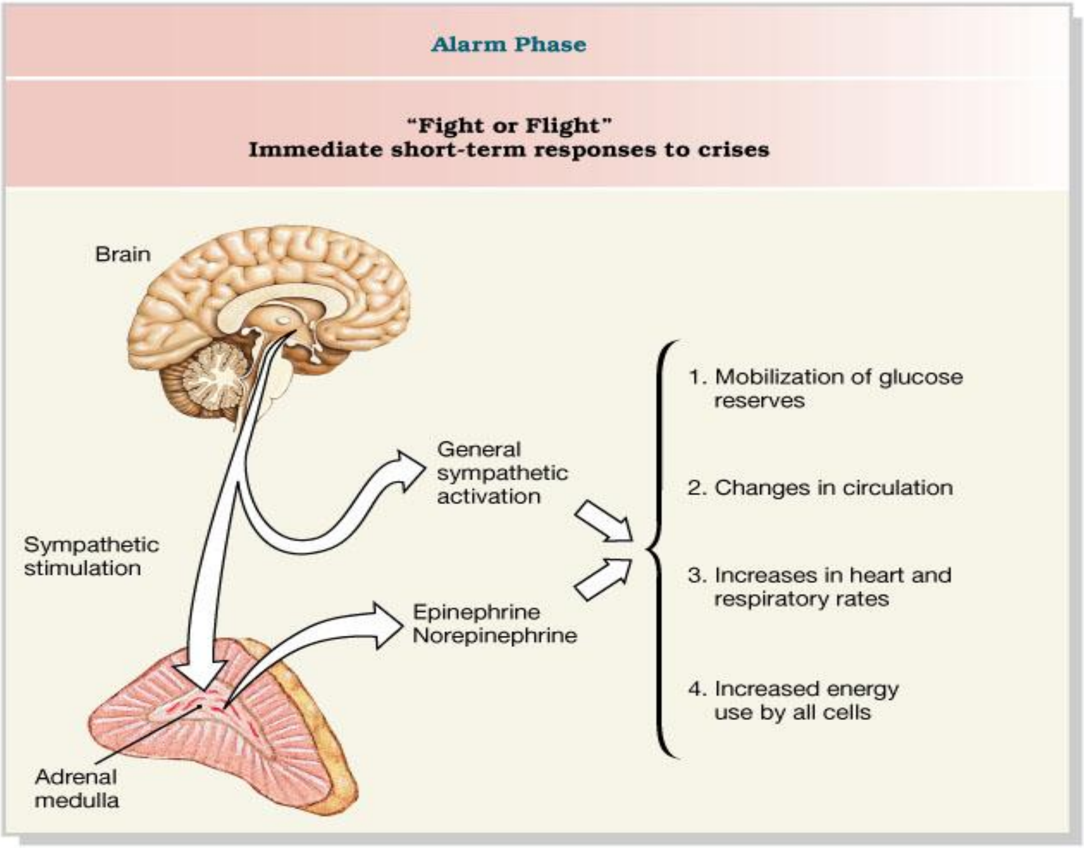


**The General Adaptation Syndrome**

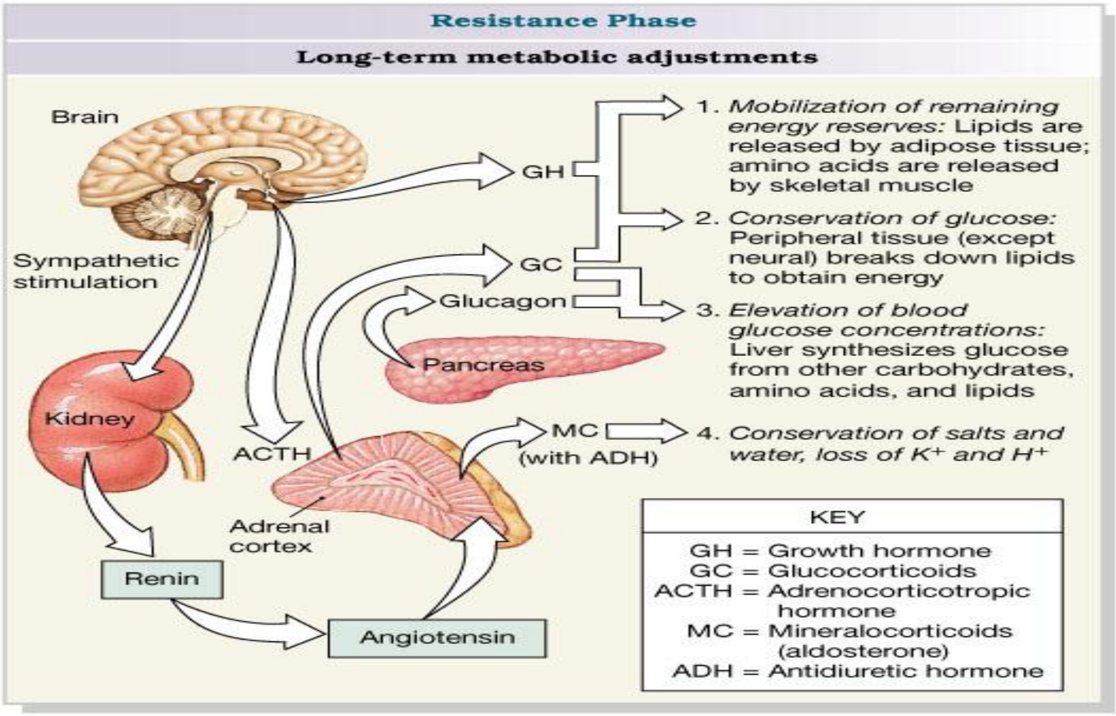


**अभ्यास प्रश्न**

**1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।**

(क) अन्त:स्रावी ग्रन्थियों से उत्पन्न स्राव को................कहते है।

(ख) पैराथॉर्मोन हॉर्मोन के अल्पस्रावण से................नामक रोग हो जाता है।

(ग) एड्रीनल ग्रन्थि का बाह्य भाग...............तथा आंतरिक भाग.............कहलाता है।

(घ) जनन व लैंगिक विकास से सम्बन्धित तीन लिंग हॉर्मोन........... , ................ और .................. रोग हो जाता है।

(ड.) थाइमस ग्रन्थि के स्राव की कमी के कारण...........रोग हो जाता है।

(च) ..............ग्रन्थि का स्राव पुरूषों तथा स्त्रियों में समय से पूर्व पुरूषत्व अथवा स्त्रीत्व के चिन्ह प्रकट नहीं होने देता।

**2. सत्य/असत्य बताइए।**

(क) अंत:स्रावी ग्रन्थियों को वाहिकामय तथा बहि:स्रावी ग्रन्थियों को वाहिनीहीन ग्रन्थियॉं भी कहते हैं।

(ख) अग्नाशयिक द्वीपिकाओं की एल्फा कोशिका ग्लूकैगॉन तथा बीटा कोशिका इन्सुलिन नामक हॉर्मोन उत्पन्न करती हैं।

(ग) पीयूष ग्रन्थि को हाइपोफाइसिस के नाम से भी जाना जाता है।

(घ) जब रक्त में T3 व T4 हॉर्मोन कम हो जाते हैं तो पीयूष ग्रन्थि से स्रावित थाइरॉइड उद्दीपक हॉर्मोन का (TSH) स्रावण भी कम हो जाता है।

## 10.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि अंत:स्रावी तंत्र एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्थान है जो लगभग समस्त शरीरिक एवं मानसिक विकासक्रम की क्रियाओं में सहायता प्रदान करता है।

अंत:स्रावी तंत्र की ग्रन्थियों में वाहिनियॉं नहीं होती अत: इन्हें वाहिकाहीन ग्रन्थियॉं भी कहा जाता है। अंत:स्रावी ग्रन्थियों से उत्पन्न स्राव हॉर्मोन कहलाता है जो ग्रन्थियों से निकलकर सीधे रक्त में मिल जाता है और रक्त के साथ भ्रमण करते हुए शरीर के उस अंग में पहुँचता है जिस पर उसकी क्रिया होनी होती है हॉर्मोन अति सूक्ष्म मात्रा में उत्पन्न होता है तथा प्रत्येक हॉर्मोन का एक निश्चित कार्य होता है। अंत:स्रावी ग्रन्थियॉं जैसे पीयूष ग्रन्थि, पीनीयल ग्रन्थि, एड्रीनल ग्रन्थि, थाइरॉइड ग्रन्थि, जनन ग्रन्थि इत्यादि शरीर में विभिन्न हॉर्मोन स्रावित कर शरीर की क्रियाओं में सहायता करती हैं जैसे वृद्धि, रोगों से शरीर की रक्षा, चपापचय, श्वसन, रक्त परिवहन आदि। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप विभिन्न अतंस्रावी ग्रन्थियों के हॉर्मोन तथा उनके कार्यो को भली-भॉंति समझ गये होंगे।

## 10.6 शब्दावली

मेटावालिज्म – शरीर में ऊर्जा निर्माण, उपयोग एवं ऊर्जा क्षरण को संयुक्त रूप से या उपापचय कहा जाता है।

श्रावण – निकलना

जनन – पैदा करना

पश्च – पिछला

अग्र – आगे

गलकण्ड – घेंघा, गले का एक रोग

## 10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

### 1. रिक्त स्थानों की पूर्ति

(क) हॉर्मोन

(ख) टिटैनी

(ग) कॉटेक्स, मेड्यूला

(घ) एन्ड्रोजन, इस्ट्रोजन, प्रोजेस्ट्रॉन

(ड.) दमा

(च) पीनियल

### 2. सत्य/असत्य

(क) असत्य

(ख) सत्य

(ग) सत्य

(घ) असत्य

## 10.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।

2. गौढ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।

3. प्रकाश, ऐ0 (1998) अ टेक्स्ट बुक ऑफ एनाटॉमी एण्ड फिसियोलॉजी, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली।

4. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।

5. पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शारीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।

6. वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली

7. दीक्षित, राजेश ( 2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन,मथुरा

8. सक्सेना, ओ0 पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन,मथुरा

9. अग्रवाल, जी0सी0 (2010) मानव शरीर विज्ञान, एक्युप्रेशर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार संस्थान, इलाहाबाद

10. Chaurasia’s B.D (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.

## 10.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. अन्त:स्रावी तंत्र का परिचय देते हुए पीयूष ग्रन्थि पर प्रकाश डालिए।

2. अधिवृक्क एवं जनन ग्रन्थियॉं पर प्रकाश डालिए।

3. पीनियल तथा थायमस ग्रन्थियों की रचना व कार्य की विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिए।

4. थइराइड ग्रन्थि की रचना के कार्यो पर एक निबंध लिखिए।

# ईकाई 11- स्वास्थ्य अर्थ एवं परिभाषा, स्वस्थ के लक्षण, स्वास्थ्य रक्षण के उपाय, स्वस्थवृत्त का प्रयोजन एवं उद्देश्य

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 स्वास्थ्य अर्थ एवं परिभाषायें

11.4 स्वस्थ पुरूष के लक्षण

11.5 स्वास्थ्य रक्षण के उपाय

11.6 स्वस्थवृत्त का प्रयोजन एवं उद्देश्य

11.7 सारांश

11.8 शब्दावली

11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.11 निबंधात्मक प्रश्न

## 11.1 प्रस्तावना

भारतीय चिन्तन में यह धारणा रही है कि प्रथम सुख निरोगी काया। अर्थात निरोग रहना (स्वस्थ्य रहना) पहला सुख है । मानव शरीर धारी के लिए आरोग्य सर्वाधिक प्रथम आकांक्षा है। स्वस्थवृत्त के पालन से ही व्यक्ति स्वस्थ्य रह सकता है। प्रस्तुत इकाई में स्वास्थ्य की अर्थ परिभाषाओं के साथ - साथ आप स्वस्थवृत्त के प्रयोजन तथा स्वास्थ्य रक्षण के उपायो का अध्ययन करेगे।

जिज्ञासु पाठको चाहिए कि स्वास्थ्य के विविध आयामो का सम्यक अध्यन स्वस्थवृत्त कर आयुर्वेद की इस प्राचीनतम विद्या से आरोग्य की प्राप्ति करें तभी स्वस्थ्य समाज व राष्ट्र का निर्माण हो सकता है

## 11.2 उद्देश्य

प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन कर लेने के उपरान्त आप

- स्वास्थ्य शब्द के अर्थ को समझ सकेंगे।
- विविध परिभाषाओं के माध्यम से स्वास्थ्य को जान सकेंगे ।
- स्वास्थ्य के लक्षणो का विश्लेषण कर सकेंगे।
- स्वास्थ्य के रक्षण के विविध उपायो को समझ सकेंगे।
- स्वस्थ्यवृत्त का प्रयोजन एवं उद्देश्य को स्पष्ट कर सकेंगे।

## 11.3 स्वास्थ्य अर्थ एवं परिभाषायें

स्वास्थ्य शब्द का शाब्दिक विश्लेषण करके उसकी व्युत्पत्ति की दृष्टि से उसका अर्थ ज्ञात होता है। स्वस्थ - स्व और स्थ अर्थात् जो स्वयं में स्थित हो। तात्पर्य यह है कि वह अवस्था जिसमें व्यक्ति अपने में ही स्थित हो स्वास्थ्य कहलाता है। स्व में शरीर मन, अन्तः करण, वाणी तथा आत्मा आते है। इन सभी का अपनी जगह अवस्थित होना ही स्वास्थ्य कहलाता है। स्व में शरीर मन, अन्तःकरण, वाणी तथा आत्मा आते हैं इन सभी का अपनी जगह अवस्थित होना ही स्वास्थ्य कहलाता है।

आयुर्वेद के उद्देश्य निम्न दो हैं-1. स्वस्थ के स्वास्थ्य का परिरक्षण तथा 2. आतुर के विकार का प्रशमन। मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिए स्वस्थवृत्त का पालन आवश्यक है।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के दो पक्ष होते हैं, एक व्यक्तिगत और दूसरा सामाजिक। जिस प्रकार व्यक्ति का सामाजिक जीवन महत्वपूर्ण होता है, उसी प्रकार उसका व्यक्तिगत जीवन भी महत्वपूर्ण होता है। व्यक्ति को आरोग्यपूर्ण या स्वस्थ बने रहने के लिए दोनों पक्षों पर ध्यान आवश्यक है। इस प्रकार से पूर्ण रूप से स्वस्थ व्यक्ति उसे कहा जाएगा जिसका शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक पक्ष दृढ़ होगा-

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।

प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।।

(सु.सू. 15/48)

सुश्रुत संहिता में स्वास्थ्य को परिभाषित करते हुए उपर्युक्त सूत्र में कहा गया है कि जिसके वात, पित्त, कफ समान रूप से कार्य कर रहे हो, पाचन शक्ति ठीक हो, रस रक्तादि धातुओं की क्रिया समान हो और आत्मा, इन्द्रिय तथा मन प्रसन्न हो, उसी को स्वास्थ्य कहते हैं। इस परिभाषा में प्रथम पद में कहे गए दोष अग्नि, धातु, मल का संकेत शारीरिक स्वास्थ्य की ओर है जबकि द्वितीय पद में उल्लेखित मन, आत्मा, इंद्रिय संबंधी भाव का सम्बन्ध मानसिक आध्यात्मिक स्वास्थ्य से है। इस प्रकार दोनों पदों को मिला कर आचार्य सुश्रुत ने पूर्ण स्वास्थ्य की परिभाषा की है क्योंकि पूर्ण स्वास्थ्य ही मूल लक्ष्य है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन **(WHO)** ने अनेकों बार सुधार कर स्वास्थ्य को इस तरह परिभाषित किया है- Health is a state of complete physical mental, spiritual and social well being and not merely the absence of diseases or infirmity. अर्थात् शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक रूप से स्वस्थ होने पर ही स्वस्थ कहलाएँगें न कि रोग की अनुपस्थिति से।

आधि-व्याधि रहित होना स्वास्थ्य का सकारात्मक पक्ष कहा जा सकता है जबकि शारीरिक कार्यो का ठीक प्रकार से होते रहना तथा प्रसन्नता की अनुभूति एक सकारात्मक पक्ष है। कश्यप संहिता में भी इसी प्रकार से ‘स्वास्थ्य’ के विविध शारीरिक तथा मानसिक लक्षण बताये गये है अन्तर इतना ही है वहाँ पर ‘स्वास्थ्य’ शब्द का प्रयोग न होकर ‘आरोग्य’ शब्द प्रयुक्त है।

सामाजिक स्वास्थ्य की आयुर्वेद में व्याख्या आयु के मूलभूत लक्षणों के संदर्भ में की गई है। चरकोक्त ‘हितायु-अहितायु’ तथा ‘सुखायु-दुःखायु’ का प्रसंग मनुष्य के क्रमशः सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवन के गुण-दोष का द्योतक है।

‘सुखायु-दुःखायु’ का तात्पर्य मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन के सुख-दुःख से है जबकि ‘हितायु-अहितायु’ का संकेत मनुष्य के सामाजिक पक्ष की ओर है। जो पुरुष सामाजिक दृष्टि से स्वस्थ है वह हितायु है, इसके विपरीत वाला अहितायु है।

## 11.4 स्वस्थ पुरुष के लक्षण

स्वस्थ पुरुष के लक्षणों की व्याख्या करने से पूर्व जीव या पुरुष की बहुपक्षीय आयुर्वेदीय अवधारणा का उल्लेख आवश्यक है-

शरीरेन्द्रिय सत्वात्मसंयोगो धारि जीवितम् (च.सं. 1)

अर्थात् ‘पुरुष, शरीर इन्द्रिय-सत्व-मन) & आत्मा का संयोग है इसका तात्पर्य है जीवित पुरुष के ये चार पक्ष है। अतः जब हम पुरुष के स्वास्थ्य की व्याख्या करते हैं तो स्वास्थ्य के लक्षणों का उल्लेख भी पुरुष के उन चारों पक्षों के ही संदर्भ में होना समाचीन है। आचार्य सुश्रुत ने निम्नलिखित संदर्भ में पूर्ण स्वास्थ्य के लक्षणों का अत्यन्त वैज्ञानिक वर्णन उपस्थित किया है। जो सुस्पष्ट रूप से ‘पुरुष’ के उपर्युक्त चारों पक्षों – ‘शरीरेन्द्रियसत्वात्म’ की ओर संकेत करता है।

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।

प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।। (सु.सू. 15/48)

जिस पुरुष के दोष, धातु, मल तथा अग्निव्यापार सम हो अर्थात् सामान्य विकार रहित हो तथा जिसकी इन्द्रियाँ, मन तथा आत्मा प्रसन्न हो, वही स्वस्थ है।

स्वस्थस्य रक्षणं कार्य भिषजा यत्नतः सदा आयुर्वेदोदितं तस्मात्स्वस्थवृतं प्रचक्ष्यते।।

वैद्य को सर्वदा स्वस्थ पुरुष के स्वास्थ्य की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए। चूँकि स्वास्थ्य सर्वदा इच्छित है इसलिए जिस उपाय से मनुष्य सदा स्वस्थ रहे वैद्य को वही उपाय करना चाहिए-

दिनचर्या निशाचर्यामृतु चर्या यथोदिताम्।

आचरन्पुरुषः स्वस्थ सदा तिष्ठिति नान्यथा।।

भा.प्र. 5/13

आयुर्वेदशास्त्रोक्त दिनचर्या, रात्रिचर्या और ऋतुचर्या का आचरण करता हुआ ही मनुष्य सर्वदा स्वस्थ रह सकता है, इसके विपरीत उपायों से नहीं।

सत्वमात्मा शरीरं च त्रयमेतत्त्रिदंडवत्।

लोकस्तिष्ठति संयोगात्रं सर्व प्रतिष्ठिम्।। (च.सू. 1/146)

मन, आत्मा और शरीर ये तीनों त्रिदंड के समान है। इन्हीं के संयोग से प्राणी जगत में विद्यमान रह सकता है और उसी पर सब कुछ आश्रित है।

---

कश्यप संहिता में स्वास्थ्य को परिभाषित करते हुए बताया गया है कि – अन्नाभिलाष, परिपाक, विण्मूत्रवात का यथोचित प्रवाह शरीर में लघुता तथा समाग्निता शारीरिक स्वास्थ्य के लक्षण है और बल वर्ण तथा आयुष्य तो स्वस्थ रहने

के ही परिणाम है। इनके अतिरिक्त 'सुप्रसन्नेन्द्रियत्वम्' तथा 'सुख स्वप्न प्रबोधकम्' मानस स्वास्थ्य के द्योतक है। इस प्रकार

आयुर्वेद में 'पूर्ण स्वास्थ्य' पर बल दिया है।

आयुर्वेद में पुरुष की मनोदैहिक प्रकृति का वर्णन करते हुए पुरुष के शारीरिक गठन शरीर क्रियात्मक विशेषताओं तथा मानसिक स्तर के आधार पर प्रकृति का वर्गीकरण किया गया वहीं दूसरी ओर मानस प्रकृतियों का सविस्तार वर्णन किया गया है। आयुर्वेद में मानसिक स्वास्थ्य (Mental health) के लिए सत्व सार की परीक्षा का उल्लेख मिलता है जो कि उत्तम मनोबल, मध्यम मनोबल एवं अल्प मनोबल के द्योतक है। सात्विक प्रकृति वाला व्यक्ति उत्तम मनोबल वाल, राजस प्रकृति वाला व्यक्ति मध्यम मनोबल वाला तथा तामस प्रकृति वाला व्यक्ति अल्प मनोबल वाला होता है। इनके अतिरिक्त अन्य लक्षण भी कहे गये हैं। स्वस्थवृत्तादि उपायों द्वारा पूर्ण स्वास्थ्यरक्षण के अतिरिक्त सद्वृत्त, आचार, योग के प्रयोग द्वारा मानसिक तथा सामाजिक स्वास्थ्य के उन्नत का भी उपदेश दिया गया है।

## 12.5 स्वास्थ्य रक्षण के उपाय

प्रिय पाठको स्वास्थ्य की रक्षा कराना यह व्यक्ति का प्रथम कर्तव्य है। यौगिक शास्त्रो में स्वास्थ्य रक्षण के विविध उपायों की चर्चा की है।

यौगिक शास्त्रों में भोजन की गुणवत्ता को दो भागों में बाँटा गया है – क) पथ्य, ख) अपथ्य।

(क) पथ्य - जो आहार आदि द्रव्य पदार्थ शरीर के स्रोतों में अपकार अर्थात् हानि करने वाला न हो और मन के लिए प्रिय हो अर्थात् शरीर और मन के लिए हानिकारक न हो उसे पथ्य कहते हैं।

हठप्रदीपिका 1/62,63 के अनुसार, योगाभ्यासी को पुष्टिकारक सुमधुर, स्निग्ध, गाय के दूध से बनी वस्तु, धातु को पुष्ट करने वाला मनोनुकूल तथा विहित भोजन करना चाहिए। उत्तम योग साधकों के लिए पथ्य भोजन यह है चावल, जौ, दूध, घी, मक्खन, मिश्री, मधु, सोंठ, परवल आदि, 5 प्रकार के साग (जीवंती, बथुआ, चौलाई, मेघनाथ, पुनर्नवा), मूँग, हरा चना आदि तथा वर्षा का जल वर्तमान में उपयुक्त नहीं है।

घेरण्ड संहिता 5/17-20 के अनुसार, साधक को चावल, जौ का सत्तू, गेहूँ का आटा, मूँग, उड़द, चना आदि को भूसी रहित, स्वच्छ करके भोजन करना चाहिए। परवल, कटहल, आलू, मानकंद, कंकोल, करेला, कुंदरू, अरवी, ककड़ी, केला, गुलर और चौलाई आदि का शाक भक्षण करना चाहिए। कच्चे या पके केले के गुच्छे का दंड और उसके मूल, बैंगन, कच्चा शाक, परवल के पत्ते, बथुआ और हुरहुर का शाक खा सकते हैं।

(ख) अपथ्य - जो आहार आदि द्रव्य पदार्थ अर्थात् शारीरिक स्रोतों में अपकार अर्थात् हानि करने वाला हो तथा मन के लिए अप्रिय हो अर्थात् शरीर और मन के लिए हानिकारक हो उसे अपथ्य कहते हैं। यह अपथ्य और पथ्य द्रव्य नियमित रूप से सदैव नहीं रहते हैं। परन्तु पथ्य द्रव्य-मात्रा, काल, भूमि, देह एवं दोष की विभिन्न अवस्थाओं को प्राप्त होकर अपथ्य हो जाते हैं और इन्हीं कारणों से अपथ्य भी कई बार पथ्य हो जाते हैं। जो सामान्य दृष्टि से हैं। यथा-

पथ्यं पथो{नपेतं यद्यच्चोक्तं मनसः प्रियम्।

यच्चाप्रियम्पथ्यं च नियतं तत्र लक्षयेत्।।

मात्रा काल क्रिया भूमि देहदोष गुणान्तरम्।

ततद्वि दृश्यन्ते ते ते भावास्तथा तथा।।

वस्तुतः मात्रादि पर भी पथ्यापथ्य का निर्भर है। जैसे - अन्न प्रत्येक प्राणी के लिए पथ्य एवं हितकर है। पर वही अन्न मात्रादि का विचार न कर सेवन किया जाए तो अपथ्य होता है। यथा -

अनात्मवन्तः पशुवद भुज्न्ते ये{प्रमाणतः।

रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णे प्राप्नुवन्ति हि।।

तथा प्राणाः प्राणभृतामन्नं तदयुक्त्या हिनस्त्यसून्।

विषप्राणहरं तच्च युक्तियुक्तं रसायमन्।।

इसी प्रकार मद्य सभी प्राणियों के लिए अपथ्य एवं अहितकर है, परन्तु मात्रादि के अनुसार उसका प्रयोग किया जाए तो लाभकर होता है। यथा -

किन्तु मद्यं स्वभावेन यथैवान्न तथा स्मृतम्।

घेरण्ड संहिता 5/23-26 के अनुसार – कडुवा, अम्ल, लवण और तीखा ये चार रस वाली वस्तुएँ, भुने हुए पदार्थ, दही, तक्र, शाक, उत्कट, मद्य, ताल और कटहल का त्याग करना चाहिए। कुलथी, मसूर, प्याज, कुम्हड़ा, शाक-दंड, गोया, कैथ, ककोड़ा, ढाक, कदंब, नीबू, बड़हड़, लहसुन, कमरख, पियार, हींग, सेम, बंडा आदि का भक्षण योगारंभ में वर्जित है। मार्ग गमन, स्त्री गमन तथा अग्नि सेवन (ताप) भी योगी के लिए उचित नहीं। मक्खन, घृत, दूध, गुड़, शक्कर, दाल, आँवला, अम्ल रस आदि से बचें।

हठप्रदीपिका 1/59 के अनुसार - करेला आदि कटु और इमली आदि खट्टा और मिर्च आदि तिक्त तीक्ष्ण, लवण और गुड़ आदि उष्ण और हरित साग यात्रियों का साग, तिल का तेल, मदिरा, माँस, दही, मट्ठा, हींग तथा लहसुन आदि वस्तु, योग साधकों के लिए अपथ्य कहे गए हैं।

आयुर्वेद में अपथ्य भोजन के संबंध में दो दृष्टिकोणों का विवेचन किया गया है- 1. स्वाद की दृष्टि से, 2. पाचन की दृष्टि से अपथ्य भोजन।

- स्वाद की दृष्टि से - इस आधार पर अपथ्य भोजन के 6 गुण बताए हैं- कटु, अम्ल, लवण, तिक्त, कषाय एवं मधु- मीठा।

- पाचन की दृष्टि से - इस दृष्टि से अपथ्य भोजन दो प्रकार के बताए गए हैं- गुरु एवं लघु।

इस प्रकार उपर्युक्त ग्रंथों के आधार पर अपथ्य भोजन के गुण हैं – बासी, जूठे एवं गंदे भोज्य पदार्थ, 2. कटु अम्ल एवं नमकीन, 3. बार-बार गर्म किया गया भोजन, 4. कठिन भोजन जैसे कटहल, 5. बहुत अधिक गर्म अथवा बहुत अधिक ठंडा भोजन।

पाठको उपरोक्त पथ्य व अपथ्य के विवेचन से स्पष्ट है कि स्वास्थ्य की अगर रक्षा करनी है तो साधक को हमेशा पथ्य भोजन ग्रहण करना चाहिए तभी स्वास्थ्य रक्षण सम्भव होगा।

## 13.6 स्वस्थ्यवृत्त का प्रयोजन एवं उददेश्य

जिज्ञासु पाठकों स्वास्थ को आप अभी तक जान गये होगे स्वस्थ रहने के लिए आयुर्वेद मे स्वस्थ्वृत्त की चर्चा की गई है स्वस्थ्वृत्त शब्द पर अगर दृष्टिपात करे स्वस्थ्य से सम्बन्ध स्वस्थ्य प्राणी से है अर्थात जो निरोगी है या यू कहे कि जिसका शरीर इन्द्रिय मन और आत्मा चारो प्रसन्न हो तथा वृत्त से आशय एक जीवनशैली तथा आचरण विशेष से है जो उस स्वस्थ्य पुरूष द्धारा अपनाया जाता है कहा गया है

उत्थायोत्याय सततं स्वस्थेनारोग्यॅ मिच्छता।

धीमता यदनुष्ठेयं तदस्मिन् सम्प्रवक्ष्यते।।

अर्थात स्वास्थ्य के परिरक्षण हेतु स्वस्थ्य पुरूष को नित्य सोकर उठने के बाद जो कर्म करना चाहिये उसे स्वस्थ्यवृत्त कहते है। स्वास्थ्यवृत्त के अर्थ को स्पष्ट कर अब स्वस्थ्यवृत्त के प्रयोजन अर्थात उद्देश्य का सम्यक अध्ययन करेंगे मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिए स्वस्थ्यवृत्त के नियमो का पालन करना आनावश्यक है स्वस्थ्यवृत्त के प्रयोजन को समझाते हुए कहता है। -

प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षण मातुरस्य विकारप्रस्मनं च0।।''

(च0सू0 30/26)

अर्थात आयुर्वेद का प्रयोजन है स्वस्थ्य व्यक्ति क्रे स्वास्थ्य की रक्षा करना तथा तथा आतुर अर्थात रोगी के विकारो का प्रशमन (नाश) करना। संक्षेप मे हम कह सकते है आयुर्वेद का मुख्य उद्ददेष्य है स्वस्थ्य के स्वास्थय की रक्षा करना और अस्वस्थ व्यक्ति के रोगो को दूर करना अस्वस्थ व्यक्ति वास्तव में इस संसार के साथ -साथ परलोक में उपलब्ध पुरूशेचित भोगो की प्राप्ति नही कर पाता है इसलिए आरोग्य को पुरूषार्थ चतुष्टय का मूल तथा तीन प्रमुख एशणाओ की पूर्ति का माध्यम माना गया है

शरीर और जीवात्मा के संयोग का नाम जीवन है तथा उस जीवन की उपस्थिति ही आयुष्य है। आरोग्य के लिए आयुर्वेद के उपदेशों को विधिपूर्वक निवार्ह करना मनुष्य मात्रा का आदि कर्तव्य है। आरोग्य के बिना पुरूषार्थ चतुष्य की प्राप्ति ही नही हो सकती।

चरक सहिंता मे कहा गया हैं -

धर्मार्थकाममोक्षणामारोग्य मूलमुत्तमम्।

अर्थात धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये हमारे जीवन के चार पुरूषार्थ है जिनकी प्राप्ति आवश्यक बतायी गयी है और इन्हें प्राप्त करने के लिए हमारा स्वस्थ रहना जरूरी है और स्वस्थ रहने के लिए स्वस्थवृत्त का पालन जरूरी है।

इन चारो पुरूषार्थो को प्राप्त करने में उत्तम स्वास्थ ही सहायक है और स्वस्थवृत्त के बिना सबका स्वस्थ रहना कठिन है इसलिए हमारे महर्षियो ने स्वस्थवृत्त का निर्धारण किया है।

**स्वस्थ्यवृत्त**

स्वास्थय के परिक्षण हेतु स्वस्थ पुरूष द्धारा अपनायी जाने वाली जीवनशैली – प्रयोजन, स्वास्थ्य परिरक्षण, विकार प्रशमन हैं।

**अभ्यासार्थ प्रश्न -**

**1- एक पंक्ति मे उत्तर दीजिए।**

(क) स्वस्थयवृत्त से क्या आशय है।

(ख) स्वस्थयवृत्त का प्रयोजन बताइयें।

(ग) मानव जीवन के चार पुरूषार्थ बताइयें।

(घ) धर्मार्थकाममोक्षणामारोग्ये मूलमुत्तमम्। यह श्लोक किस ग्रन्थ से लिया है।

(ड) मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिए किसका पालन जरूरी है

## 11.7 -सारांश

स्वस्थवृत्त आयुर्वेद का सबसे महत्वपूर्ण अंग है मानव शरीर धारी के लिए आरोग्य सबसे प्रथम अनिवार्य आकाक्षां है। आरोग्यता ही मनुष्य जीवन की सार्थकता व पूर्णता बतलाती है। एक स्वस्थ व्यक्ति ही जीवन मे हर कार्य कर सकता है स्वस्थ रहकर मनुष्य अपने लैकिक और पारलौकिक कर्तव्य पूरा करने मे समर्थ होता है। वास्तव मे पूर्ण रूप से आयुष्य की प्राप्ति उसे ही होती है जिसका शरीर रोग रहित है तथा जो अपने कर्तव्यो को पूर्ण करने मे सक्षम व समर्थ हो। मानव जीवन मे चार पुरूषार्थ बताये गये है पाठको भारतीय आध्यात्म मे इन चार पुरूषार्था (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष) की प्राप्ति करना मानव जीवनधारी का प्रथम कर्तव्य है। यह तब सम्भव होगा जब व्यक्ति स्वस्थ रहे स्वस्थ रहने के लिए स्वस्थवृत्त का पालन जरूरी है स्वस्थयवृत्त के दो उद्देश्य है।

1- स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का परिरक्षण

2- रोगी के विकारो का प्रशमन

अतः हम कह सकते है स्वस्थयवृत्त के प्रमुख उद्देश्य सम्पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त करना है आरोग्य के लिए आयुर्वेद के उपदेश को विधिपूर्वक निवार्ह करना मनुष्य का कर्तव्य है।

## 11.8 शब्दावली:-

सत्व -मन

पुरूषार्थ चतुष्टय – धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष

परिरक्षण - वृद्धि करना, संवर्द्धन, तेज करना, रक्षा करना

प्रशमन- नष्ट, नाश, खत्म

स्तंभ – आधार, धरातल

आतुर -रोगी

विधिवत्- नियमपूर्वक

एशणा – इच्छा, चाह, कामना

## 11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10. (क) स्वस्थ्य मनुष्य द्धारा स्वास्थ्य परिरक्षण एवं विकार प्रशमन हेतु अपनायी जाने वाली जीवन शैली।

(ख)- स्वस्थवृत्त के निम्न दो प्रयोजन है।

1- स्वास्थ्य परिरक्षण

2- रोग प्रशमन

## 11.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) सिंह रामहर्ष (2007) स्वस्थयवृत्त विषाल चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान 38 यू0ए0 बंगलो रोड ज्वाहर नगर दिल्ली 10007

(2) सिंह रामहर्ष (2006) योग एंव यौगिक चिकित्सा चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान 38 यू0ए0 बंगले रोड ज्वाहर नगर दिल्ली।

(3) चरक संहिता

(4) सुश्रुत संहिता

## 11.11 निबंधात्मक प्रश्न

1- स्वास्थ्य के अर्थ की स्पष्ट करते हुए स्वस्थ्य पुरूष के लक्षणो का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये।

2- स्वस्थयवृत्त से आप क्या समझते है स्वस्थ्यवृत्त पर विस्तार से प्रकाश डालिये।

# इकाई 12-दिनचर्या, ऋतुचर्या, विरूद्धाहार, आहार, संयोजन एवं मिताहार

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 दिनचर्या

12.3.1 शौच

12.3.2 दन्तधावन

12.3.3 जिह्वानिर्लेखन

12.3.4 -गण्डूषधारण

12.3.5 मुख तथा नेत्र प्रक्षालन

12.3.6 नस्य

12.3.7 धूम्रपान

12.3.8 व्यायाम

12.3.9 क्षौरकर्म एंव अभ्यंग

12.3.10 स्नान

12.3.11 वस्त्र धारण

12.3.12 सन्ध्योपासन

12.4 ऋतुचर्या

12.4.1 हेमन्त ऋतुचर्या

12.4.2 शिशिर ऋतुचर्या

12.4.3 -वसन्त ऋतुचर्या

12.4.4 ग्रीष्म ऋतुचर्या

12.4.5 वर्षा ऋतुचर्या

12.4.6 शरद ऋतुचर्या

12.4.7 ऋतु के अनुकुल भोजन एवं सावधानियॉ

12.5 विरूद्धाहार

12.6 आहार संयोजन

12.7 मिताहार

12.8 सारांश

12.9 शब्दावली

12.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.12 निबंधात्मक प्रश्न

## 12.1 प्रस्तावना

पिछली ईकाई में आपने अध्ययन किया कि स्वास्थ्य क्या है स्वास्थ्य की परिभाषायें व लक्षण क्या है तथा किस उद्देष्य की प्राप्ति के लिये स्वस्थवृत्त का प्रतिपादन आयुर्वेद के ग्रन्थो में किया गया हैं।

आप अभी तक समझ गये होगे कि आयुर्वेद का प्रयोजन स्वास्थ्य परिरक्षण तथा रोगी के विकारों का प्रशमन है अब एक प्रश्न स्वाभाविक ही आपके मानस पटल पर उठ रहा होगा कि ऐसे कौन से ऐसे उपाय है जिनसे स्वास्थ्य की रक्षा होगी। दिनचयर्या, ऋतुचर्या, मिताहार तथा आहार की उपयोगिता तथा विरूद्धाहार को समझकर तथा अपनाकर ही व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा के साथ-साथ विविध विकारो का प्रशमन होगा।

## 12.2 उद्देश्य

प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप

- एक आदर्श दिनचर्या की अवधारणा का अध्ययन करेंगे।
- दिनचर्या के विविध अंगो को समझ सकेंगे
- विविध ऋतुओ के अनुसार किये जाने वाले आहार का विश्लेषण कर सकेंगे।
- विरूद्धाहार तथा आहार संयोजन को जान सकेंगे।
- मिताहार की अवधारणा का अध्ययन करेंगे।

## 12.3 दिनचर्या

दिनचर्या के सन्दर्भ में जिज्ञासु पाठको तथा आम नागरिको के मन में निम्न प्रश्न के उत्तर जानने की इच्छा रहती है

- दिनचर्या क्या है ?
- एक आदर्श दिनचर्या क्या होनी चाहिये ?
- प्राचीन आर्ष ग्रन्थो में दिनचर्या का विवेचन कैसा किया गया है ?

आगामी पृष्ठों का अगर आप भली -भॉति अध्ययन कर लेगे तो निश्चित रूप से उपरोक्त प्रश्नों का आपको उत्तर मिल जायेगा ।

प्रातः काल जागरण के रात्रि तक हम जो अपने दैनिक जीवन के कार्य करते है वह दिनचर्या कहलाती है प्रत्येक मनुष्य को व्रहमुहूर्त में उठकर सर्वप्रथम आत्मबोध की साधना करनी चाहिए जिसमे व्यक्ति परम पिता परमेष्वर को आज के जीवन देने के लिए धन्यवाद कर अपनी दिनचर्या का प्रारम्भ करे।

**12.3.1 शौचः-** आयुर्वेद कहता है कि रात्रि के ग्रहण किये गये अन्न का बिचार करते हुए प्रातः काल उठकर दपर्ण में मुँह देखकर वेग आने पर मलत्याग करना उत्तम है। मलत्याग के समय दिन के समय दिन मे उत्तर की ओर मुँख तथा रात्रि में दक्षिण की ओर मुँख होना चाहिये आयुर्वेद मे यह भी कहा है कि अमेध्य स्थान, मार्ग, राख का ढेर, गोमय, गोस्थान, ग्राम, नगर के निकट, रमणीय स्थान, चैत्य वृक्ष के नीचे स्त्री, पूज्य, गुरू, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, के सम्मुख मलत्याग निषेध हैं ।

**12.3.2 दन्तःधावनः-** उपयुक्त विधि से शौच के बाद आचमन कर दन्त धावन करना चाहिए पाठको वर्तमान मे आप दांतो में पेस्ट ब्रुस करते है। आयुर्वेद में इसे दन्तधावन कहा गया है। इसके लिए 12 अंगुल लम्बी मोटी तथा सीधी सुभूमी मे उत्पन्न हरी लकडी की दतुवन से दन्तधावन करना चाहिये करंज, करवीर, अर्क, मालती, ककुभ, असन तथा इसी प्रकार के अन्य वृक्ष दन्तधावनी बनने योग्य कहे गये हैं सुश्रुरुत ने दन्तधावनी प्रयोग के अतिरिक्त कई प्रकार के दन्तमंजन चूर्ण बनाने का भी उल्लेख किया गया है

कुछ रोगो अवस्था में दन्तधावन अनर्ह माना गया है जो इस प्रकार है

1- गलतालु ओष्ठ जिह्वा रोग।

2- मुखयाक तथा श्वास -काल व हिक्का वमन।

3- दौर्बल्य अजीर्ण, मूर्च्छा, मदपीडित।

4- अर्दित, कर्णश तथा दन्त रोग।

**12.3.3 जिह्वानिर्लेखन:-** दन्तधावन के पश्चात जिह्वानिर्लेखन करना चाहिए। जीभ तथा जीभ के मूल भाग से अगर मलो का निष्कासन कर दिया जाय तो अनेकानेक रोगों से मुक्ति मिलती है।

अब प्रश्न उठता है कि जिह्वानिर्लेखनी कैसी होनी चाहिये जिह्वानिर्लेखनी शौप्य स्वर्ण या काष्ठ की होनी चाहिये तथा यह मलषोधक मृदु तथा 10-12 अंगुल लम्बी होनी चाहिये आयुर्वेद कहता हे जिह्वा के मूल का मल उच्छवास का प्रतिरोधक तथा दौर्गन्ध्यकर होता है अतः जिह्वा निर्लेखन द्धारा इसको दूर करना चाहिये।

**12.3.4 गण्डूषधारण:-** उपयुक्त विधि से जिह्वा निर्लेखन के बाद गण्डुषधारण करना चाहिये। शीताम्बु तथा स्नेह का गण्डूषधारण करना चाहिये इससे मुख बैरस्य दौर्गन्ध्य दूर होता है तथा सुख की प्राप्ति होती हैं

**12.3.5 मुॅख तथा नेत्र प्रक्षालन:-** गण्डुषधारण के पश्चात् मुख तथा नेत्र प्रक्षालन करना चाहिए। स्वस्थ्य पुरूष को क्षीरि वृक्षो के कषाय से अथवा इनके कषाय को दुग्ध में मिश्रित करके या आमलक क्वाथ से मुँख तथा नेत्रो का प्रक्षालन करना चाहिए। ऐसा करने से नीलिका, मुखशोष, पिडका व्यंग तथा रक्त- पित्तकृत रोग शीघ्र दूर हो जाते हैं।मुखॅ तथा नेत्र प्रक्षालन के बाद ऑखो में अज्जन लगाना चाहिये जिससे नेत्रदाह, कण्डू तथा नेत्रमलन दूर हो जाते हैं

**12.3.6 -नस्य:-** आयुर्वेद कहता है प्रतिदिन प्रातः तथा सायं नस्य का प्रयोग करना स्वास्थ्य के लिए हितकर है अपनी अंगुली को स्नेहलिप्त करके नासिका मे स्नेह लगाना चाहिये प्रतिदिन नस्य करने से आरोग्य तथा दृढता की प्राप्ति होती है आयुर्वेद नेद नस्य के निम्न लाभ बताये है।

1- उर्ध्व जत्रुगत, नेत्र ,नासिका, तथा कर्ण आदि के रोगो से मुक्ति मिलती है।

2- बाल सफेद वर्ण के नही होते है

3- बाल शीघ्रता से बढते है तथा गिरते नही हैं।

4- सिर दर्द अर्दित, हनुग्रह, पीनास, सिर:कम्प आदि विकार शान्त हो जाते है

5-कपाल व सिर की सन्धिया स्नायु तथा कण्डराएँ अत्यधिक मजबूत हो जाती है।

6. मुख प्रसन्न स्वर स्निग्ध स्थिर हो जाता है।

7- सभी इन्द्रिया विमल तथा अत्यधिक सबल हो जाती है

8- वृद्धावस्था के लक्षण उत्पन्न नही होते है

**12.3.7 ध्रूमपान:-** पाठको ध्रूमपान शब्द आते ही प्रत्येक व्यक्ति बीडी सिगरेट पीने से लेता है परन्तु ऐसा नही है यहॉ पर ध्रूमपान की चर्चा दिनचर्या के एक अंग मे बताई है विधिपूर्वक ध्रूमपान स्वास्थ्य के लिए हितकर होता है चरक संहिता मे कहा है।

हरेणुकां प्रियगुँ च पृथ्वीकॉ केशरं नखम्।

हीवेरं चन्दनं पत्रं त्वगेलोशीर पद्यकम्।।

ध्यामकं मधुकं मांसी गुग्गुल्वगुरूषर्करम्।

न्यग्राधोदुम्बराश्रत्थप्लक्षलोध्रत्वचः शुभा ।।

वन्यं सर्जरसं मुस्तं षैलेयं कमलोत्पले।

श्रीवेष्टकं शल्लकीं च शुकबर्हमथापि च।।ष्

पिष्टवा लिम्पेच्छरेषीकां तां वर्ति यवसत्रिषाम्

अगुष्ठसम्मितां कुर्यादष्टागुलसभां भिषक्।।

शुष्कां विगर्भा तां वर्ति धूमनोत्रार्पितां नरः।

स्नेहतामग्निसंप्लुष्टां पिबेत्प्रायोगिकी सुखाम्।। च0सू0 5/20-24

यहॉ पर हरणुकादि गन्ध द्रव्यो से निर्मित धूमतर्ति बनाने की विधि तथा धूमनेत्र की सहायता से धूमवर्ति को जलाकर उसके ध्रूमपान की विधि का वर्णन किया है।

कहा है धूमवर्ति निर्माण हेतु हरेणुका पियंगु बडी इलाइची, नागकेषर, नखी, सुगन्धवाला, चन्दन, तेजपत्र, त्वक् छोटी इलाइची, उषीर, पधक, ध्यामक अधुक, जटामानी, गगुगुल, अगुरू, शकर्रा इत्यादि को पीसकर कल्क तैयार करके सरपत की सीक पर यवाकार लेप करके अगुष्ठ के समान मोटी आठ अंगुल लम्बी वर्ति बनाते है। इस वर्ति को स्नेह लिप्त करके धूमनेत्र पर रखकर जलकर धूमपान करते है उक्त विधि से धूमपान करने के निम्न लाभ है

शिर शूल, शिरोगौरव, धर्धावभेदक, कर्णषूल, श्वास कास हिक्का, दन्तदौर्बल्य मुख दौर्गन्ध्य दन्तषूल, अरोचक, हनुग्रह, कृमि मुखपाण्डुता, तन्द्रा, केषपतन, खालित्य, तथा वात कफज रोग ठीक होते है

**12.3.8 व्यायाम:-** शरीर को स्थैर्य तथा बल प्रदान करने वाली विधा व्यायाम कहलाती है चरक सूत्र मे कहा है कि शरीर में श्रम उत्पन्न करने वाले कार्य को व्यायाम कहती है शरीरायासजनकं कर्म व्यायामसंषितम् उचित मात्रा मे किये गये व्यायाम से शरीर मे लघुता, कर्म सामर्थ्य, स्थिरता क्लेष सहिष्णुता दोषक्षय, तथा अग्निवृद्वि होती है।

**12.3.9 क्षौरकर्म तथा अभ्यंग:-** शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य तथा मानवेचित सौन्दर्य के लिए आवश्यक होने से उसका बडा ही महत्व है चरक सहिता मे केश तथा नख कर्तन को पृष्टिकर, वृष्य, आयुश्य, शुचिकर, सौन्दर्यवर्धक कर्म कहा जाता है एक पक्ष मे तीन बार के क्षौरकर्म करना चाहिये अपने हाथ से या दातॅ से बाल व नाखूनों को कभी नही कुतरना चाहिये अभ्यंग भी दिनचर्या का एक अंग है वाग्भट्ट ने तेल के अभ्यंग को जराहर श्रमहर वायु विकार नाशक दृष्टि प्रसादकर आयु: पुष्टिकर निद्राजनन कहा है तथा शिर कर्ण तथा पैरो में विशेष रूप से अभ्यंग का निदेष दिया है चरक सहिंता मे कहा है जिस प्रकार तैल आदि स्नेहाभ्यंग से घडा अथवा स्नेह मर्दन से चर्म अथवा उंपाग से रहिए की घूरी दृढ तथा क्लेश को सहने वाली हो जाती है उसी प्रकार अभ्यंग से मनुष्य का शरीर सुदृढ तथा कोमल त्वचा वाला हो जाता है वात आदि विकार नही होते है और शरीर क्लेष तथा व्यायाम सहने वाला हो जाता है

**12.3.10 स्नान:-** स्नान भी दिनचर्या का एक प्रमुख अंग है स्नान से अतिनिद्रा दाह एवं श्रम का नाश, स्वेद, कण्डू, तृष्णा शामक, मल से निवृत्ति मिलती होती है कहा गया है कि स्नान करने से शरीर सत्य बोलने से मन विधा व तप से आत्मा तथा ज्ञान शुद्ध हो जाते है

मनुस्मृति कहती हैं नदी, देवकुण्ड, ताडाग, झील, तालाब, कूप जल, या झरनो मे नित्य स्नान करना चाहिये। स्नान के उपरान्त शरीर को कपडे से मलकर पोंछकर तुरन्त वस्त्र धारण करना चाहिये

**12.3.11 वस्त्र धारण:-** निर्मल वस्त धारण करना काम्य यश एंव आयुवर्धक, हर्षकारक तथा बडे लोगो के बीच बैठने की योग्यता प्रदान करता है। भाव प्रकाश मे कहा गया है शीत काल मे कौषेय, गर्मी मे काषाय तथा वर्षा ऋतु मे श्वेत धारण करना वाछंनीय है । कभी - भी मलिन वस्त्र धारण नही करना चाहिए क्योकि मलिन वस्त्र कण्डू ,कृमि ,ग्लानि तथा अलक्ष्मीकारक भावो में प्रधान है।

**12.3.12 सन्ध्योपासन एंव योगाभ्यास:-** प्रतिदिन आसन प्राणायाम, सूर्योपासन एंव गायत्री जप तथा अपने ईष्ट की पूजा अर्चना करनी चाहिये प्रातःकाल की संध्या तथा अन्य संध्याओ को यथोचित समय से करते हुए सूर्य के सामने देर तक रूकना चाहिये । दीर्घकाल तक संध्या करने के कारण ही हमारे ऋषि - मुनियो ने दीर्घायु बुद्धि, यश, कीर्ति प्राप्त की थी।

## 12.4 ऋतुचर्या

प्रिय पाठकों दिनचर्या के बारे में जानने के बाद आप ऋतुचर्या के विषय में

- जानने के लिये उत्सुक हो रहे होगे कि ये ऋतुचर्या क्या हैं? वस्तुतः आयुर्वेद में जो छः ऋतुओ शिविर, बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद और हेमन्त बतायी गई हैं इन ऋतुओ के अनुसार हमारा विहार केसा हो अर्थात हमें क्या खाना चाहिये किस ऋतु में किस प्रकार के जल का उपयोग करना चाहिये इत्यादि इन सभी बातों का ऋतुचर्या के अन्तगर्त पालन किया जा सकता हैं आगे के पृष्टो में जो वर्णित किया गया हैं उनकें आधार पर आप ऋतुचर्या के विषय में प्रर्याप्त जानकारी प्राप्त कर सकोगे।

- हमारे यहाँ भारतीय संस्कृति (विक्रमी संवत) के अनुसार छः ऋतुओं की चर्चा की गई है। आयुर्वेद के अनुसार - ऋतु प्रभाव के कारण मानव शरीर में स्वतः ही दोशों का संचय, प्रकोप व शमन होती है। अतः ऋतुचर्या का पालन न करने दोष असमय ही प्रकुपित होकर नानाविध रोग उत्पन्न करते हैं, अतः ऋतुचर्या का पालन के अनुसार छःऋतुएँ निम्न है-

  - हेमन्त ऋतु:- 16 नवम्बर से 15 जनवरी ( मार्गशीर्ष-पौष) तक के समय को हेमन्त ऋतु के नाम से जाना जाता है।

  - शिशिर ऋतु:- 16 जनवरी से 15 मार्च (माघ-फाल्गुन) तक के समय को शिशिर ऋतु कहते है।

  - वसन्त ऋतु:- 16 मार्च से 15 मई (चैत्र-वैशाख) तक के समय को वसन्त ऋतु कहते है।

  - ग्रीष्म ऋतु:- 16 मई से 15 जुलाई (ज्येष्ठ-आषाढ) तक के समय को ग्रीष्म ऋतु कहते हैं।

  - वर्षा ऋतु:- 16 जुलाई से 15 सितम्बर (श्रावण-भाद्रपद) तक के समय को वर्षा ऋतु कहते हैं।

  - शरद् ऋतु:- 16 सेप्तेम्बर से 15 नवम्बर (आश्विन-कार्तिक) तक के समय को शरद् ऋतु कहते है। विविध ऋतुओं की विवेचना इस प्रकार है-

**12.4.1 हेमन्त ऋतुचर्या -** हेमन्त शीत ऋतु में जठराग्नि के बलवान् होने से हेतु- हेमन्त ऋतु में शीतलता अधिक रहती है। अतः शीतल वायु के स्पर्श से आभ्यान्तर अग्नि के रुक जाने के कारण बलवान् पुरुषों के शरीर में जठराग्नि बलवान् होकर मात्रा और द्रव्य में तेज आहार को पचाने में समर्थ रहती है।

**हेमन्त ऋतु में वायु प्रकोप:-** अग्नि के प्रबल होने पर जब उसके बल के अनुसार ईधन गुस आहारद्ध नहीं मिलता तब अग्नि शरीर में उत्पन्न प्रथम धातु (रस) को जला डालती है। अतः वायु का प्रकोप हो जाता है।

**हेमन्त ऋतु में आहार:-** हेमन्त ऋतु में अग्नि की प्रबलता रहती है। अतः स्निग्घ पदार्थ, अम्ल रस, लवण रस, अति मेदस्वी वस्तु का सेवन करना चाहिए। हेमन्त ऋतु में दूध के पदार्थ (दही, मलाई, रबड़ी छेना आदि) ईख के पदार्थ (गुड़, राव, चीनी, मिश्री, आदि) वसा, तेल, नये चावलों का भात और गरम जल का सेवन करने से आयु की हानि रोगोत्पत्ति नहीं होती।

**हेमन्त ऋतु में विहार:-** तेल का अभ्यंग, उबटन, सिर पर तेल लगाना, धूप सेवन, उष्ण भूमि पर रहना तथा उष्ण गर्भगृह में रहना, वाहन, शयन और आसन को कपड़े आदि से ढक कर रखना, शरीर पर भारी और गरम वस्त्र धारण करना, अगर का शरीर पर गाढा लेप करना- ये सब शीत ऋतु में हितकारक विहार है।

हेमन्त ऋतु में वर्जनीय आहार - विहार:- शीतकाल आ जाने पर वातवक एवं लघु अन्नपान, प्रवात तीव्र वायु प्रमिताहार थोड़ा नपा-तुला भोजन और जल के धुले सत्तु का सेवन नहीं करना चाहिए।

**12.4.2 शिशिर ऋतुचर्या** - शिशिर ऋतुचर्या का सामान्य रुप से हेमन्त और शिशिर दोनों ऋतुएँ यद्यपि समान होती हैं, किन्तु शिशिर में कुछ विशेषताएँ होती है। - शिशिर ऋतु में रुक्षता आ जाती है तथा मेघा, वायु, वर्षा के कारण विशेष शीत पड़ने लगती है। विशेष रुप से तीव्र वायुरहित तथा उष्ण गृह में निवास करना चाहिए।

शिशिर ऋतु में वर्ज्य आहार:- शिशिर ऋतु में कटु-तिक्त कषाय रस तथा वातवर्धक, हल्के और शीतल अन्न पान का त्याग कर देना चाहिए।

**12.4.3 वसन्त ऋतुचर्या:-** हेमन्त ऋतु में संचित कफ वसन्त ऋतु में सूर्य की किरणों से द्रवीभूत होकर जठराग्नि को मन्द कर देता है, अतः अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

चिकित्सा:- संचित कफ को दूर करने के लिए वसन्त ऋतु में वमन आदि पंचकर्म कराने चाहिए।

वसन्त ऋतु में त्याज्य आहार-विहार:- वसन्त ऋतु में गरम, अम्ल स्निग्ध और मधुर और मधुर आहार तथा दिन में शयन नहीं करना चाहिए।

**वसन्त ऋतु में सेवनीय आहार-विहार:-** वसन्त ऋतु में व्यायाम, उबटन, धूम्रपान, अंजन तथा मल-मूत्र के बाद गुनगुने जल का प्रयोग, मिले हुए चंदन और अगर का शरीर पर लेप, जौ, गेहूँ का भोजन, निर्गद दोष रहित मधु निर्मित मद्य का पान तथा उपवनों के यौवन का अनुभव करना चाहिए।

**12.4.4 ग्रीष्म ऋतुचर्या** - ग्रीष्म ऋतु में सूर्य अपनी किरणों द्वारा संसार के स्नेह सोख लेता है। अतः इस काल में मधुर रस तथा शीत वीर्य देने वाले द्रव्य, द्रव तथा स्निग्ध अन्न, चीनी के साथ शीतल मन्थ, घी, दुग्ध चावल इनका सेवन करना चाहिए, जिससे बल का नाश नहीं होने पाता।

ग्रीष्म ऋतु में वर्ज्य आहार-विहार:- लवण, अम्ल, कटु रस वाले और उष्ण वीर्य द्रव्यों का सेवन तथा व्यायाम नहीं करना चाहिए।

ग्रीष्म ऋतु में विहार:- गीष्म ऋतु में दिन के समय शीतलन कमरे में तथा रात्रि के समय चाँदनी से शीतल हुए हवादार छत पर शरीर में चंदन का लेप लगाकर सोना चाहिए। -मोती-मणि आदि से देह अलंकृत करके चंदन मिले जल से ठण्डे किये हुए पंखों की हवा और कोमल हाथों का स्पर्श प्राप्त करते हुए आसन पर बैठना चाहिए तथा शीतल उद्यान, शीतल जल और शीतल पुष्पों का सेवन करना चाहिए।

**12.4.5 वर्षा ऋतुचर्या -** वर्षा ऋतु आदान काल में मनुष्यों का शरीर अत्यन्त दुर्बल रहता है। दुर्बल शरीर में एक तो जठराग्नि दुर्बल रहती है, और दूसरा वर्षा ऋतु आ जाने पर दूषित वातादि दोषों से दुष्ट जठराग्नि और दुर्बल हो जाती है।

इस ऋतु में भूमि से वाष्प भाप निकलने, आकाश से जल बरसने तथा जल का अम्ल विपाक होने के कारण जब अग्नि का बल अत्यन्त क्षीण हो जाता है, तब वातादि दोष कुपित हो जाते हैं।

**वर्षा ऋतु में सेवनीय आहार-विहार:-**

- वर्षा ऋतु में खाने-पीने की सभी चीजें बनाते समय उसमें मधु अवश्य मिला देना चाहिए।
- वात और वर्षा से भरे उन विशेष शीतकाल दिनों में अम्ल तथा लवण रस वाले और स्नेह द्रव्यों (घृतादि) की प्रधानता भोजन में रहनी चाहिए।
- जठराग्नि की रक्षा चाहने वाले पुरुषों को जौ, गेहूँ और चावल का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।
- शाकाहारी व्यक्तियों को सुसंस्कारी मूँग के जूस के साथ भोजन लेना चाहिए।
- इस ऋतु में मधु मिलाकर अरिष्ठ एवं जल का सेवन करना चाहिए।
- वर्षा ऋतु में जल, गरम करके शीतल किया हुआ जल,जो कूप या सरोवर का हो पीना चाहिए।
- देह का घर्षण, उबटन, स्नान, गन्ध का प्रयोग और सुगन्धित पुष्प मालाओं का धारण करना हितकर है।
- हल्के और पवित्र वस्त्र धारण करना और क्लेदरहित सूखे स्थान प रहना चाहिए।

**वर्षा ऋतु में वर्ज्य आहार** - विहार:- वर्षा ऋतु में जल में घुला सत्तु, दिन में सोना, ओस गिरते समय उसमें बैठना या घूमना, नदी का जल, व्यायाम, धूप में बैठना और मैथुन छोड़ देना चाहिए।

**12.4.6 शरद् ऋतुचर्या -** वर्षा काल में जिनको शीत साल्य हो गया रहता है, ऐसे लोगों कें अंग सहसा सूर्य की प्रखर किरणों से तप्त हो जाते हैं, फलतः वर्षा ऋतु में संचित हुआ पित्त शरद् ऋतु में प्रकुपित हो जाता है।

शरद् ऋतु में सेवनीय आहार-विहार:- अच्छी भूख लगने पर रस में मधुर, गुण में लघु वीर्य में शीतल, कुछ तिक्त, रसयुक्त एवं पित्त को शांत करने वाले अन्नपान का मात्रापूर्वक सेवन करना चाहिए।

सामान्यतः सभी को चावल गेहूँ का सेवन करना चाहिए और कुष्ठाधिकार में बताए हुए तिक्त घृत का पान, विरेचन और रक्तमोक्षण क्रिया करनी चाहिए।

शरद ऋतु में त्याज्य आहार बिहार:- शरद ऋतु में धूप का सेवन, वसा (चर्बी) तेल, ओस, मछली, आदि क्षार, दही का सेवन और दिन का शयन, एवं पूर्वी वायु का सेवन नहीं करना चाहिए।

दिन मे सूर्य किरणों से गरम, रात्रि में चंद्रमा की किरणों से उत्तम, रात्रि में चंद्रमा की किरणों से शीतल, काल स्वभाव से पके हुए, अतः निर्दोष और अगस्त्य तारा के उदय होने के प्रभाव से विष रहित हुआ जल 'हंसोदक' कहा जाता है। यह हंसोदक शरद् ऋतु में विमल और पवित्र स्नान, पान तथा अमृत के समान फल देने वाला होता है।

शरद् ऋतु में अनुकूल विहार:- इस ऋतु में उत्पन्न फूलों की माला स्वच्छ वस्त्र और प्रदोष काल में चंद्रमा की किरणों का सेवन हितकर बताया गया है।

संधिकाल:- एक ऋतु के प्रारम्भिक सप्ताह और दूसरे ऋतु के अंतिम सप्ताह को ऋतु संधि या ऋतु संधिकाल कहते हैं।

एक ऋतु के अंत के सात दिन और दूसरी ऋतु के आदि के सात दिन, इन 14 दिनों में क्रमशः शनैः-शनैः सेवन करना चाहिए। अन्यथा (सहसा नियमों का त्याग और परिशीलन करने से) असाध्य रोग उत्पन्न हो जाते है।

ऋतुचर्या का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:-

**हेमन्त ऋतुचर्या:- 16 नवम्बर से 15 जनवरी**

- शारीरिक बल श्रेष्ठ रहता है।
- जठराग्नि अत्यन्त तीव्र रहती है।
- द्रव्यों का पाचन सरलता से होता है।
- अनुपाद रुप में मधु का पान करना चाहिए।
- हेमन्त ऋतु में गोरस, ईख के रस से बनी वस्तुएँ वसा, तेल, नवोदन तथा उष्ण जल सेवन आयुवर्धक है।
- शिर में तेल लगाना, आतप सेवन, भूमिगृह में निवास करना चाहिए।
- हेमन्त में शरीर पर अगरु का गाढा लेप करना चाहिए।
- गरम वस्त्रों को धारण करना चाहिए।
- हेमन्त में बातज तथा लघु पदार्थ (अन्नपान) का त्याग करें।
- थोड़ा आहार, वायु का अधिक सेवन तथा सत्तु का प्रयोग निषिद्ध है।

**शिशिर ऋतुचर्या:- 16 जनवरी से 15 मार्च**

- हेमन्तशिशिर तुल्यों के अनुसार हेमन्त और शिशिर ऋतुचर्या में समानता है। इस कारण हेमन्त ऋतुचर्या का ही सेवन शिशिर में भी होता है।
- शिशिर में जन्म रुक्षता, मेस, मारुत तथा वर्षाजन्य शीत अधिक बढ जाती है। इसमे हेमन्त से यही विशेषता है।
- शिशिर में वातरहित अत्यन्त उष्णगृह में निवास करना चाहिए।
- शिशिर में कुटतिक, कषायु, वातल तथा शीतल अन्नपान का सेवन निषिद्ध है।

**वसन्त ऋतुचर्या 16 मार्च से 15 मई**

- शारीरिक बल मध्यम रहता है।
- हेमन्त मं संचित कफ सूर्य की तीव्र रश्मियों द्वारा प्रकुपित होकर शरीर को गंदा कर देता है।

- इस कारण वसन्त में शोधनार्थ वमनादि पंचकर्म करना चाहिए।
- वसन्त में व्यायाम, उबटन, अंजन तथा शीतल जल से स्नान आदि करना चाहिए।
- शरीर में चन्दन, अगरु आदि का लेप करना चाहिए।
- ज्यादा से ज्यादा गेहूँ का भोजन करें।
- मर्यादित रतिक्रिया ही करनी चाहिए।
- वसन्त में वनों के पुष्प विकास का सेवन करना चाहिए।
- वसन्त में गरु, अम्ल, स्निग्ध, मधुर, अनत-पान तथा दिवास्वप्न निषिद्ध है।

**ग्रीष्म ऋतुचर्या 16 मई से 15 जुलाई**

- शारीरिक बल दुर्बल होता है।
- ग्रीष्म में सूर्य अपनी तीव्र किरणों द्वारा जगत के स्नेह को खींच लेता है। अतः तीव्र रुक्षता रहती है।
- ग्रीष्म में मधुर, शीतद्रव्य तथा अन्न पान हितकर है।
- ग्रीष्म में शर्करा युक्त शीतल सत्तु का सेवन करना चाहिए।
- घृत तथा दूध से युक्त पदार्थ, चावल का सेवन करन चाहिए।
- दिन में शीतल ग्रह मे सोना चाहिए।
- रात्रि मे शरीर पर चंदन का लेप करके खुले हवादार शीतल छत पर शयन करना चाहिए।
- ग्रीष्म मे अम्ल, लवण, कटु, अन्नपान, व्यायाम तथा मैथुन निषिद्ध है।

**वर्षा ऋतुचर्या 16 जुलाई से 15 सितम्बर**

- शारीरिक बल दुर्बल होता है।
- आदान काल से दुर्बल हुए शरीर मे जठराग्नि दुर्बल रहती है। वायु के कारण भी जठराग्नि अत्यधिक दुर्बल हो जाती है।
- वर्षा ऋतु मे पृथ्वी से निकलने वाली वाल्य से, मेघों के बरसने से, जल के अम्ल विपाक हो जाने से तथा अग्निबल के क्षीण हो जाने से वातादि दोष कुपित हो जाते है।
- वर्षा में वायु की शान्ति के लिए अम्ल, लवण, स्नेह का सेवन लाभकारी है।
- मधु का सेवन अत्यन्त लाभकारी है।
- स्वच्छ, हल्का वस्त्र पहने, उबटन, गन्ध तथा माला का सेवन करना चहिए।

**शरद ऋतुचर्या 16 सितम्बर से 15 नवम्बर**

- शरद ऋतु में सूर्य की किरणों द्वारा प्रदत्त पित्त सहसा कुपित हो जाता है।

- शरद में मधुर, लघु, शीत, तिक्त, पित्तनाशक अन्न पान मात्रानुसार हितकर है।
- शरद में तिक्त द्रव्यों से सिद्ध किए हुए घृत का पान विरेचन, रक्त मोक्षण तथा आतप सेवनीय है।
- शरीर में वसा, तेल, ओस, औरक मांस, आनूप मांस, तथा क्षार, दधि, दिवास्वप्न तथा वर्जनीय है।

| ऋतु | हिन्दी महीने |
|---|---|
| शिशिर | माह फाल्गुन |
| बसन्त | चैत वैशाख |
| ग्रीष्म | ज्येष्ठ, आषाढ |
| वर्षा | श्रावण, भादप्रद |
| शरद | कार्तिक |
| हेमन्त | अहगन, पौष |

## 12.5 विरुद्वाहार

देह की धातुओं के विपरीत गुण वाले द्रव्य शरीर की धातुओं के विरुद्ध हो जाते हैं। इन द्रव्यों में कुछ द्रव्य परस्पर गुण विरुद्व कुछ द्रव्य संयोग विरुद्व, संस्कार विरुद्व कुछ द्रव्य देश, काल, मात्रा आदि से विरुद्व और कुछ द्रव्य स्वभाव से विरुद्व होते हैं। जैसे-

गुण विरुद्ध- मधुर मछली और मधुर दूध ये दोनों मधुर होने से कफ की वृद्धि करने वाले होते हैं।

संयोग विरुद्ध - गुड़ से मकोय, गुड़ व मधु से मूली का प्रयोग।

संस्कार विरुद्ध- एरण्ड की लकड़ी की अग्नि से या एरण्ड तैल से बने हुए लवा या दस रात्रि तक कांसे के पात्र में रखे हुए घृत का सेवन।

देश विरुद्ध – दूसरे देश में स्निग्ध, शीत, औषध या अन्न का प्रयोग।

काल विरुद्ध- शीतकाल में शीत और रुक्ष वस्तुओं का सेवन या रात्रि में सत्तू का सेवन।

मात्रा विरुद्ध - जैसे सम मात्रा में मधु और जल, मधु और घृत का प्रयोग।

स्वभाव विरुद्ध - शमीधान्यों में उड़द, शाकों में ससर्प – शाक, दुग्धों में भेड़ का दूध आदि।

## 12.6 आहार-संयोजन

आहार हमारे शरीर के लिए उतना ही आवश्यक है जितना मोटर के लिए पेट्रोल-डीजल। मोटर में अशुद्व, मिलावटी पेट्रोल देने से गाड़ी जल्दी ही खराब हो जाती है, ठीक उसी प्रकार अशुद्ध आहार शरीर रूपी गाड़ी को अस्वस्थ कर देता है, जिससे जीवन यात्रा, हमारी दिनचर्या स्वाभाविक रूप से नहीं चल पाती। अतः योगी को आहार के प्रति जागरूक होना चाहिए। भोजन जितना पवित्र और सात्विक होगा साधक उतना ही निरोग और शांति-आनंद का अनुभव करेंगे। भोजन जितना तामसिक होगा साधक उतना ही निर्बल और अशांत रहेंगे।

आयुर्वेद के अनुसार - शरीर का हम पोषण करते हैं तो शरीर हमारा पोषण करता है। हमारे द्वारा खाए गए पदार्थ शरीर में पचकर शरीर के अन्य भागों में पहुँचता है। अतः योग साधक को सात्विक आहार लेना चाहिए। कहा गया है- जैसा खाए अन्न, वैसा बने मन।

गीता के अनुसार जो व्यक्ति शरीर के साथ विचारणा, भावना को शुद्व पवित्र एवं निर्मल रखना चाहता है उसे राजसी एवं तामसी आहार त्याग करके सात्विक आहार लेना चाहिए।

आहार की शुद्व होने से अंतःकरण की शुद्धि होती है। अंतःकरण की शुद्धि होने से बुद्धि निश्चल होती है और बुद्धि के निर्भय होने से सभी प्रकार के संशय और भ्रम जाते रहते हैं, तब मुक्ति का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

## 12.7 मिताहार

यौगिक साहित्यों में मिताहार का अर्थ आहार वह है जिसे योगी योग साधना के दौरान ग्रहण करते हैं। इसे ही मिताहार भी कहते हैं। गीता में शंकराचार्य ने कहा है - आहृयते इति आहारः। जो इंद्रियों द्वारा ग्रहण किया जाता है, वह आहार है। मिताहार दो शब्दों से मिलकर बना है- मित और आहार। मित का अर्थ है- संतुलित एवं आहार का अर्थ है- ग्रहण करना।

अर्थात् आहार को संतुलित मात्रा में ग्रहण करना जिससे हमारा शरीर, मन एवं अंतःकरण पोषित हो सके। यह न तो अधिक मात्रा में लेना चाहिए और न ही बहुत कम मात्रा में।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि योग साधना के अनुरूप शरीर को स्वस्थ और सुंदर बनाए रखने के लिए जो संतुलित आहार ग्रहण किया जाता है, उसे मिताहार कहते हैं।

यौगिक साहित्यों में मिताहार को तीन भागों में बाँटा गया है-

1. भोजन की मात्रा, 2. भोजन की गुणवत्ता, 3. विशिष्ट मनः स्थिति।

1. भोजन की मात्रा- हमें कितना भोजन करना चाहिए। यह व्यक्ति की पाचन शक्ति पर निर्भर करता है कि भोजन की मात्रा कितनी होनी चाहिए।

चरणदास के अष्टांग योग के अनुसार- ''प्रत्येक व्यक्तियों में प्रकृति-प्राप्त कुछ ऐसे गुण दिए गए हैं जिसके द्वारा यह जाना जा सकता है कि उसे कम खाया या ज्यादा अर्थात् व्यक्ति अपनी तृप्तता का एहसास कर सकता है। मिताहार के अभ्यास के द्वारा ही इसी प्रकृति प्रदत्त गुणों को विकसित करना तथा इसका प्रयोग करना जिसके द्वारा व्यक्ति यह जान सके कि उसने कितना खाया। ''यौगिक ग्रंथों में आहार की मात्रा के बारे में बताया गया है।

वशिष्ठ संहिता तथा अष्टांग योग के अनुसार – '' ग्रास की संख्या व्यक्ति के आश्रम के आधार पर निर्धारित की गई है। चार आश्रम ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास।''

दर्शनोपनिषद् के अनुसार – ''भाग्य में रखे गए भोजन के एक चौथाई भाग छोड़कर भोजन ग्रहण करना चाहिए।''

हठप्रदीपिका 1/58 के अनुसार, स्निग्ध (चिकनाई युक्त) तथा मधुर भोजन भगवान को अर्पित कर अपने पूर्ण आहार का चतुर्थांश कम खाया जाए, उसे मिताहार कहते हैं।

2. घेरण्ड संहिता 5/21,22 के अनुसार – स्वच्छ, सुमधुर, स्निग्ध और सुरस द्रव्य से संतोषपूर्वक भगवान को अर्पित कर आधा पेट भरना और आधा पेट खाली रखना चाहिए। विद्वानों ने इसे मिताहार कहा है।

**अभ्यास प्रश्न-**

**1. एक पक्तिं मे उत्तर दीजिए**

(क) दिनचर्या से आप क्या समझते है ?

(ख) आत्मबोध की साधना किस समय की जाती है ?

(ग) शौच के उपरान्त क्या करना चाहिये ?

(घ) व्यायाम किसे कहते है ?

**2. सत्य अस्तय बताइये**

(क) ऋतुओ की सख्यां छः है।

(ख) ज्येष्ठ व आषाढ मे वर्षा ऋतु होती है।

(ग) हेमन्त ऋतु में अग्नि की प्रबलता रहती है।

(घ) बसन्त ऋतु मे गरक अम्ल, स्निग्ध तथा दिन मे शयन नही करना चाहिये।

## 12.11 सारांश

दिनचर्या, ऋतुचर्या, स्वस्थ्यवृत्त के प्रमुख अंग है। एक आदर्श दिनचर्या तथा तथा ऋतु के अनुकूल भोजन कर व्यक्ति समग्र रूप से स्वस्थ्य रह सकता है। वास्तव मे मिताहार के पालन से साधक का शरीर, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक विकास होता है। हमारे प्राचिनतम ग्रन्थों में (मुख्य रूप से आयुर्वेद में) प्रारम्भ मे ही दिनचर्या पर विशेष बल दिया है। अगर व्यक्ति की दिनचर्या अस्त व्यस्त है उसके आहार मे गरिष्ठ तामसिक तथा डिब्बा बन्द भोजन है जिसके कारण व नाना प्रकार के शारीरिक व मानसिक रोगो से पीडित है। आयुर्वेद की इस प्राचीनतम विधा को अपनाकर ही व्यक्ति निरोगी तथा सुखी रह सकता है।

## 12.9 शब्दावली

मिताहार -मीठा (मधुर) आहार

कर्ण शूल - कान दर्द

गण्डूषधारण - कुल्ला करना

कषाय -कडवा

मुखशोष – मुँह के छाले

प्रक्षालन -सफाई करना, धोना

शुचि - पवित्र

तिक्त - कडवा

मधु – शहद

काषाय – काला

## 12.10 अभ्यास –प्रश्नों के उत्तर

(क) प्रतिदिन किया जाने वाला सदाचरण दिनचर्या है

(ख) प्रातः जागरण के साथ

(ग) आचमन

(घ) शरीर मे श्रम उत्पन्न करने वाला कार्य व्यायाम है

2.

(क) सत्य

(ख) असत्य

(ग) सत्य

(घ) सत्य

## 12.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1- सिंह रामहर्ष (**2007**) स्वस्थवृत्त विज्ञान, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।

2. पाण्डे गंगा सहाय (2002) चरक संहिता अंक 1 और 2 चौखम्भा संस्कृत भवन वाराणसी

3. शास्त्री अम्बिका दत्त् (2002) सुश्रुत संहिता अंक 1 और 2 चौखम्भा संस्कृत भवन वाराणसी

## 12.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. दिनचर्या से आप क्या समझते हैं एक आर्दश दिनचर्या से का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।

2. ऋतुचर्या की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए ऋतु के अनुकूल भोजन बताइए।

3. मिताहार से आप क्या समझते हैं विरूद्धहार तथा आहार संयोजन की व्याख्या कीजिए।

# इकाई १३ प्राण उर्जा, प्रतिरोधक क्षमता, प्राण उर्जा एवं प्रतिरोधक क्षमता का सम्बन्ध, प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के उपाय।


१३.१ प्रस्तावना

१३.२ उद्देश्य

१३.३ प्राण उर्जा

१३.४ प्रतिरोधक क्षमता

१३.५ प्राण उर्जा एवं प्रतिरोधक क्षमता का सम्बन्ध

१३.६ प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के उपाय

१३.७ सारांश

१३.८ शब्दावली

१३.९ अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१३.१० सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१३.११ निबंधात्मक प्रश्न


## १३.१ प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों हम सभी प्राय: इस सत्य से परीचित हैं कि इस सम्पूर्ण विश्व ब्रहमांड की नियंत्रक कोई अदृश्य शक्ति है। जो इसकी गति विधियों के संचालन के साथ- साथ इसका नियंत्रण भी करती है। ब्रहमांड की भांति ही प्राणी के जीवन का संचालन भी एक सूक्ष्म शक्ति के द्वारा ही होता है जिसे जीवनी शक्ति या प्राणउर्जा कहा जाता है। प्राण से ही 'प्राणी' शब्द बना है अर्थात् जो प्राणयुक्त होता है उसको ही प्राणी की संज्ञा दी जाती है। जीवन की गाड़ी का संचालन प्राण द्वारा ही होता है। प्राण निकल जाने पर जीव की मृत्यु हो जाती है और प्राय: यह कहा जाता है कि मनुष्य व्यक्ति ने प्राण त्याग दिये है। अत: यह स्पष्ट है कि जीवित रहने के लिए हमें पर्याप्त प्राण उर्जा की आवश्यकता होती है।

अब आप सोच रहे होगें कि इस प्राण उर्जा क्या है ? यह किस प्रकार से प्राप्त होती है अर्थात् इसके स्त्रोत क्या हैं क्या प्राण भिन्न – भिन्न प्रकार का होता है प्राण के कार्य क्या – क्या हैं

प्राण उर्जा से व्यक्ति में किन किन शक्तियों का विकासहोता है और यह विकास किस प्रकार से होता है प्रस्तुत इकाई में इन्हीं सभी विषयों की चर्चा की जायेगी। आशा है कि आप इस विषय को रूचि के साथ सुगमतापूर्वक ग्रहण कर पाऐगें।

## १३.२ उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप –

- प्राण उर्जा के सम्बन्ध को स्पष्ट कर सकेंगे।
- प्रतिरोधक क्षमता क्या है इसे स्पष्ट कर सकेंगे।
- प्राणउर्जा एवं प्रतिरोधक क्षमता के आपसी सम्बन्धों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- प्राण उर्जा एवं प्रतिरोध क्षमता को बढ़ाने के विभिन्न उपायों का अध्ययन कर सकेंगे।
- जीवनी शक्ति के महत्व को भी स्पष्ट कर सकेंगे।
- प्रतिरोध क्षमता से शरीर किस प्रकार स्वस्थ्य रहता है इसे स्पष्ट कर सकेंगे।

## १३.३ प्राण उर्जा

प्राण वायु का शुद्ध व सात्विक अंश है। सम्पूर्ण आकाश मंडल प्राण की शक्ति से परिपूर्ण है तथा सम्पूर्ण जीव जगत प्राण पर निर्भर है। विश्व का हर पदार्थ प्राण उर्जा का संगठित रूप है। प्राण के दो रूप देखेने में आते हैं। प्राण का एक रूप वह है अभिव्यक्त रूप से आकाश मंडल में छाया है तथा दूसरा रूप वह है जो उर्जा के सभी संभावित रूपों में अभिव्यक्त हुआ है जिसमें गुरूत्वाकर्षण शक्ति, विद्युत शक्ति चुम्बकीय शक्ति आती है। सभी प्रकार की शक्तियों प्राण की वायु हमारे आंतरिक प्राण का स्त्रोत है तथा सम्पूर्ण लोक सूक्ष्म उर्जा से उर्जावान है। आधुनिक युग में जो महत्व प्राणमय कोश से सम्बन्धित है। यदि हम प्राण् को नहीं समझेंगे एवं उसके मूल्यांकनकोनहीं करेंगे शरीर में उसके प्रभाव को नहीं आकेंगे, अथवा कैसे संचालित किया जाता है यह नहीं सीखेंगे तो हम अध्यापन साधना के उपयोगी पहलु से अपरिचित तथा वंचित यह जाएंगें किन्तु इसके बिना भी आसन और ध्यान किये जा सकते हैं। हमारे शरीर में जो प्राण, उर्जा,बल और तेजा दृष्टिगत होता है उसे ही प्राण कहा जाता है। प्राण जीव का भारी लक्षण है। कोई भी प्राणी जीवितहै अथवा नहीं इसकी मुख्य पहचान प्राणसे ही है हवाई द्वीप के लोग कहते थे कि हमारे शरीर में ऐसी विद्यमान है जिसके शरीर से बाहर होते ही मनुष्य मर जाता है। प्राण शक्ति को कभी भी विभाजित नहीं कर सकते यह शरीर में परिभ्रमणकरती हुई अलग- अलग स्थानों पर अलग – अलग कार्य करती है। कुछ लोग प्रश्न करते हैं किजिस प्राण को समझ नहीं सकते,नाप नहीं सकते,देख नहीं सकते,माप नहीं सकते ऐसे तत्व के विषय में हम चर्चा ही क्यों करतेहैं लेकिन यहाँ मैं समझा देना चाहता हूँ कि मानव स्वास्थ्य के लिए इस पर चर्चा करना अथवा इस तत्व की जानकारी लेना बहुत जरूरी है। आचार्य

शेषादि जी ने एक उदाहरण दिया कि हाथ में पहने वाली घड़ी हो हाथ में लेकर उसकी ऊपरी आवरण को देखकर हम उसके अंदर की कार्य प्रणाली अथवा तकनीकी जानकारी के विषय में उसके रहस्य को नहीं समझ सकते। उसी प्रकार कपड़े को देखने के बाद हम उसकी गुणवत्ता के बारे में तो वर्णनकर सकते हैं किन्तु वह किस कंपनी के धागे से बना है अथवा किस फैक्ट्री के कारीगर ने बनाया है इसके विषयमें समझना असंभवहै।

पंच तत्वों में से एक मुख्य तत्व है वायु। अनेकों ऋषियों और मुनियों के अनुसार प्राण सम्पूर्ण वायु मण्डल में है तथा सम्पूर्ण आकाश मण्डल प्राण की शक्ति से परिपूर्ण है।

सम्पूर्ण जीव जगत प्राण पर ही निर्भर करते हैं। योगियों के अनुसार प्राण हवा में हैं पानी में है, सूर्य के प्रकाश में है ,भोजन में है परन्तु यह सभी बाह्य प्राण के स्त्रोत हैं। जिन पर जीव जगत आधारित है प्राण के बिना जीव संभव नहीं है। प्राण शरीर के कण –कण में है जब तक शरीर है तब तक प्राण ऊर्जा उसमें समाहित रहती है। जब तक प्राण ऊर्जा रहती है तब तक ही प्राणियों की आयु और बना रहता है। तभी तक प्राणी जीवित कहलाता है प्राण ऊर्जा समाप्त होने पर प्राणी मृतक कहलाता है पूरे ब्रह्मांड में प्राण ऊर्जा विद्यमान है। तथा सर्वाधिक शक्तिशाली होने के साथ –साथ उपयोगी जीवन दायनी भी हैं। हमारा शरीर प्राण ऊर्जा की शक्ति से क्रियाशील होता है। शरीरे के भीतरऔर बाहर सम्पन्न होने वाले विभिन्न कार्यइसी प्राण ऊर्जा के कारण ही सम्भव हो पाते हैं।

हमारा अन्नमय कोश और शरीर भी प्राण ऊर्जा की शक्ति के कारण ही संचालित होते हैं। हमारा शरीर बिनाआहार और जल के कई वर्षों तक केवल प्राण ऊर्जा के कारण ही जीवित रह सकता है किन्तु प्राण ऊर्जा के अभावमें यह असम्भव है। वह कुछ पल भी नहीं हो सकता। हमारे पूरे शरीर को , शरीर के विभिन्न अंगों, ग्रथियों, कोशिकाओं आदि सभी को ऊर्जा प्राण ऊर्जा से प्राप्त होती है। स्वस्थ्य शरीर का निर्माण करने के लिए प्राण ऊर्जा को बनाए रखना आवश्यक है। प्राण ऊर्जा के द्वारा ही हमारी जीवनी शक्ति तथा रोग प्रतिरोधक शक्ति का आधार टिका हुआ है। प्राण की ऊर्जा के कारण के द्वारा किए जाने वाले अनेकों कार्य सम्पन्न हो पाते हैं।

प्राण सम्पूर्ण आकाश मण्डल में परिपूर्ण है। वायु को ही प्राण कहा गया है। शरीर के विभिन्न स्थानों पर एक ही वायु को विभिन्न नामों से जाना जाता है। प्राण ऊर्जा एक ही रहती है परन्तु प्राण का स्थान व कार्यो के भेद से अलग – अलग नामों से जाना जाता है।

हमारे सम्पूर्ण शरीर में पाँच प्रकार के प्राण व पाँच उपप्राण हैं। सामूहिक रूप से इन्हें पंच प्राण कहा जाता है –

**प्राण -** इसका स्थान कंठनली तथा श्वांस पटल की मध्य होता है। इसका कार्य नासिका-मार्ग,कंठ, स्वर – तन्त्र, वाक-इन्द्रिय, अन्ननलिका,श्वसन तन्त्र, फेफड़ों एवं हृदय को क्रियाशीलता तथा शक्ति प्रदान करता है।

**अपान** – यह नाभि लेकर पैर के अंगूठे तक विराजमान है। इसका कार्य वायु को मुद्राहार तथा मुख व नासिका के द्वारा निष्कासन करना है।

**समान** – इसका स्थान हृदय से नाभि तक होता है। इस प्राण शक्ति के द्वारा यकृत, आन्त्र, प्लीहा, व अग्न्याशय तथा सम्पूर्ण पाचन तंत्र की कार्यप्रणाली को नियंत्रित किया जाताहै।

**उदान** – इस प्राण शक्ति के द्वारा कंठनली से ऊपर के भागों को नियंत्रण होता है। इसका कार्य आंख, नाक, कान, सम्पूर्ण मुख, पीयुष ग्रन्थि व पीनियल ग्रन्थि सहित सम्पूर्ण मष्तिस्क को उदान प्राण ही क्रियाशीलताप्रदान करता है।

**व्यान** – यह प्राण सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है। यह अन्य शक्तियों के मध्य सहयोग स्थापित कर, शरीर की समस्त गतिविधियोंको नियमित व नियंत्रित करता है। यह सभी अंगों, मांसपेशियों, तंतुओं, नाडियों एवं सन्धियों को शक्ति प्रदान करता है।

इन पंच प्राणों के अतिरिक्त पांच उपप्राण ‘देवदत्त’ ‘नाग’ ‘कृंकल’ ‘कूर्म’ व ‘धनन्जय’ भी विद्यमान रहते हैं जो क्रमश: छींकना, पलक झपकना, जंभाई लेना, खुजलाना, हिचकी लेना आदि क्रियाओं को संचालित करते हैं।

प्राणों का कार्य प्राणमय कोश से सम्बन्धित है और प्राणायाम इन्हीं प्राणों एवं प्राणमय कोश को शुद्ध, स्वस्थ्य और निरोगी रखने का कार्य करता है।

श्वास ही प्राण है श्वास के द्वारा ही शरीर में प्राण ऊर्जा का संवर्धन किया जाता है। प्राण के द्वारा ही प्राणी जीवित एवं सक्रिय रहते हैं। प्राणायाम के द्वारा प्राण ऊर्जा का नियंत्रण एवं संवर्धन किया जाता सकता है। इसी के द्वाराही नाडियों और कोशिकाओं में प्राण प्रवाहित होता है। प्राणायाम के द्वारा ही शरीर में प्राण को सिद्ध कर अनुशासित किया जा सकता है। महर्षि पतंजलि के अनुसार श्वास और प्रश्वास की गति का विच्छेद ही प्राणायाम है जब श्वास प्रश्वास अनुशासित होकर निगृह स्थिति में पहुँचता है । तब प्राणायाम की पूर्णताहोती है जिसके द्वारा शरीर स्वस्थ्य एवं बलवान बनता है।प्राणायाम से फेफड़ों पर सीधा असर होता है फेफड़ों में छोटे –छोटे तन्तुओं के द्वारा श्वास को भरना और छोड़ने का कार्य होता है। एक व्यक्ति एक मिनट में १६ से २० तक श्वास प्रश्वास करता है। इससे ही फेफड़े रक्तशुद्ध कर शरीर को रोग मुक्त रखते हैं। रोग की उत्पत्ति प्राणशक्ति के प्रवाह की विषमता से होती है। प्राण प्रयोग से प्राण ऊर्जा का विकास होने लगता है।

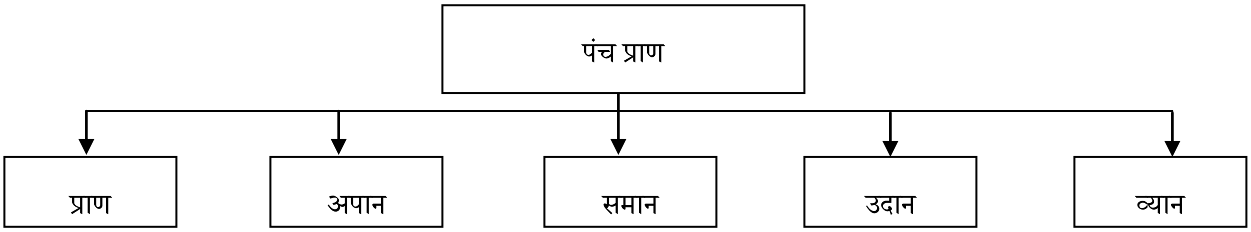


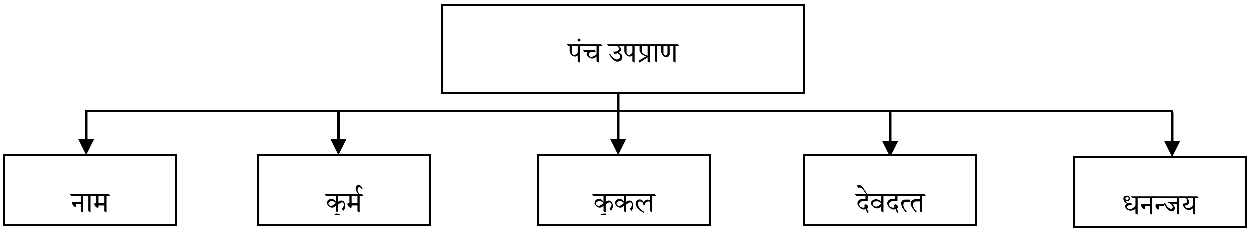


## १३.४ प्रतिरोधक क्षमता

इस सत्य से सभी सहमत होगें कि कोई भी कार्य चाहे व शरीर के अंदर की ग्रंथियों का संचालन का हो अथवा उसमें समन्वय, पाचन का हो या फिर श्वसन से संम्बन्धित हो सभी में शरीर की संचित शक्ति जो हमें जन्म से ही रहती है इसी के साथ शरीर द्वारा शरीर से बाहर के कार्यो जैसे चलना, फिरना, नौकरी करना, भाषण देना, पढ़ना इत्यादि कार्यों में जीवनी शक्ति को व्यय करना ही पड़ता है या यह भी कह सकते हैं कि जीवनी शक्ति के खर्च किये बिना कोई भी आंतरिक अथवा बाह्न कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता इस जन्मजात जीवनी शक्ति को मानव शरीर में किस प्रकार एकत्र करके जमा रखा जाता है अथवा इसका भण्डार शरीर के किस हिस्से में होता है इसका रहस्य आज तक किसी को पता नहीं चल पाया है। रोज सवेरे उठते ही दिन भर के कार्यों को करने के लिए जितनी मात्रा में जीवनी शक्ति की आवश्यकता होती है वह शरीरके विभिन्न अंगों को स्वत: ही मिल जाती है। वैज्ञानिकों के प्रचलितमन के द्वारा शरीर की कुछ आंतरिक क्रियाओं द्वारा विशेषत: श्वेत सार, वह चिकनाहट पदार्थों के पाचन के बाद जो कार्बनअंदर बनताहै वह कार्बन ऑक्सीजन केसाथ मिलकर कुछ उष्णता पैदाकरता है। यही उष्णता मानव शरीर को शक्ति देती है। इसी शक्ति के शरीर के विभिन्न अंगों में क्रियाशीलता बनती है। इसी भ्रम के चलते आज के युग में बहुत से लोग प्राण ऊर्जा एवं जीवनी शक्ति के बारे में अनभिज्ञ बने रहते हैं। यह बहुत ही दुर्भाग्य बात है विभिन्न शारीरिक क्रियाओं आदि में दिन भर जीवनी शक्ति का प्रयोग होता रहता है। और रात होने तक प्रात: प्राप्त की गयी जीवनी शक्ति दिन भर में रात १० बजे तक कम होने लगती है जिससे हमें थकान का अनुभव होता है। यही थकान सोने के लिए प्रेरित करती है। इसी निद्रा में रहते हुए हम दोबारा से अगले दिन के लिए जीवनी शक्ति प्राप्त कर प्रात:उठते हैं। इस प्रकार धीरे-धीरे प्राण ऊर्जा कम होती

रहती है। यदि हम प्राण ऊर्जा का अपवय रोक दें अर्थात् यम नियम एवं अन्य आचार –विचार को संयमितकर लें तो प्राण ऊर्जा बनी रह सकती है अर्थात् प्रतिरोधात्मक क्षमता भी मजबूतबनी रहती है। डॉक्टर बोस्टाकने ने लिखा है "हम औषधियों का जितना प्रयोग करते हैं हमारा ज्ञान अथवा अनुभव उतना नहीं बढ़ता औषधी की प्रत्येक मात्रा रोगी की जीवनी शक्ति पर एक अंधा प्रयोग अनुभव मात्र है।" महात्मा गांधी जी ने कहा है कि बीमारियों का इलाज जरूरी है लेकिन उसे दूर करने के लिए दवा लेना व्यर्थ है। दवा से नुकसान नहीं है। डॉक्टर पैट्रिक के अनुसार अनुभव की कसौटी पर इसका आये दिन ध्यान आकर्षित किया जाता है कि किसी विशेष रोग के लिए अमुख औषधि बाजार में आई है। उस औषधि की हानि की और लोगों का ध्यान खींचा जाता है। कुछ दिनों बाद उसकी भी निंदा करके उसे भी खत्म कर दिया जाता है। ब्रिटिश जनरल मेडिकल में लिखा है। The Drug can have Serious effects on the eighth never causing Giddiness and Deatness And may ever upsets A patient sence At Balance permanently विभिन्न प्रकार की दवाईयां,स्नाईयों पर प्रभावित होती हैं जिसके कारण सिर में चक्कर, बहरापन, यहां तक की स्थायीरूप से रोगी को अव्यवस्थित कर देती है। डॉक्टर ग्रीनहूडके अनुसार "किसी प्रकार का सीरम जो पशु से प्राप्त होता है वह हमारे शरीर में अनेकों प्रकार का रोग पैदा करता है क्योंकि न ही तो पशु स्वस्थ्य होता है तथा उसमें जहरीले कीटाणुओंका पाया जाना स्वाभाविक है। प्रतिरोधक क्षमता का सरल शब्दों में अर्थ शरीर की रोगों से लड़नेकी क्षमता कहलाता है। शरीर की स्वयं रोगों से, बाहरी वातावरण में आये बदलाव, विषाणुया वायरस आदि अन्य जो शरीर में प्रवेश करने वालेतत्वों से लड़ने या उन पर आक्रमण करने की शक्ति को ही प्रतिरोधक क्षमता कहते हैं। मानव शरीर के विभिन्न महत्वपूर्ण तंत्रों में से एक तंत्र भी है जो शरीर में रोग प्रतिरोध की प्रक्रिया का संचालन करता है। यह तंत्र शरीर की जीवाणुओं, रोगाणुओं बैक्टीरिया वाइरस और विषैले पदार्थों से जो कि शरीर को क्षतिग्रस्त करते हैं, उनसे ही रक्षा करने का कार्यकरता है। रोग प्रतिरोध क्षमता हमें जन्म से ही प्राप्त होती है जिसे हम सामान्य सुरक्षा तंत्र भी करते हैं जिसके अन्तर्गत त्वचा, शरीर के कई अन्य स्त्राव, कुछ एन्जाइम्स तथा रक्त में पाई जाने वाली कुछ श्वेत रक्त कणिकाएं, लाइसोसोम, पालीपेरटाइड और कुछ विशेष प्रकार के प्रोटीन भी रोग प्रतिरोधी क्षमता रखते हैं तथा ये सभी बाहर से शरीर में प्रवेश करने वाले विजातीय तत्वों पर आक्रमण कर शरीर की सुरक्षा करते हैं। जब कोई रोगाणु शरीर में प्रवेश करता है वैसे ही उस पर आक्रमण कर उन्हें रक्त की धारा में ही नष्ट करने के पश्चात नष्ट हुए पदार्थ को उत्सर्जन प्रक्रिया के द्वारा शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है।इस पूरी प्रक्रिया में सबसे अधिक योगदान श्वेत रक्त कणिकाओं में उपस्थित न्यूट्रोफिल्स और मोनोसाइट का होता है।

मानव शरीर में होने वाली सभी क्रियाएं तथा सभी तंत्र इस प्रकार से कार्य करते हैं कि वह साम्यावस्था बनी रहे जब कभी शरीर के भीतर रोग पैदा करने वाले जीवाणु रोगाणु आदि जिन्हें

पेथोजन्स कहते हैं उनके द्वारा उत्पन्न विष से शरीर की रक्षा का कार्य भी होता है। शरीर प्राकृतिक रूप से अपनी सुरक्षाके लिए निम्नलिखित उपाय अपनाता है जो कि इसी प्रतिरोधी तंत्र के अन्तर्गत आते हैं।

(A) त्वचा और श्लेष्मा झिल्लियां
(B) फेगोसाइटोसिस
(C) इन्फलेमेंशन
(D) ज्वर
(E) प्रति जीवाणु रासायनिक पदार्थ

**(A) त्वचा और श्लेष्मा झिल्लियां** – त्वचा और श्लेष्मा झिल्लियां सर्वप्रथम शरीर की सुरक्षा प्रदान करने वाली हैं। शरीर को आकृति प्रदान करने में त्वचा का महत्वपूर्ण योगदान है। त्वचा ही शरीर की रोगाणुओं आदि से एक मजबूत आवरण के रूप में सुरक्षा करती है। शरीर की त्वचा में दो प्रकार के आवरण होते हैं जिन्हें डर्मिस तथा एपिडर्मिस कहते हैं जो रोगाणुओं से शरीर की सुरक्षा करते हैं। ठीक इसी प्रकार से ही श्लेष्मा झिल्लियां भी शरीर की इन जीवाणुओं से रक्षा करता है।

श्लेष्मा झिल्लियां त्वचा के ठीक नीचे स्थितसंयोजी ऊतक के साथ उपकला कोशिका स्तर के रूप में पाई जाती है इनके द्वारा एक चिकने पदार्थ जिसे श्लेष्मा कहते हैं , का स्त्रावहोता है जिसके कारण अन्दर और बाहर दोनों स्तर नम रहते हैं जिससे वहाँ पहुँचने वाले रोगाणु और बैक्टीरिया आदि इसी में ही फंस जाते हैं। उदाहरण के लिए नासागुहा में पाई जाने वाले रोग में भी एक प्रकारका श्लेष्मा पदार्थ निकलता है जो बाहर से प्रवेश करने वाले धूल कण तथा अन्य जीवाणुओं आदि को अन्दर प्रवेश करने से रोकता है। ठीक इसी प्रकार आंख में कुछ चले जाने पर तुरन्त ही पानी निकलने लगता है जिससे आंखें नम हो जाती हैं और जो कुछ भी धूल, मिट्टी आदि जो आंख में गया है उसे तुरन्त ही बाहर फेंक देती है।

इसके अलावा शरीर की त्वचा में कई प्रकार की रासायनिक प्रक्रियाएं होती हैं जिनके द्वारा त्वचा की ग्रन्थियों से एक तैलीय पदार्थ निकलाता है जिसे सीबम कहते हैं जो त्वचा को चिकना रख उसे फटने से बचाता है तथा मुलायम रखता है। त्वचा के अंदर कुछ स्वेद ग्रंथियां भी पाई जाती हैं जो शरीर में पसीने का स्त्राव करती हैं जिसके द्वारा शरीर के तापमान को नियंत्रित करने में सहायता मिलती है तथा विजातीय पदार्थको भी शरीर से बाहर निकालने में मदद मिलती है।

(B) **फेगोसाइटोसिस** – जब बाहरी सुरक्षा को भेदकर कोई रोगाणु, जीवाणु या वाइरस शरीर के भीतर प्रवेश कर लेता है तो उसे नष्ट करने के लिए जिस प्रक्रिया का प्रयोग किया जाता है उसे फेगोसाइटोसिस कहते हैं। फेगोसाइ नामक कोशिकाएं रक्त में प्रवेश करने वाले विजातीय पदार्थों आदि को रक्त में ही निगलकर नष्ट कर देती हैं। इस प्रकिया में भाग लेने वाली फेगोसाइ कोशिकाएं दो प्रकार की होती हैं। पहली ग्रेनुलोसाइट और दूसरी माइक्रोफेजेज है।

(C) **इन्लेमेशन या सूजन** – यह प्रतिरोधी तंत्र की महत्वपूर्ण प्रक्रिया है इसके अन्तर्गत जब रोगाणुओं आदि के आक्रमण या बाहरी दबाव अथवा किसी कारणवश जब शरीर की कोशिकाएं घायल हो जाती हैं तो वह स्थिति इन्लेमेशन कहलाती है । इसके अन्तर्गत चोट वाला या घायल स्थान लाल हो जाता है तथा उसमें दर्द का अनुभव होता है । तथा उसमें गर्माहट बाहर निकलती महसूस होती है और उस स्थान पर सूजन आ जाती है इस प्रकार के लक्षण दिखाई देते हैं । कभी – कभी विशेष भाग के द्वारा के किए जाने वाले कार्य भी बंद हो जाता है। सुरक्षा के इस उपाय में घायल स्थान में विजातीय पदार्थ आदि को शरीर से बाहर कर दिया जाता है ।

(D) **ज्वर-** जब शरीर पर रोगाणुओं और जीवाणुओं आदि का आक्रमण होता है जो शरीर में एक प्रक्रिया शुरू हो जाती है जिसके अन्तर्गत शरीर का तापमान असामान्य रूप से बढ़ जाता है जिसके द्वारा शरीर ने रोगाणुओं और जीवाणुओं का निर्माण रूक जाता है और शरीर के भीतर की स्थिति पुन: सामान्य हो जाती है । ज्वर हमारे लिए कोई रोग नहीं बल्कि यह दिये हुए रोगों के कारण का शत्रु है जो शरीर की सुरक्षा प्रणाली को सक्रिय बनाने का माध्यम है ।

**प्रतिजीवाणु रासायानिक पदार्थ** – इस प्रक्रिया के अन्तर्गत विशेष प्रकार के जीवाणुरोधी पदार्थों का स्त्राव होता है जो शरीर की सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं । यह पदार्थ तीन प्रकार के होते हैं –

(A)इन्टरफेरॉन (B) प्रोपर्डीन (C) काम्लीमेन्ट

यह सभी पदार्थ एक विशेष प्रकार की प्रोटीन का समूह है जो रोगाणुओं से लड़ने में उन्हें नष्ट करने तथा उनके विकास को रोकने में भिन्न –भिन्न प्रकार से मदद करते हैं ।

## 13.5 प्राण ऊर्जा एवं प्रतिरोधक क्षमता का संबंध

प्राण उर्जा और प्रतिरोध क्षमता एक दूसरे से सम्बन्धित है । प्राण उर्जा के द्वारा ही शरीर के द्वारा किए जाने वाले विभिन्न कार्य सम्पन्न हो पाते हैं। प्राण उर्जा ही शरीर को विभिन्न कार्यों के लिए शक्ति प्रदान करती है जिसके द्वारा शरीर विभिन्न प्रकार के कार्य कर सकने के योग्य बनता है। प्राण ऊर्जा के द्वारा ही शरीर की प्रतिरोधी क्षमता का भी विकास सम्भव हो पाता है । प्राण ऊर्जा के द्वारा ही शरीर के तन्त्रों की भांति रोग प्रतिरोध तंत्र को भी सक्रिय होने की ऊर्जा प्राप्त होती है। शरीर में प्राण ऊर्जा का विकास कर हम प्रतिरोधी तंत्र को सशक्त बना सकते हैं। प्राण ही जीवनी शक्ति है जिसके द्वारा प्राणी जीवित एवं सक्रिय रहते हैं।

प्राणायाम के द्वारा ही प्राणों को नियमित और विस्तृत बनाया जा सकता है। प्राणायाम के द्वारा नाडियों और कोशिकाओं में प्राण प्रवाहित होकर शरीर के प्रत्येक भाग, अंग, तंत्र को ऊर्जा प्रदान करती है जिसके वह ठीक ढंग से कार्य को पूरा कर शरीर को स्वस्थ रखकर उसका पूर्ण रूप से विकास करने में सहायत प्रदान करता है। जहॉ स्वास्थ्य के लिए आसान उपयोगी है वहॉ

प्राणायाम उनमें नव जीवन व प्राणों का संचार करने वाला है। प्राणयाम प्राणशक्ति को विकसित और जाग्रत करता हैं। प्राणयाम से उत्पन्न प्राण शक्ति से शारीरिक स्वास्थ्य तो बनता ही है। साथ-साथ चित्त भी निर्मलहो जाता है। प्राणयाम के द्वारा ही हम अधिक मात्रा मे प्राणों का आयाम कर पाते हैं। पहली फेफडों के द्वारा उक्त में आक्सीजन पहुँचाकर उसे शुद्ध करना तथा अशुद्ध रक्त से कार्बनडाइआक्साइड ग्रहण कर उसे शरीर से बाहर करना । इस प्रिक्रया के दौरान यदि रक्त से गतिमान होकर सभी कार्य ठीक ढंग से करेगा उसमें होने वाली सभी क्रियाएं ठीक ढंग से चलेंगी। यदि व्यक्ति अधिक मात्रा में प्राण ऊर्जा का संचयकरे तो उसकी प्रतिरोधी क्षमता भी अधिक होती है ।ठीक इसी के विपरीत यदि प्रतिरोध क्षमता को विकसित किया जाता है तो प्राण ऊर्जा को भी बढ़ाया जा सकता है। यदि किसी व्यक्ति की रोगों से लड़ने की शक्ति दूसरों से अधिक है और वह अपनी ऊर्जा को रोगों से लड़ने मे प्रयोग नहीं करता क्योंकि वह रोगी नहीं होता तो वह उस ऊर्जा को बचा रहा है जिससे उसकी प्राण ऊर्जा नष्ट नहीं होती । अर्थात प्रतिरोधी क्षमता के विकसित होने के कारण उसे वह संग्रह कर सकता है जिसके कारण वह स्वस्थय और बलवान बनता है। इसी कारण प्राण ऊर्जाऔर प्रितरोधी क्षमता एक दूसरेकी पूरक है।

दूसरी तरफ प्राण ऊर्जा की कमी होने पर शरीर धीरे-धीरे रोगी होने लगेगा। शरीरके विभिन्न तंत्रों को अपना कार्य करनेके लिए ऊर्जा नहीं मिल पाएगी जिसके कारण शरीर के सभी तंत्र एक-एक करके प्रभावित होने लगेंगे। शरीर में विजातीय तत्व इकट्ठा होने लगेंगे उसे बाहर निकालने वाला तंत्र भी ठीक से कार्य न कर सकने के कारण शरीर में रोग उत्पन्न होने लग जाएंगे। प्राण ऊर्जा की कमी के चलते शरीर की प्रतिरोधी क्षमता भी धीरे-धीरे क्षीर्ण होने लगेगी जिसके कारण शरीर रोगी और अस्वस्थ हो जाएगा। इस प्रकार प्राण ऊर्जा और प्रतिरोध क्षमता दोनों एक दूसरे से सक्रिय होतीहै

## 13.6 प्रतिरोधक क्षमता बढा़ने के उपाय

शरीर अथवा स्वास्थ्य को अच्छा बनाने के लिए आवश्यक है कि प्रतिरोध क्षमता को बढ़ाएं। यही प्रतिरोधक क्षमता अथवा जीवनी शक्ति को बढा़ने के लिए हम निम्न तथ्यों का अध्ययन कर सकते हैं-

1. **आराम-** माता–पिता के अस्वस्थ अथवा गलत खान-पान,रहन सहन के कारण अनियतिताएं बहुत बढ़ जाती है जिसके फलस्वरूप बच्चे के जन्म के समय से ही कुछ कम प्रतिरोधक क्षमता लेकर ही जीवन आगे बढ़ाने हैं ।यदि वे सभी बच्चे बचपन से ही स्वास्थय नियमों का पालन करते हुए जीवनी शक्ति बढ़ा सकते हैं।

2. **निद्रा** – नीद्र का अच्छा होना ही अच्छे स्वास्थ्य या अच्छी प्रतिरोधक क्षमता का प्रतीक है। सोते समय जागते हुए काम करते रहने की तुलना में कम जीवनी शक्ति प्रयोग होती है इसीलिए सोने से प्रतिरोधक क्षमता की बचत होती है।

   नींद स्वयं एक ओषधी है। आप जानते हैं कि बच्चा जन्म के बाद२०-२२ घन्टे सोते हैं जिससे वह अधिकाधिक प्रतिरोधात्मक क्षमता उसकी संचित होती रहती है। आधी रात से पहले का एक घन्टा सोना उसके बादसोने के २ घन्टे के बराबर होता है।

3. **धूप**- नींद के पश्चात दूसरा स्थान धूप का होता है। एक पौधे को उसके जीवन का आधार धूप ही है। यदि पौधे को धूप से हटाकर उसे अंधेरे में रख देते ही मुरझा जाता है। यदी शक्ति जो पौधों को जीवन देती है वह रक्त को लाली भी देती है। ठीक इसी तरह हम देखते हैं कि बन्द व अंधेरे भरे घर या आफिस मे रहने वालों की जीवनी शक्ति में दिन रात जैसाअन्तर स्पष्ट दिखायी देता है। प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने हेतु रोशनी व धूप का सेवन आवश्यक है।

4. **वायु** –मनुष्य खाने-पीने के बिना कई दिनों तक जीवित रहता है लेकिन वायु के बिना जीवन कुछ समय के लिए भी असम्भव है। वायु में अनुप्राणित औषजन है जो प्राप्त कर अन्दर की रक्त की गंदगी कार्बन के रूप में वायु द्वारा ही बाहर निकालकर प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने का कार्य सुचारू रूप से चला रहता है। अपने शरीर को जूते–जुराब–टाई , पैन्ट -कोट इत्यादि से पूरी तरह बन्द रखते हैं साथ ही कमरे की खिड़की व दरावाजे बिल्कुल बन्द रखते हैं साथ ही कमरे की खिड़की व दरवाजे बिल्कुल बन्द रखने से इस कीमती वायु से शरीर वंचित रहकर प्रतिरोधक क्षमता को प्रभावित करता है। सोने से पहले ढीले कपडे के साथ–साथ खिडकियों आदि भी खोलकर रखनी आवश्यक है।

5. **जल**- अच्छी प्रतिरोधक क्षमता बनाने में जल का विशेष स्थान है। जल के सेवन का समय एवं स्वच्छता जहॉ जीवनी शक्ति को बढ़ा सकती है। वहीं गन्दा व असमय सेवन इसे घटा भी सकता है। जल प्राय: उठकर, सोने से पहले, खाने के एक घन्टा बाद में पी सकते हैं। जल शरीर की बाह्य सफाई के भी काम आता है ठन्डे जल के स्नान से निकट की रक्त वाहनियां सिकुड़कर रक्त का संचालन करती है जिससे बहुत सा विजातीय द्रव्य बाहर करने में मदद मिलती है।

**6.भोजन** – प्रतिरोधक शक्ति को बढ़ाने हेतु भोजन का भी विशेष महत्व है। यदि भोजन की मात्रा हम भूख से कम खाते हैं अथवा प्रकृति से जिस रूप में मिला है उसी वास्तविक रूप में ही उसका प्रयोग करते हैं अथवा अंकुरित करके सेवन करते हैं तो अवश्य ही हमारी प्राण ऊर्जा अच्छी बनीं रह

सकती है। साथ नियमित एवं सन्तुलित आहार ही ग्रहण करें ना कि बाजार का तला भुना अथवा फ्रिज का बासी भोजन लें।

7. **विचार**- विचार, आदत अथवा स्वाभाव जैसे ईर्श्या , द्वेष, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादी का प्रभाव शरीर पर तुरन्त दिखाई दे जाता है। एक दम मुहं सूकना , शरीर गर्म हो जाना इत्यादी प्रत्यक्ष देखने को मिलते हैं। हमे अपने अन्दर किसी भी प्रकार से कोई इस प्रकार की नकारात्मक आदतों व सोच को आने ही नहीं देना चाहिए। यहॉ तक कि यदि रोग आ भी जाए तो उसका भय अथवा डर मन से निकाल फेंक देना चाहिए ।ऐसी अवस्था में सदा सकारात्मक सोच जैसे मैं बहुत शीघ्र ठीक हो रहा हॅू, इत्यादि से साइको सोमेटिक उपचार प्रक्रिया स्वत: काम करती रहती है।

8. **ओषधि** प्रयोग से बचें- दवा के प्रयोग का सीधा प्रभाव प्रितरोधक क्षमता पर पड़ता है। क्योंकि औषधी एक रोग को ठीक करने के लिए जो प्रभाव शरीर में दिखाती है वही प्रभाव पूरे शरीर की क्रियाओं को प्रभावित करता है और बहुत दिनों तक पसीना आना, सांस फूलना जैसी अनेकों प्रभाव हमारी प्रतिरोधक क्ष्मता को बहुत ज्यादा प्रभावित करता है। इस कारण छोटी बीमारियों में तुरन्त भागकर दवा का प्रयोंग नहीं करना चाहिए। शुरूमें कम लक्षण दृष्टिगत होते ही सावधानी अपनाते हुए अपनी जीवन शैली बदल कर भी स्वास्थय बनाए रखने में सफल हो सकते हैं।

9. **भोजन की अति से बचें**- जीवनी शक्ति का व्यय अनावश्यक कार्यों में न करें क्योंकि भोजन आवश्यकता से अधिक खाने से उसको पचाने में और फिर उससे अतिरिक्त भाग को बाहर निकालनेके लिए जो भी अतिरिक्त जीवनी शक्ति व्यय होती है उसे सीधे तौर पर प्रतिरोधात्मक क्षमता प्रभावित होतीहै। इसलिए भोजन केवल उतना ही मात्रा में ले जिससे व्यर्थ की जाने वाली ऊर्जा को बचाकर उसे जीवनी शक्ति को बढ़ाने में सफल हो सकते हैं।

10. **प्राणायाम का निरन्तर अभ्यास** -हमारे श्रवसन तन्त्र को सुचारू रूप से चलाए जाने हेतु तथा शरीरकीअन्य ग्रन्थियों के संचालन के लिए आक्सीजन की आवश्यकता होती है । इसी को पूरा करने के लिए दैनिक जीवन में नियमित व्यायाम तथा प्रणायाम का अभ्यास करना चाहिए। इससे शरीर को निरोग करने में मदद मिलती है। साथ ही हमारी आक्सीजन की उचित मात्रा मिल जाने से रक्त संचार में भी आश्चर्यजनक लाभ प्राप्त होता है। इसी से स्वास्थ्य और प्रतिरोधक क्षमता में स्वाभाविक वृद्धि होती रहती है। साथ ही व्यायाम से पसीने के द्वारा का शोधन भी होता रहता है।

11.**शरीर को स्वत:** रोग बाहर करने में सहयोग करें- शरीर अपन आप ही विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालने का कार्य करता है। शरीर के अन्दर यदि किसी प्रकार भी दूषित पदार्थ पहॅुचता है तो उसे बाहर करने की प्रकिया तीव्र रोग के रूप में शुरू हो जाती है। उदाहरण के लिए दस्त –उल्टीअथवा जुकाम आदि तीव्र रोग में हमें किसी भी प्रकार की दवा का सेवन नहीं करना चाहिए लेकिन हम इस

गन्दगी को निकालने की प्रक्रिया को दबाने का काम औषधी के प्रयोग करने से ही होता है। इससे दूषित पदार्थ बाहर निकालने की प्रकिया दबा के प्रयोग से अपना कार्य करना बन्द कर देती है। इस प्रकार सारा दूषित पदार्थ शरीर में ही रहकर आगे असाध्य अथवा जीर्ण रोग पैदा करता है। यदि हम दवाओं से बचकर शरीर को उसे निकालने में सहायता करते रहें तथा आराम के साथ –साथ भरपूर पानी का सेवन करते रहे तथा जूस व फल पर अपक्वाहर प्रारम्भ रकर दें जिससे शरीर की शुद्धि के पश्चात शरीर में एक नई लहर आती है। इसी से स्फूर्ति, मजबूती भरा स्वास्थ्य पा लेने से हमारी प्रतिरोधात्मक शक्ति बढ़ जाती है। दवाओं का प्रयोग हम बीमार होने के लिए करते हैं। स्वस्थ रहने के लिए प्राकृतिक तरीके से करने देना चाहिए । अर्थात हमें कुछ भी नहीं करना होता है । पथ्य ही औषधी है।

12. **अत्यधिक शारीरिक श्रम** –श्रम करना शरीर अथवा जीवनी शक्ति के लिए आवश्यक है किन्तु अत्याधिक श्रम थका देने वाली स्थिति में जीवनी शक्ति का अधिक प्रयोग करना पड़ता है जिस से हमारी जीवनी का मितव्यय होता है तथा शरीर से ज्यादा पसीना निकलने से भी शरीरकी पानी की मात्रा कम ना हो इसलिए श्रम का मापदण्ड प्रत्येक व्यक्ति की प्राण ऊर्जा से उपर या नीचे होता है। अत: अपनी क्षमता से थोड़ा ज्यादा तक श्रम किया जा सकता है किन्तु अत्यधिक श्रम हमारी शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को प्रभावित करता है।

13. **विपश्यना (ध्यान) करना**- आपको जानकारी रहे कि ज्यादा बोलने में भी हमारी ऊर्जा खर्च होती तथा भोजन को खाने-पचाने तथा उसके रस को शरीर की आवश्यकता के अनुसार ढ़ा लने के कार्य से लेकर मल निष्कासन का कार्य करने मे भी शारीरिक ऊर्जा की आावश्यकता होती है। इसलिए इस ऊर्जा को बचाने के लिए हमें मौन-व्रत ,उपासना,ध्यान ,उपवास व आराम सभी को एक साथ करना चाहते हैं तो आपको विपश्यना करनी होगी। इसके कुछ केन्द्र की भारतवर्ष के विभिन्न राज्यों में स्थापित हैं। यह एक सप्ताह 15 दिन अथवा एक माहतक के लिए भी की जा सकती है। इसके करने से तनाव,रोग, अशान्ति,क्रोध, जल्द बाजी इत्यादी बहुत सी ऐसी आदतें जिन्हें हम छोड़ना चाह कर भी नहीं छोड़ पाते .है। वह सब वहां जाने से एक स्थान पर पूरे शरीर की सफाई के साथ-साथ ध्यान प्रक्रिया भी सुद्रढ हो जाती है ।तनाव मुक्त जीवन शैली और शुद्ध वातावरण से सकारात्मक विचारों से मन कीप्रसन्नता बढ़ती है जिससे सीधे प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि हो जाती है। आज की मशीनी दुनियॉ में समाज व परिवार का वातावरण भी अत्यधिक सीमित हो जाने से वैचारिक मतभेद स्वाभाविक है। जिससे हमारी कुनठा और ईष्र्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है इसके परिणाम स्वरूप प्राण शक्ति प्रभावित होने से हमारी प्रतिरोधक क्षमता को प्रभावित करता है। डडपया सकारात्मक सोच जीवन में अपना कर हष्ठ –पुष्ठ शरीर को बनाएं।

15. प्राणशक्ति के वैज्ञानिक प्रभाव का ज्ञान जब तक हमें प्राण ऊर्जा को बढ़ाने अथवा उसके कम होने सम्बन्धित क्रियाओं का ज्ञान नहीं है अथवा उन पर अटूट विश्वास नहीं है तो हम अपने दैनिक जीवन में उन की परवाह नहीं करते ।साथ ही एक और दुर्भाग्य यह है की हमारा आधुनिक चिकित्सा

विज्ञान जीवनी शक्ति के विषय में कुछ भी नहीं बोलता । प्राण ऊर्जा का वर्णन केवल प्राकृतिक चिकित्सा शास्त्र अथवा प्राकृतिक जीवन शैली में ही वर्णित है जो पंचतत्व से बने शरीर को केवल तत्व की कमी अथवा अधिकता से असन्तुलन की स्थति में ला देता है । यही असन्तुलन केवल विजातीय द्रव्य ही प्रभावित करतेहैं। इसलिए प्राण ऊर्जा तथा प्रतिरोधक क्षमता के महत्व को समझना तथा उन सभी तथ्यों को स्वीकारकर विश्वास करना (जो छठा तत्व गांधी जी ने राम-नाम का इसीलिए जोड़ा है) इस ऊर्जा को बचाए रखने अथवा इस मितव्ययता के सिद्धान्त को पालन करने की प्रेरणा देता है। प्राकृतिक चिकित्सा में जिन पांच तत्वों से शरीर का निर्माण हुआ है उन्ही के द्धारा उनकी कमी को दूर करना अथवा उपचार करना एक तक संगत तथ्य है।

प्रतिरोधक क्षमता

↓

प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के उपाय

↓

शरीर की रोगों से लडने की क्षमता

↓

1. आराम
2. निद्रा
3. धूप
4. वायु
5. जल
6. भोजन
7. विचार
8. औषधी प्रयोग से बचना
9. मिताहारा
10. प्राणायाम
11. शरीर की नैसर्गिक (स्वाभाविक ) प्रक्रिया में सहयोग करना।
12. क्षमतानुसार श्रम
13. ध्यान
14. सद्चिन्तन
15. प्राणऊर्जा के वैज्ञानिकप्रभाव का ज्ञान

**अभ्यास प्रश्न'** नीचेकुछ कथन दिये गये हैजो कथन सत्यहो उनके आगे (सही) काएवं जो असत्य हो उसके आगे (गलत)

1. नीद स्वयं एक औषधि है ( )
2. नीद एक औषधि नहीं है। ( )
3. प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में आहार की कोई भूमिका नही होती है।( )
4. आवश्यकता से अधिक खाने पर जीवनी शक्ति नष्ट होती है।( )
5. शरीर की रोगों से लड़ने की क्षमता को प्रतिरोधक क्षमता कहते है। ( )
6. प्राण उर्जा एवं प्रतिरोधक क्षमता का एक दूसरे से सम्बन्ध नहीं है। ( )
7. प्राण उर्जा एवं प्रतिरोधक क्षमता एक दूसरे से सम्बन्धित है। ( )
8. उपप्राण के पांच भेद बताए गये है।( )
9. प्राणों का कार्य प्राणमय कोश से सम्बन्ध है । ( )
10. प्राणां का कार्य मनोमय कोश से सम्बन्ध है। ( )
11. हमारे शरीर का आधार प्राण उर्जा है। ( )
12. अपान का स्थान नाभि से लेकर पैर के अंगूठे तक है । ( )
13. व्यान प्राण, सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है।( )
14. समान प्राण, सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है। ( )
15. कंठ नली से उपर के भागोंका नियंत्रण उदान प्राण के द्वारा कोता है। ( )
16. एक व्यक्ति एक मिनटमे 16- 20 तक श्वास –प्रश्वास करता है।( )
17. महर्षि पतंतलि के अनुसार श्वास –प्रश्वास की गति का विच्छेदन होना ही प्राणायाम है।( )

## 13.7 सारांश

उपरोक्त विवेचन से सिद्ध हो जाता है कि प्राकृतिक चिकित्सा को ही एकमात्र ऐसी चिकित्सा प्रणाली है जो प्राण उर्जा एवं प्राकृतिक जीवन चर्या,आध्यात्मिक विचार तथा प्रतिरोध्क क्षमता के समन्वय से ऐसे शारीरिक संतुलन बनाकर रखती है जिससेरोन आएं। किसीभी चिकित्सा प्रणाली में रोग की औषधि तैयार की गयी है न कि रोग पैदा से बचानेकी ।केवल यही रोग, प्राकृतिक जीवन शैली का अपनी दिनचर्यामें सम्मिलित कर हम निरोगीहोने में सफल हो सकते हैं।

## 13.8 शब्दावली

प्रश्वास –श्वास छोड़ना
निष्कासन – बाहर निकालना

अनभिज्ञ – न जानना, श्रान न होना , जानकारी का अभाव होना

विपश्यना – ध्यानकी एक विशिष्ट विधि

सकारात्मक – अच्छा,सत्

पंचतत्व - पंचमहाभूत

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश

## 13.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य
2. असत्य
3. असत्य
4. सत्य
5. सत्य
6. असत्य
7. सत्य
8. सत्य
9. सत्य
10. असत्य
11. सत्य
12. अयत्य
13. सत्य
14. सत्य
15. सत्य
16. सत्य
17. सत्य

## 13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सरस्वती सत्यानन्द (2003) प्राण,पाणायाम , प्राणविद्याबिहार स्कूल आफ योग,मुगेर बिहार।

2. जिंदल राकेश ।प्राकृतिक आयुर्विज्ञान (2005) । आरोग्य प्रकाशन, मोदी नगर, उत्तर प्रदेश

3. सिंह ,रामहर्ष, योग एवं यौगिक चिकित्सा । चौखंभासंस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली ।

4. सिंह रामहर्ष सिंह (2007 ) स्वस्थवृत्त विज्ञान, चौखंभा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली ।

## 13.11 निबंधात्मक प्रश्न

**1.** प्राण ऊर्जा से आप क्या समझते है इसकेमहत्व पर प्रकाश डालिए ।

**2.** प्रतिरोधक क्षमता की अवधारणा को स्पष्ट कीजियें

**3.** प्राण ऊर्जा एवं प्रतिरोध क्षमता के पारस्परिक सम्बन्धों को स्पष्ट कीजियें ।

**4.** प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने की विभिन्न तकनीकों को वर्णन कीजियें।

# इकाई 14 - रोग: अर्थ एवं परिभाषायें, विजातीय द्रव्य सिद्धान्त

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 रोग

14.3.1 रोग का अर्थ या अवधारणा

14.3.2 रोग की परिभाषायें

14.4 विजातीय द्रव्य का सिद्धान्त

14.5 सारांश

14.6 शब्दावली

14.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

14.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

14.9 निबंधात्मक प्रश्न

## 14.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों इससे पूर्व की इकाई में आपने प्राण उर्जा, प्रतिरोधक क्षमता तथा प्राण उर्जा एवं प्रतिरोधक क्षमता के पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में अध्ययन किया। प्रचंड प्राण उर्जा एवं पर्याप्त प्रतिरोधक क्षमता के कारण आरोग्य की प्राप्ति तथा स्वास्थ्य संवर्धन होता है जबकि इसी जीवनी शक्ति का हास (क्षंय) होने पर प केवल शरीर का वरन मन भी रोग ग्रस्थ हो जाता है तथा भावनाओं में विक्षोभ उत्पन्न हो जाता है जो आध्यात्मिक पीड़ा पहुचाते है।

अब आपके मन में यह जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि शरीर मन एवं संवेगों की किस स्थिति को रोग की संज्ञा दी जाती है। ये रोग किस प्रकार उत्पन्न होते है ? विषाक्त द्रव्यों या नाकारात्मक उर्जा अथवा दूषित प्राण के संचय होने के क्या-क्या दुष्परिणाम आते है इत्यादि। प्रस्तुत इकाई में इन्हीं सब विषयों की विस्तृत चर्चा की गई है।

रोग, स्वास्थ्य एवं विजातीय द्रव्य के सिद्धान्त का अध्ययन करने के उपरान्त यदि आप एक बार प्राकृतिक चिकित्सा के मूल सिद्धान्तों को पुन: याद कर लें तो विषय को समझने में सुगमता होगी।

## 14.2 उद्देश्य

प्रिय पाठकों प्रदत्त इकाई को पढ़ने के बाद आप

- रोग क्या है ? इस तथ्य को स्पष्ट कर सकेंगे।
- रोग की विभिन्न परिभाषाओं का अध्ययन कर सकेंगे।
- रोग के विभिन्न कारणों का विश्लेषण कर सकेगे।
- विजातीय द्रव्य के सिद्धान्त को वर्णित कर सकेंगे।
- रोग एवं विजातीय द्रव्य के पारस्परिक संबन्धों का अध्ययन कर सकेंगे।

## 14.3 रोग

रोग शब्द रुज धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ पीड़ा, (दुःख) कष्ट आदि से है। निम्नांकित रोगों के अर्थ , अवधारणा तथा परिभाषाओ से आप भली भॉति रोग को समझ जायेगे।

### 14.3.1 रोग का अर्थ या अवधारणा

रोग वह स्थिति है जो मनुष्य के अप्राकृतिक ढंग से जीवन यापन करने के परिणाम स्वरुप उत्पन्न होती है प्राकृतिक चिकित्सा के अतिरिक्त अन्य सभी पद्धतियों में रोग के कारण को बाह्य कारको में ढूडा जाता है जबकि प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार बाहर नही अन्दर माना जाता है। रोग वह स्थिति कहलाती है जिसमें व्यक्ति के शरीर के भीतर कार्य करने वाला तंत्र शरीर में इकठठा होने वाले द्रव को बाहर करने में असमर्थ होता है। अनुचित अप्राकृतिक जीवनचर्या व भोगवादी आहार विहार के कारण जब शरीर विषाक्त द्रव्य से लद जाता है उस विषाक्त द्रव्य के परिशोधन और निष्कासन हेतु शरीर द्वारा जो क्रिया संचालित की जाती है उसे हम रोग कहते है। रोग प्रकृति द्वारा कल्याणकारी व्यवस्था का ही एक अंग विशेष है हमें उसे समझकर शरीर की उस अवस्था में मदद करनी चाहिए ना की दबाना चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सा को छोड़कर अन्य सभी चिकित्सा प्रणालियों में रोगों का अस्तित्व माना जाता है। विभिन्न चिकित्सा प्रणालियों में हर रोग के कुछ विशेष लक्षण देखने को मिलते हैं। इन्हीं लक्षणों के आधार पर विभिन्न रोगों के नाम दिये जाते हैं। आकस्मिक रोग के लक्षण परिवर्तित होने पर रोग का नाम भी बदल जाता है किन्तु प्राकृतिक स्वास्थ्य अथवा प्राकृतिक चिकित्सा शास्त्र के अनुसार रोगों का नाम दिया जाना न ही महत्वपूर्ण है और न ही इसका निदान है। लक्षण मात्र से रोग के मूल कारण को जानना असंभव है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि रोग का उपचार बिना मूल कारण के करना प्रायः असंभव ही है। प्राकृतिक चिकित्सा के प्रसिद्ध डॉ0 लिण्डहार ने कहा है Dignosesa Are Almost Always benefied on the post modem table अर्थात एक ही रोगी पर विभिन्न डाक्टरों द्वारा किये गये निदान अलग-अलग होने से उत्पन्न भ्रम मृत्युपरान्त किये जाने वाले जॉच के बाद ही अथवा रोगी की मृत्यु होने के बाद ही जान पाने में सफलता प्राप्त होती है।

आज की निदान परीक्षणों की विधियॉ जैसे एण्डोस्कापी, एक्स-रे, अल्ट्रासाउण्ड, एम0आर0आई0 द्वारा निदान किये जाने पर सही कारण की जानकारी मिलने के अभाव में शरीर पर पड़ने वाले विभिन्न तरंगों के प्रभाव को शरीर पर अन्य बीमारियों का बीजारोपण होता है। प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में इस प्रकार का कोई भी निदान करने की आवश्यकता नहीं होती अपितु रोगी की खान-पान रहन-सहन आदतें तथा रोगी की शारीरिक प्राण शक्ति एवं अवस्था के विषय में व्यक्तिगत रूप से जानना आवश्यक होता है। रोगी की जीवन शैली, दिनचर्या, से उसके स्वास्थ्य स्तर की जॉच करना ही वास्तविक निदान है। इस तरह से रोगी को स्वयं को भी जानकारी प्राप्त होती है कि वे स्वयं के स्वास्थ को पुनः कैसे प्राप्त किया जा सकता है। दोषपूर्ण एवं अप्राकृतिक जीवनचर्या ही रोग का मुख्य कारण है। यह चिकित्सा प्रणाली निदान के साथ-साथ शिक्षित करने का भी कार्य करती है।

विजातीय द्रव्य का शरीर में एकत्र होना ही सभी रोगों का मौलिक कारण होता है। लक्षण चाहे कितने ही भयंकर क्यों न हों रोग का मुख्य कारण विजातीय द्रव्य एकत्र होना निश्चित है। इसी विजातीय पदार्थ को बाहर निकाल फेंकने के लिए जब शरीर प्रयास करता है तो तीव्र रोग उत्पन्न होने शुरू होते हैं। जैसे जुकाम, बुखा, खांसी, दस्त, उल्टी के रूप में सामने आते हैं जिनका सीधा संबंध विजातीय द्रव्य से है। विजातीय द्रव्य के एकत्र होने में निम्न कारण पाये जाते हैं-

(1) भय, तनाव, गुस्सा एवं चिन्ता- इन सब परिस्थितियों में किसी समय मानव का प्रभावित हो जाने से शरीर की सभी कार्यप्रणाली अव्यवस्थित हो जाती है जिसके कारण शरीर की ग्रन्थियॉ कम या ज्यादा काम करना शुरू कर देती है। इस प्रकार शरीर से विषाक्त पदार्थ निकालने की प्रक्रिया या तो बिल्कुल काम नहीं करती या बहुत कम काम करती है।

(2) लम्बे समय तक बैठे रहना- एक ही स्थान पर बैठे रहना अथवा श्रम के अभाव में बहुत सारी विषमताएँ जैसे- अग्न्याशय का कम काम करना, पाचन तन्त्र की गड़बड़ी इत्यादि के कारण विजातीय द्रव्य शरीर में बढ़ जाते हैं।

(3) संतुलित भोजन न करना- आहार में रेशेदार पदार्थो की कमी के कारण कब्ज, गैस जैसे रोग पैदा हो जाते हैं जिससे दूषित पदार्थ शरीर में एकत्र हो जाते हैं।

(4) वेमेंल भोजन-दूध के साथ अचार का सेवन, दूध के साथ मछली का सेवन, दूध के साथ मूली प्याज का सेवन इत्यादि शरीर में दूषित पदार्थ उत्पन्न करते हैं।

(5) प्रदूषण-वायु प्रदूषण एवं ध्वनि प्रदूषण से कान, फेफड़े, एवं गले के रोग तथा दमा इत्यादि असाध्य रोग हो जाते हैं।

(6) मिर्च मसालों के गरिष्ठ भोजन का सेवन- इस तरह का तामसिक भोजन ग्रहण करने से दूषित पदार्थो का एकत्र होना तथा उनसे विभिन्न लक्षणों का पैदा होना स्वाभाविक है।

(7) नशीले पदार्थों का सेवन- वर्तमान में तनाव से बचने के लिये युवक नशीले पदार्थों का सेवन करने के अभ्यस्थ होते जा रहे हैं। जैसे-शराब, धूम्रपान, तम्बाकू, अफीम, चरस आदि का सेवन उनके भविष्य को अन्धकार में धकेल रहे है। इस प्रकार के नशीले पदार्थों का सेवन करने से शरीर की ग्रन्थियॉ सुचारू रूप से कार्य नहीं कर पाती हैं।

(8) शरीर के विभिन्न वेगों को रोकना- मल-मूत्र, वमन, दस्त, छींक, डकार, उबकाई, भूख प्यास नींद ऑसु अपान वायु को रोकने से शरीर में विषाक्तता उत्पन्न होती है।

(9) आवश्यक विश्राम न करना देर रात तक जागते रहना अथवा नींद पूरी न लेने से शरीर के विभिन्न अंगों की कार्य क्षमता प्रभावित होती है जिससे शरीर का सन्तुलन बिगड़ जाता है।

(10) नकारात्मक सोच का होना- जीवन में नकारात्मक सोच को प्राथमिकता देना जिसके कारण मानसिक विकार उत्पन्न होने लगते हैं।

(11)क्षारीय एवं अम्लीय भोजन की अनुपात का असन्तुलन- क्षारीय एवं अम्लीय भोजन में असन्तुलन होने पर रक्त में भी उसका सन्तुलन बिगाड़ देता है जिसके कारण शरीर का रूधिर और अन्य तन्तु जिनसे क्षारतत्व खींच लिया जाता है। फलतः निर्बल और रोगी हो जाते हैं।

(12) शरीर में पंचतत्वों का असन्तुलन- जब शरीर में मिट्टी, धूप, हवा, जल, आकाश, पंच तत्वों में असन्तुलन हो जाता है तो हम रोगी हो जाते हैं।

(13) तीव्र रोगों को दवाओं से दबा देना- अत्यधिक दवाओं का प्रयोग शरीर को विजातीय द्रव का घर बना देता है जिससे हमारे रोगों से लड़ने की शक्ति कमजोर होने लगती है।

(14) शारीरिक क्षमता से अधिक श्रम करना- जो लोग अपनी क्षमता से अधिक कार्य करते हैं वह भी अपनी जीवनी शक्ति का ह्रास करते हैं कार्य के साथ-साथ भरपूर विश्राम की भी आवश्यकता होती है जो हमें पुनः उर्जावान बनाती है। अत्यधिक कार्य करके शरीर कमजोर और विभिन्न प्रकार के रोगों से ग्रस्त होने लगता है।रोग उन तत्वों एवं शक्तियों का एक असामान्य अथवा असंयमित मानव अस्तित्व को गठित करने वाले भौतिक, मानसिक तथा नैतिक में से किसी एक अथवा अधिक धरातलों पर व्यक्ति से सम्बद्ध प्रकृति के विनाशकारी सिद्धान्त के अनुरूप है।

(15) आधुनिक चिकित्सा विज्ञान- रोग के कारण तथा लक्षण को विभिन्न रूप में रहता है। और अन्ततः आकस्मिक घटनाओं को छोड़कर प्रायः सभी रोगों का कारण कीटाणु मानता है। इसमें इस तथ्य पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया जाता कीटाणुओं का पालन पोषण किस प्रकार और कहाँ पर होता है।

- लेकिन प्राकृतिक चिकित्सा यह मानने के लिए बाध्य करती है कि रोग का आधार कीटाणु नहीं अपितु किसी मनुष्य के शरीर के अन्दर की गन्दगी है।

### 14.3.2 रोग की परिभाषायें

- स्वास्थ्य के अभाव की स्थिति ही रोग है।
- प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार शरीर के भीतर जमा हुए विजातीय द्रव्य को शरीर से बाहर करने के लिये उत्पन्न स्थिति ही रोग कहलाती है।
- अप्राकृतिक ढंग से आहार विहार करने से स्वास्थ्य को खोना ही रोग है।
- शरीर की सम्पूर्ण कार्य प्रणाली में से किसी के भी असंतुलन की स्थिति रोग कहलाती है।
- जल चिकित्सा के महान प्रवर्तक लुई कुने ने अपनी पुस्तक New Science of Healing में रोगों की एकता व उपचार की एकता Unity of Desaease Unity of Treatment पर जोर देकर विश्लेषण किया है।
- डाक्टर जोजफ ने लिखा है। Desaease in man for simply the resault of decomposition in one form or other.

मनुष्य में समस्त रोग एक या दूसरे रूप में सीधे तौर पर गन्दगी का फल है।

बिना सम्पूर्ण शरीर के रोग ग्रसित हुये रोग का कोई भी लक्षण (स्थानीय रोग) प्रकट नहीं हो सकता जैसा कि डॉ0 डरहन डनलपेन ने (Philosophy of the bath.) The function of no one organ can be impaired without involving the whole system in the consequence" किसी भी एक अवयव की क्रिया सम्पूर्ण शरीर के खराब हुए बिना दोषपूर्ण नहीं हो सकती। इससे भी रोग की एकता प्रकट होती है। सभी रोग लक्षण स्थानीय नहीं सम्पूर्ण शरीर से सम्बन्धित होते हैं।

डॉ0 डाइओ लेविस एम0डी0 ने "Weak lungs" में लिखा हैं। Local disease is an impossibility every disease must be systemetic before it can Assume Any local expresasion. स्थानीय रोग असम्भावित हैं। प्रत्येक रोग स्थानीय रूप धारण करने के पूर्व सम्पूर्ण शरीर से अवश्य ही सम्बन्धित रहेगा। शरीर में रोग उत्पन्न होने का कोई ना कोई कारण अवश्य होता है। रोग शब्द रुज धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ पीड़ा, (दुःख) कष्ट आदि से है। इसका विवरण अथर्ववेद में मिलता है। शरीर के अन्दर विष (विजातीय द्रव्य का एकत्रित होना) जिसके लिये यक्ष्म शब्द का उल्लेख किया गया है।

"यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहम्."

- क्रिमी रोग का मुख्य कारण है जो अन्न या जल के माध्यम से प्रपिष्ट होकर शरीर को रोग ग्रस्त करता है। (अथर्ववेद 5/29/6-6)
- रोग का तीसरा कारण है- त्रिदोष (वात, पित्त और कफ)। जब तक शरीर स्वास्थ्य रहता है, इनकी विषमता से शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। (ऋग्वेद-1/34/6)

## 14.4 विजातीय द्रव्य का सिद्धान्त

प्राकृतिक चिकित्सा में विजातीय द्रव्य का सिद्धान्त बहुत ही महत्वपूर्ण है प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति विजातीय द्रव्य की ही चिकित्सा पद्धति है। प्राकृतिक चिकित्सा पूरी तरह विजातीय द्रव्य पर निर्भर करती है।

प्राकृतिक चिकित्सा में रोग उत्पन्न होने का कारण केवल एक ही है जो विजातीय द्रव्य के नाम से ही सर्वसम्मति से स्वीकारा जाता है हमारे खान-पान दोष, अनियमिता, बेमेंल भोजन, तामसिक खान-पान आचार व्यवहार ठीक ना होना, आरामदायक अथवा विलासिता पूर्वक दिनचर्या अत्याधिक दवाओ का प्रयोग, ऋतुचर्चा के विरूद्ध कार्य इत्यादि के कारण ही शरीर में विजातीय द्रव्यो का एकत्र होना पाया जाता है। विजातीय द्रव्य जिस भी प्रदेश अथवा शरीर के भाग में जमा हो जाते है। तो वही हिस्सा अपनी कार्यक्षमता खो बैठता है। एलोपैथी में उसी हिस्से के नाम से ही रोग का नाम रख देते है ”वाणभट्ट“ ने कहा है -

दोष एवहि सर्वेषां रोगाणमिक कारणम्। अर्थात सब रोगो का एकमें व कारण दोष (विजातीय द्रव्य) है।

रोग प्रकृति के नियम भंग करने से होते है क्योकि प्रकृति के नियम भंग करने से शरीर में दोष पैदा होते है और यही दोष नही हट पाने के कारण विजातीय द्रव्य के रुप में रक्त में चला जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति एक अदभुत पद्धति है इस पद्धति का एक ही विषय है वह है मानव शरीर मानव जो की एक प्राकृतिक प्राणी है उसका शरीर प्रकृति में पाए जाने वाले पांच तत्वो से मिलकर हुआ है। जब तक मानव प्राकृतिक नियमो व सिद्धान्तो का पालन करता हुआ अपने जीवन को व्यतीत करता है तब तक ही वह स्वस्थ और निरोगी जीवन देता है इसके विपरीत जब वह अप्राकृतिक जीवन यापन करता है गलत आहार विहार करता है तो वह रोगग्रस्त हो जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार रोग का कारण बाह्य वातावरण में पाये जाने वाले कीटाणु विषाणु, फूंद इत्यादि नही बल्कि शरीर में बनने वाला विष विजातीय द्रव्य है। जब व्यक्ति अप्राकृतिक ढंग से जीवन जीता है गलत ढंग से खान पान के तरीके को अपनाता है परिश्रम विहीन जीवन जीता है तथा अप्राकृतिक नियमो पर चलता है तो धीरे धीरे शरीर के भीतर कार्य करने वाली प्रणाली सही ढंग से अपना कार्य नही कर पाती जिसके कारण शरीर में विजातीय द्रव्य इकठठा होने लगते है जिसके कारण शरीर को उसे बाहर निकालने के लिये कठोर परिश्रम करने पडते है। ऐसा निरन्तर होने पर शरीर की जीवन शक्ति क्षीण होने लगती है शरीर में बनने वाले विजातीय द्रव्य के कारण शरीर का रक्त विशुद्ध होने लगता है जब तक रोग प्रतिरोधक शक्ति सशक्त रहती है तब तक वह विष को शरीर में एकत्र होने नही देती यदि विकार और विष एकत्रित हो जाये तो उन्हे तीव्र रोगो के रुप में बाहर कर देती है। परन्तु मनुष्य की जल्दबाजी या नासमझी के कारण जब उस विष रूपी विजातीय द्रव्य को औषधियो द्वारा शरीर में ही दबाया जाता है। इसे बार बार दबाने पर विजातीय द्रव्य जीर्ण रोग में रुपान्तरित हो जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार विजातीत द्रव्य मल मूत्र, श्वास, पसीना, अशुद्ध रक्त, अशुद्ध वायु आदि के रुप में मानव शरीर में उत्पन्न होते हे यदि शरीर के सभी तन्त्र और अंग सही ढंग से कार्य करते रहते है तो मानव द्वारा ग्रहण किया जाने वाला भोजन सही पाचन होकर उससे प्राप्त पोषक तत्वो का शरीर द्वारा ग्रहण तथा अपशिष्ट पदार्थ का सही रुप में बिना

रुकावट शरीर से बाहर कर दिया जाना ही स्वास्थता का प्रतीक होता है, इन समस्त क्रियाओ का सम्पादन जीवनी शक्ति के द्वारा ही होना सम्भव हो पाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति के सिद्धान्तनुसार समस्त रोग एक ही होते है और उन समस्त रोगो का कारण भी केवल एक ही होता है वह है विजातीय द्रव्य। शरीर में स्थित होने वाला विजातीय द्रव्य तो एक ही है परन्तु यह अनेको रोगो को जन्म देने वाला होता है इसलिए सभी लक्षण और रुप में भिन्न भी होते हुए भी एक ही होते है जैसे दस्त, ज्वर, गठिया, बवासीर, आदि का कारण विजातीय द्रव्य है। कारण एक होने पर भी सभी के रुप भिन्न होते है।

इससे सिद्ध होता की संसार में पाये जाने वाले कीटाणु रोग का कारण नही होते है। क्योकि वह कीटाणु हमारे शरीर में प्रवेश कर वहां रह ही नही सकते क्योकि हमारे शरीर का रोग प्रतिरोधी तंत्र और जीवनी शक्ति के द्वारा वह स्वस्थ कोषो के रुप में परिवर्तित होकर शरीर की मदद करते है परन्तु इस जीवनी शक्ति के क्षीण होने के कारण वही कीटाणु हमें रोगी बना देंगे।प्रत्येक व्यक्ति की जीवनी शक्ति दूसरी व्यक्ति से भिन्न होती है जो कि उनकी जीवन शक्ति दूसरे व्यक्ति से भिन्न होती है जो कि उनकी जीवन शैली पर आधारित होती है। निर्मल शरीर में संसार के सारे कीटाणु व रोगाणु मिलकर भी रोग उत्पन्न नही कर सकते जबकि विजातीय द्रव्य रुपी विष से भरे शरीर में रोगाणु अवश्य उत्पन्न होकर रोगो को जन्म देंगे। मानव शरीर में बनने वाले विजातीय द्रव्य को मल मार्ग, रोमकुपो, गुर्दे, गुदा, नासिका, मूत्रेन्द्रिय आदि द्वारा प्रतिदिन निकाला जाता रहता है किसी कारणवश जब यह मल को बाहर निकालने का रास्ता ना मिले तो शरीर बीमार हो जाता है। शरीर की सारी शक्ति उसे बाहर निकालने में लग जाती है इसी स्थिति को रोग का होना कहते है। इसे समझ लेने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि रोग हमारे स्वस्थ रहने के लिये कितने आवश्यक है। इन्हे तीव्र रोगो के नाम से जाना जाता है। यही प्रकृति द्वारा प्रयोग में लायी जाने वाली चिकित्सा है। जब लगातार मनुष्य अपनी गलत आदतो के कारण इस प्रकार तीव्र रोगो का शिकार होता रहता है तो धीरे धीरे उसकी जीवन शक्ति कम होती चली जाती है जिसके कारण भविष्य में शरीर द्वारा विजातीय द्रव्य को निकाल पाना असम्भव होता जाता है और वह शरीर में ही इकठठा होने लगते है ऐसे समय प्रकृति अपनी सफाई का कार्य करने में असफल रह जाती है। और रोगी जीर्ण रोग से ग्रस्त होते होते एक दिन मर जाता है, इस विष के कारण ही आज विश्व में कैंसर, ह्रदय रोग, रक्त चाप, मधुमेंय, अर्थोराइटिस, हैपेटाइटिज, एडस आदि दुखप्रद जानलेवा बीमारियो का करना पड रहा है। जो कि हमारे द्वारा अपनाई जाने वाली अप्राकृतिक जीवन शैली का ही परिणाम है।

सर्वप्रथम हमें प्राकृतिक जीवन शैली की ओर उन्मुख होकर स्वस्थ जीवन जीने की चेष्टा करनी चाहिए। यदि कभी शरीर में रोग हो जाये तो प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्त और नियमों का पालन करना चाहिए जो स्वस्थ जीवन जीने के लिये आवश्यक है प्राकृतिक चिकित्सा के साधनो एनिमा, कटिस्नान, वाष्पस्नान, लपेट, स्थानीय वाष्प, मिटटी की पटटी, रसाहार, उपवास, इत्यादि का प्रयोग कर तीव्र रोग के लक्षणों से मुक्त होना चाहिए। न की औषधियो द्वारा दबाकर स्थायी रुप से रोगी बन जाना चाहिये।

**अभ्यास प्रश्न**

नीचे कुछ कथन दिये गये है जो कथन सही है उसके उनके आगे ( सही ) का तथा जो गलत हो उनके आगे ( गलत ) का निशान लगायें।

1. स्वास्थ्य के अभाव की स्थिति ही रोग है। ( )
2. New Science of Healing के लेखक लुई कूने है। ( )
3. लुई कूने ने जल चिकित्सा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया।
4. शरीर में पंचतत्वो का असंतुलन रोग कारण नही है। ( )
5. पंचतत्वों का शरीर में असंतुलित होना रोगों को जन्म देता है। ( )

6. सभी लोगों का मूल कारण शरीर में विषाक्त द्रव्यों का संचित होना है।( )
7. जब शरीर विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालने का प्रयास करता है 1 तो तीव्र रोग होना प्रारम्भ हो जाते है। ( )
8. प्राकृतिक चिकित्सा में रोग के कारण को बाह्य कारकों में खोजा जाता है।
9. प्राकृतिक चिकित्सा में रोग के कारण को बाहर नही अन्दर माना जाता है।
10. विषाक्त द्रव्यो के निश्कासन की शरीर से संचालित होने वाली प्रक्रिया वस्तुत रोग है।

## 14.5 सारांश

रोग – विषाक्त द्रव्यों को शरीर से बाहर निकालने के लिये शरीर द्वारा जो क्रिया संचालित की जाती है, उसे 'रोग' कहते है।

रोग का मूल कारण – अप्राकृतिक या असंयमित जीवन शैली के कारण शरीर में संचित विजातीय द्रव्य।

विजातीय द्रव्य – एसे द्रव्य जो शरीर के लिये अनुपयोगी हो तथा जिनका शरीर को स्वस्थ रखने के लिये बाहर निकलना अत्यावश्यक हो।

रोग दूर करने का उपाय – प्राकृतिक या संयमित जीवनशैली को अपनाना अथवा स्वस्थवृत्त के नियमों का पालन करना।

## 14.6 शब्दावली

उन्मुख – अग्रसर होना, प्रेरित होना।

विजातीय द्रव्य – विषाक्त पदार्थ या अपशिष्ट पदार्थ।

अप्राकृतिक – प्रकृति के नियमों के विपरीत।

आकस्मिक – अचानक घटित होने वाला।

## 14.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. असत्य 5. सत्य 6. सत्य 7. सत्य 8. असत्य 9. सत्य 10. सत्य

## 14.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. जिन्दल, राकेश (2005)। प्राकृतिक आयुर्विज्ञान। आरोग्य सेवा प्रकाशन, मोदीनगर, उत्तरप्रदेश।

2. सिंह, रामहर्ष (2007)। स्वस्थवृत्त विज्ञान। चौखंभा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।

3. सक्सेना, ओ0पी0 (2005)। वृहद् प्राकृतिक चिकित्सा। भाषा भवन हालनगंज, मथुरा उत्तरप्रदेश।

## 14.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. रोग से आप क्या समझते है ? इसे परिभाषित करते हुए रोग उत्पत्ति के कारणों पर प्रकाश डालिये।

2. विजातीय द्रव्य के सिद्धान्त का विस्तार से विवेचन कीजिए। ?

# इकाई 15 – निदान की अवधारणा निदान की विविध विधियॉ

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 निदान की अवधारणा

15.4 निदान की विभिन्न विधियॉ

15.4.1 मूत्र द्वारा निदान

15.4.2 मल द्वारा निदान

15.4.3 पसीने द्वरा निदान

15.4.4 जीभ द्वारा निदान

15.4.5 आकृति द्वारा निदान

अभ्यास प्रश्न

15.5 सारांश

15.6 शब्दावली

15.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

15.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

15.9 निबंधात्मक प्रश्न

## 15.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों इससे पहले की इकाई में आपने रोग के अर्थ तथा उसके मूल कारण एवं विजातीय द्रव्य के सिद्धान्त के विषय में अध्ययन किया है। अत: ये बात तो आप अच्छी तरह समझ ही चुके होंगे कि प्राकृतिक चिकित्सा रोगों का मूल कारण शरीर में विषाक्त या विजातीय द्रव्यों का इकट्ठा होना ही मानती है।

अब आपके मन में यह जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि रोगों का निदान करने की प्रक्रिया क्या हैं ? किन –किन विधियों को अपनाकर किसी रोग का निदान किया जा सकता है ? निदान के कौन-कौन से चरण होते है ? इत्यादि।

वस्तुत: जब कोई रोग उत्पन्न होता है तो उसके कुछ बाहरी लक्षण भी जल्दी ही प्रकट होना शुरू हो जाते है। इन बाहर दिखाई देने वाले लक्षणों के माध्यम से रोग के भीतरी अर्थात् मूल कारण का पता लगाना ही निदान कहलाता है।

निदान की अनेक विधियाँ है – चिकित्सकों द्वारा अपनायी जाती है। जैसे- जीभ, मूल, पसीना, आकृति द्वारा निदान इत्यादि।

जिज्ञासु पाठकों, सर्वप्रथम हम चर्चा करते हैं, निदान के अर्थ एवं स्वरूप के बारे में निश्चित ही इससे आप रोग एवं उसके कारण की अवधारणा को और अधिक अच्छे ढंग से समझने में सक्षम होंगे।

## 15.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप –

- निदान के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
- निदान के विभिन्न चरणों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- निदान की विभिन्न विधियों का अध्ययन करे सकेंगे।

## 15.3 निदान की अवधारणा

किसी भी समस्या के बाहरी लक्षणों का अध्ययन कर मूल कारण का ज्ञान करना ही निदान कहलाता है। निदान की विधि विलोपन पर आधारित है। निदान का चिकित्सा में बहुत ही महत्व है। जब तक रोग की सटीक पहचान न हो जाए तब तक सही दिशा में उपचार कर पाना असम्भव है।

सही निदान का अर्थ यह है कि कष्टदायक लक्षणों या उभरे हुए लक्षणों का आधारभूत कारण और उनके द्वारा उत्पन्न विकृति का सही रूप समझा जाए।

प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति एक ऐसी सरल, साधारण एवं सस्ती पद्धति है कि इसमें किसी भी प्रकार के निदान का कई महत्व नहीं समझा जाता है। क्योंकि इस पद्धति में जो सिद्धान्त इसके बताएं गये हैं उनमें रोग भी एक है तथा उपचार भी एक है। रोग अर्थात विजातीय द्रव्य का शरीर में एकत्र होना। विजातीय द्रव्य को शरीर से बाहर निकाल देना ही उपचार है। दूसरी पद्धतियों में रोग के शरीर पर जो लक्षण जिस किसी अंग के जिस भी हिस्से में उभरते हैं उसको उसी अंग के नाम से रोग का नाम दिया जाता है। क्योंकि उन पद्धतियों में अंग व रोग के अनुसार ही दवा तैयार की गई होती है लेकिन प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति एक रोग का नहीं किन्तु पूरे शरीर की चिकित्सा करती है अर्थात जिन रोगों के लक्षण अभी तक नहीं दिखाई पड़ रहे हैं अथवा महसूस नहीं हो पा रहे हैं वे सभी यदि शरीर में अन्दर शुरू हो चुके हैं। उनका भी उपचार स्वतः हो जाता है जिससे निकट भविष्य में जो व्याधि आने वाली थी उनका आना पहले ही दूर हो जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति एक साथ ही पूरे शरीर के सभी विजातीय द्रव्यों को एक साथ ही शरीर से बाहर निकाल देती है। इस प्रकार शुरूआत हो चुकी। ऐसे रोग तीव्र रोग अथवा जीर्ण रोग की अवस्था में आने से पहले ही दूर हो जाए ऐसा अन्य किसी भी चिकित्सा पद्धति में इसलिए भी निदान की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि एक साथ ही पूरे शरीर में किसी भी अवस्था में पड़े हुए किसी भी रोग को चिकित्सक उपचार देता है। रोगी के रोग का निदान करने हेतु एक अनुभवी चिकित्सक शीघ्र ही रोगी के इतिहास जानने के बाद किसी निर्णय पर पहुंचता है कि कैसे उसे शीघ्रातिशीघ्र स्वस्थ किया जा सके। रोगी के निदान की कुछ अवस्थाएं (Major Steps) इस प्रकार से समझे जा सकते हैं-

**रोगी की वर्तमान दशा का ज्ञान-** परीक्षण के समय कौन से लक्षण प्रधान हैं उनको दूसरे लक्षणों से किस प्रकार जोड़कर देखा जा सकता है अथवा आपस में किस प्रकार उनका संबंध है जानना चाहिए। उदाहरण के लिए रोगी पेट दर्द के लिए आता है तो देखना अथवा जानकारी प्राप्त करनी चाहिए कि खाने से दर्द का बढ़ना अथवा कम होना या फिर उल्टी आना या ना खाने से उसकी अवस्थ किस प्रकार प्रभावित होती है। पेट दर्द के साथ दूसरे, शुगर ब्लड प्रेशर, अल्सर इत्यादि रोग पुराना तो नहीं चल रहा है।

**रोगोत्पत्ति का इतिहास**- रोग किस प्रकार से प्रारम्भ हुआ। अर्थात बुखार यदि आया है तो खांसी जुकाम के बाद आया अथवा ठंड लगकर आया था कम्पन से शुरू हुआ इत्यादि सभी बातों की जानकारी आवश्यक है। प्रतिदिन बढ़ रही है या एक दिन छोड़कर आ रहा है इत्यादि।

**रोगी का व्यक्तिगत इतिहास**

- रोगी के निवास स्थान का वातावरण साफ अथवा गंदगी युक्त कैसा है।
- सोने, उठने का समय तथा कितनी देर तक कितने घन्टे सोते हैं अथवा काम करते हैं।
- भोजन अथवा व्यायाम विश्राम का समय।
- मादक वस्तुओं का सेवन- अर्थात पान, तम्बाकू, शराब आदि की लत है या नहीं।
- रोगी का वजन व लम्बाई क्या है ?
- रोगी कभी आमवात, जोड़दर्द, टॉसिल, टाइफाइड, खांसी, फेफड़े के रोग से पीड़ित तो नही हुआ है।
- रोगी के खून के रिस्ते के लोगों में निम्न रोग तो नहीं हैं टी.बी. (यक्ष्मा), पागलपन, रक्तचाप या उन्माद मिर्गी, नाडी संस्थान के रोग अस्थमा इत्यादि।
- रोगी अपने शरीर के प्रति कितना जागरूक है अथवा लापरवाह है। उसका अपने व दूसरे के प्रति स्वभाव कैसा है। वह सदैव हंसता रहता है अथवा चिड़चिड़ा स्वभाव है। पाचन तन्त्र कैसे काम करता है। राम नाम अथवा सेवाभाव है या नहीं। कुछ रोग इस प्रकार के होते हैं कि त्वचा पर भी अलग से चिन्हित हो जाते हैं।
- पेशाब कितनी बार आता या पानी कितनी मात्रा में दिन भर में पीता है। खाना कितनी मात्रा में और कितनी बार खाता है? मल त्यागकितनी बार करता है त्वचा का रंग कैसा है।
- रोगी के शरीर का आकर बेडौल अर्थात पेट बहुत बाहर या नितम्ब बेडौल या कोई भी अंग-टांग या हाथ बहुत पतला या मोटा तो नहीं है। इन सभी भागों के विषय में जानना उनकी पूरी तरह कार्य प्रणाली के विषय में जानकारी प्राप्त करना तथा उसके शरीर पर इस रोग से सम्बन्धित कुप्रभाव कितना है।
- रोगी के पारिवारिक रिश्ते माता-पिता, बहन-भाई, पत्नी, सन्तान आदि से किस प्रकार के हैं रिश्तेदार, पड़ोसी, आफिस में काम करने वाले सभी- छोटे के प्रति स्वभाव तथा बड़ों के प्रति स्वभाव कैसा है। व्यापार है तो व्यापार की हालत अथवा काम की स्थिति में आफिस के बॉस का व्यवहार या रोगी का अपने साथियों और अधिकारी के प्रति व्यवहार किस प्रकार का है।

इन सभी बातों को जानना इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि आज की सभी बीमारियों में प्रसिद्ध चिकित्सक लुई कुने के अनुसार 70 प्रतिशत योगदान साइकोसोमेटिक कारणों से रोग जुड़ा होता है। शरीर के शोधन अथवा विभिन्न जॉच पूरा कर लेने के उपरान्त भी कुछ लक्षण समझ में नहीं आने की स्थितियॉ देखने को मिलती हैं। इन सभी में तनाव जैसी बहुत सी स्थितियॉ हैं जो रोगों का सामान्य ही नहीं अपितु जीर्ण रोग जैसी भयंकर स्थिति तक पहुँचाकर जीवन नष्ट कर देने की तरफ ले जाते हैं।

आज के मशीनी युग में, भाग दौड़, चिन्ता, तनाव और प्रतिस्पर्धा के युग में एक साधारण व्यक्ति भी इससे बच नहीं पाता है। आज व्यक्ति का दुःख-सुख भी उसके अपने उपर अर्थात अपना केवल नहीं है। वह भी दूसरों से प्रभावित होता है। उदाहरण

के लिए पड़ोसी अथवा शत्रु प्रसन्न है। यह स्थिति हमें दुःखी रखती है। साथ ही वह शत्रु पड़ोसी दुःखी है, गरीब है, परेशान है तो उससे प्रसन्नता अनुभव करते हैं। बच्चों के भविष्य और उनकी अच्छा शिक्षा का मानसिक दबाव माता-पिता तथा बच्चों को इतना तनावग्ग्रस्त स्थिति में ले जाता है कि पूरा परिवार तथा परिवार का वातावरण ही तनाव और डिप्रेसन जैसी स्थितियॉं से प्रभावित नजर आता है। ऐसे में कुछ भी निदान या जॉच तक सभी कुछ फेल हो जाता है। यहॉं तक कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान भी योग-ध्यान जैसी आध्यात्मिकता की ओर जाने की सलाह देते हैं। आजकल एक नया प्रदूषण जो हमारी जीवन शैली में इस प्रकार जुड़ गया है कि उसे दूर रखना अथवा उससे दूर होना दोनों ही स्थितियां असम्भव सी जान पड़ती हैं। यह है माइक्रोवेब कि (Micro Wave Pollution) प्रदूषण पैदा करने वाले उपकरण जैसे-मोबाइल- टी.वी., रिमोट, कम्प्यूटर इत्यादि से निकलने वाली विद्युत किरणें जो इन्हें लम्बे समय तक प्रयोग करने से निकलती रहती हैं और इनका स्तर सोने के कमरे अथवा आफिस में इतना बढ़ जाता है कि उनका दुःप्रभाव हमारे मस्तिष्क के अतिरिक्त पूरे शरीर को इस प्रकार प्रभावित कर रहा है कि हमें भूख-नींद स्फूर्ति इत्यादि आवश्यकताएं भी प्रभावित हो जाती हैं। कहने का अभिप्रायः है कि यदि नींद व भूख जैसी आधारभूत समस्याएं आ जाती हैं तो कोई भी दूसरी समस्या स्वयं ही आ जाती है। इस प्रदूषण के प्रभाव की जांच भी अभी तक सामने नहीं आ पाई है। एक रोगी के रोग परीक्षण अर्थात निदान हेतु कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु आपकी जानकारी के लिए यहां बताए जा रहे हैं। इन अंगों के और शरीर से निकलने वाले पदार्थों के परीक्षण के बाद रोग के लक्षणों अथवा रोग का निदान कर रोगी को शीघ्र उपचार देकर उसे स्वस्थ किया जा सकता है।

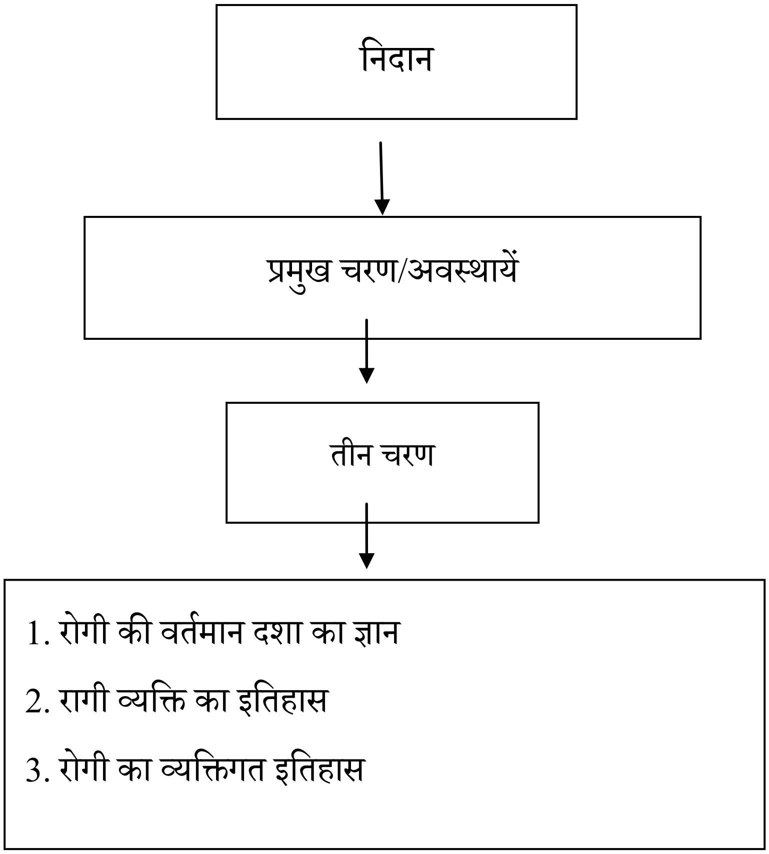


## 15.4 निदान की विभिन्न विधियॉं

प्रिय पाठकों, निदान के अर्थ को स्पष्ट करने के बाद अब हम इसकी विभिन्न विधियों की चर्चा करेंगे। निदान के लिये चिकित्सकों द्वारा अनके तरीकों को अपनाया जाता है, जिनका विवेचन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है –

1. मूत्र द्वारा निदान
2. मल द्वारा निदान
3. पसीने द्वारा निदान
4. जीभ द्वारा निदान
5. आकृति द्वारा निदान

निदान की विभिन्न विधियॉं

पॉंच विधियाँ

1. मूत्र द्वारा निदान
2. मल द्वारा निदान
3. पसीने द्वारा निदान
4. जीभ द्वारा निदान
5. आकृति द्वारा निदान

**15.4.1 मूत्र द्वारा निदान -** मूत्र में लगभग **4** से **5** प्रतिशत ठोस पदार्थ रहते हैं जिसमें एक से दो प्रतिशत यूरिया होता है तथा तीन प्रतिशत में अमोनिया, प्रोटीन, यूरिक एसिड सोडियम पोटेशियम, कैल्सियम तथा ऑक्जोलेट इत्यादि पाए जाते हैं। मूत्र का रंग हल्का पीला होने पर सामान्य तथा लाल होने पर गुर्दे से सम्बन्धित रोग पाए जाते हैं। मूत्र की मात्रा कम होने पर संक्रमण का प्रकोप समझा जाता है। मूत्र के रंग में कालेपन होने से लाल रक्त कण का नष्ट होना पाया जाता है।

मूत्र में प्रोटीन ओने से गुर्दे से सम्बन्धित रोगों का प्रादुर्भाव होता है। मूत्र में चीनी का आना मधुमेंह का रोग होने का संकेत मिलता है।

मूत्र में 0.2 एच.पी.एफ. का पाया जाना सामान्य स्थिति को दर्शाता है वही इससे अधिक होना गुर्दे के संक्रमण की ओर इशारा करता है। मूत्र का रंग साफ होना भी सामान्य होने का प्रमाण होता है।

स्वास्थ्य के विषय में मुख्य जानकारी स्वयं अनुभव कर उपचार एवं सावधानियों से प्रारम्भ की जा सकती है।

इस प्रकार समय के रहते रोग का निदान समझ लेने से प्रारम्भिक अवस्था में ही सचेत ही करके जीर्ण रोगों से बचे रहने में सफलता प्राप्त हो सकती है। आवश्यकता पड़ने पर अथवा दुविधा की स्थिति आने पर रासायनिक प्रयोगशालाओं में

भी जॉच करवाई जा सकती है। मूत्र का अधिक पीला होना यकृत रोग पीलिया को दर्शाता है। मूत्र परीक्षण भी रोगनिदान में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मूत्र परीक्षण से कुछ मुख्य ग्रन्थियों के कार्य क्षमता के विषय में विशेष तथ्य सामने आते है। गुर्दे, मूत्र नलिका के रोगो का निदान किया जाता है। संक्रमित का पता अर्थात निदान भी मूत्र द्वारा ही लगाया जा सकता है। संक्रामक रोगो के रोगाणु उसमें सम्मिलित पाये जाते है। महिलाओं में गर्भ धारण करने का निश्चय भी करते समय मूत्र परीक्षण सर्वप्रथम किया जाता है। इस परीक्षण से **95** प्रतिशत से लेकर **98** प्रतिशत तक यह पता चल जाता है कि महिला गर्भवती है या नही। इस परीक्षण में एक ही हारमोन की जांच की जाती है। शरीर में वसा के पाचन से सम्बन्धित गड़बड़ी के विषय में भी परीक्षण मूत्र द्वारा ही किया जाता है। मूत्र द्वारा ही प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार शरीर में आने वाले विजातीय द्रव्य को गुर्दे की सहायता से बाहर निकालना सम्भव हो पाता है। इसी प्रक्रिया से रक्त में से ये तत्व गुर्दा बाहर करके रक्त शुद्ध करता है।

### 15.4.2 मल द्वारा निदान

शरीर द्वारा खान-पान के पदार्थों के सेवन करने पर पाचन संस्थान द्वारा उसमें से उपयोगी तत्व एवं रस अलग कर दिये जाने पर जो दूषित पदार्थ शेष बचते हैं उनको ऑतों द्वारा शरीर से बाहर निकलने वाले दूषित पदार्थ को मल के रूप में जाना जाता है।

मल के शरीर से बाहर आने में कितना समय लगता है इसी पर स्वास्थ्य अथवा अस्वास्थ्य के विषय में कोई भी प्राणी जानकारी ले सकता है। क्योंकि दूषित पदार्थ अथवा मल जैसे- दूषित पदार्थ को जितना अधिक समय शरीर के अन्दर ऑतों में रूके रहने से दूषित गैस (मल का सूखना) कब्ज जैसी स्थितियॉ तीव्र एवं जीर्ण रोगों की प्रारम्भिक अवस्था बन जाती है। सामान्यतः जो हम भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं। उसके **18** से **24** घण्टे में शरीर से बाहर आ जाना चाहिए इस प्रकार कच्चे फल सब्जी व अन्य पदार्थ कुछ दिनों तक पड़े रहने पर भी सड़ते या दूषित नहीं होते किन्तु उबलें या पकाये हुए पदार्थ एक या दो दिन में सड़ जाते हैं।

उसी प्रकार पकाये हुए भोजन का शरीर के अन्दर रूकना ही सड़न पैदा करना है जिससे विभिन्न रोगों का उत्पन्न होना लगभग तय माना जाता है। मल का सख्त होना अथवा गॉठें बनना अस्वस्थ होने का परिचायक है। उसी प्रकार मल का पतला होना, काला या अन्य गहरे रंग का समावेश होना भी रोगों के आने का सूचक होता है। मल के साथ में झाग अथवा सफेद चिकना पदार्थ आना आमाशय में ऑव बनने का संकेत है।

मल के साथ रक्त आना अल्सर अथवा बवासीर इत्यादि की उपस्थिति को दर्शाता है। मल का निष्कासन बार-बार होना अथवा उसकी इच्छा होना भी रोगों की उत्पत्ति का कारण है। जिसमें मरोड़ पेचीश, अतिसार इत्यादि लक्षणों का प्रकोप होता है। संग्रहणी प्रतिदिन नियमित समय पर शौच का आना एवं बंधा हुआ केले की तरह गोलाकार साफ ना अधिक सख्त होना अर्द्धांश शौच प्रक्रिया को दर्शाता है। अनियमित शौच किसी आलसी अथवा अधिक मात्रा में बार-बार खाते रहने को दर्शाता है। उपर्युक्त मल में अत्यधिक बदबू का होना पाचन सम्बन्धी अपच जैसे रोगों का पाया जाना दर्शाता है। पेट सम्बन्धी रोगो के निदान के लिए विशेष रूप से मल परीक्षण ही महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान कर सकता है। दस्त पेचिस जैसे-जान लेवा रोगो के निदान हेतु अथवा कारण जानने व समझने के लिए हमें विशेषकर मल का ही परीक्षण करना अनिवार्य हो जाता है। मल निरीक्षण द्वारा ही महत्वपूर्ण परिणाम प्राप्त किये जा सकते है। रक्त अभाव पेट के कीडे और पेट दर्द का पता लगाने, आतो से रक्त स्राव का पता लगाने पेट के संक्रामक रोगो का पता लगाने के लिए मल परीक्षण एक प्रभावशाली तरीका सिद्ध हुआ है। मल परीक्षण हेतु एक चौडे मुँह की बोतल ले कर उसमें मल डालकर तुरन्त ही टैस्ट कराना चाहिए अन्यथा उसमें उपस्थित कीडे तथा बैक्टीरिया नष्ट हो सकते है।

जब हृदय से सम्बन्धित अन्य गहनजॉच करने पर उन रोगीयो में किसी प्रकार के हृदय से सम्बन्धित रोग के लक्षण नही पाये जाते अर्थात 65 प्रतिशत की हृदय खराब आने में मुख्य भूमिका मल द्वारा सड़न से उत्तपन्न गैस ही होती है।

आपको बायोगैस पैदा करने की विधि की जानकारी तो अवश्य होगी। इसमें एक कुंए में गोबर तथा पानी मिक्स करके डालते रहते है और उसको ढ़क्कन से बन्द कर दिया जाता है। आप देखते है कि कुछ दिन बाद ही उसमें से जो गैस पैदा होकर बाहर आती है वह चूल्हा, बल्ब तक जला सकती है। ऐसे ही हम दो तीन दिन तक खाते व उपर से पानी पीते रहते है। और पाखाना दो दिन तक नही आता है। तो यही गैस हमारे सभी ग्रन्थियो तथा शरीर की कार्य प्रणाली को अपने दाब से प्रभावित करती है। इसलिये कब्ज पूरे शरीर को रोगी बना सकती है। इसे दूर करने अथवा अन्य शरीर के रागो में निदान करते समय मुख्य भूमिका मल के गॅाठदार, पतला या सूखा होना अथवा जाम हो जाना एक मुख्य कारण हो सकता है। निदान प्रक्रिया में परिणाम जानने के लिये। इसलिये कहा गया है कि सिर ठण्डा, पेट नर्म व पैर गर्म हो तो स्वस्थ रहने में सहायक होते है।

उपरोक्त विवेचन से सिद्ध होता है हम दिन-प्रतिदिन आहार में रेशेदार (कच्चा) अपक्व का सेवन अत्यधिक मात्रा में ग्रहण करना चाहिए। एवं खूब चबा-चबाकर खाने से स्वास्थ्य के लक्षण देखने को मिलते हैं।

**15.4.3 पसीने द्वारा निदान -** हमारे शरीर में विभिन्न विजातीय द्रव्यों का निष्कासन के स्रोतों में एक स्रोत पसीना भी है। किसी भी व्यक्ति को पसीना कितना आता है सर्दी में भी आता है अथवा गर्मी में भी नहीं आता या बिल्कुल कम आता है। पसीना सफेद निशान, कपड़ों पर बनाता है या पसीना बदबूदार है अथवा नहीं। इत्यादि विभिन्न रोगों के सूचक हैं। ज्यादा पसीना आना ऊर्जा का ह्रास का सूचक माना गया है। शरीर में विभिन्न यूरिक एसिड इत्यादि के अधिक मात्रा में होना इत्यादि लक्षण समझे जा सकते हैं विजातीय द्रव्य को शरीर से बाहर निकालने के प्रमुख विधियों में एक मुख्य स्रोत है। इसको बाहर निकालने में त्वचा का मुख्य कार्य है। त्वचा में उपस्थित रोम छिद्र द्वारा ही पसीना बाहर निकलता है। पसीने द्वारा शरीर में संचित यूरिया रूपी विष को बाहर निकालने का कार्य त्वचा स्वयं करती रहती है किन्तु त्वचा की ऊपरी परतों के नीचे चर्बी पायी जाती है। चर्बी के बढ़ जाने से पसीना निकलना प्रायः बंद हो जाता है। ऐसी स्थिति आने पर त्वचा के नीचे स्थित श्रम बिन्दु ग्रन्थियॉं स्वाभाविक रूप से अपना कार्य प्रारंभ कर देती हैं। स्थिति अनियंत्रित होने पर उपवास करने की आवश्यकता पड़ती है। उपवास करने से पसीने द्वारा यूरिया रूपी विष दोबारा से निकलना प्रारंभ हो जाता है जिससे पसीने की नलिकाएँ स्वतः खुलकर अपना कार्य करने लग जाती है। इससे त्वचा की कठोरता खत्म होकर त्वचा नरम एवं चिकनी हो जाती है जिससे शरीर में उपस्थिति दूषित पदार्थ बाहर निकलते रहते हैं। और शरीर स्वस्थ रहता है। पसीने के निकलने से शरीर के कपड़े में यदि अत्यधिक गंध महसूस हो अथवा कपड़ों पर सफेद निशान या धब्बे बन जाएं तो सावधान हो जाना चाहिए कि शरीर में विजातीय द्रव्य एकत्रित हो चुके हैं जो अंततः किसी भी तीव्र रोग को निमंत्रण समझना चाहिए। ऐसी अवस्था में अत्यधिक जल का सेवन, उपवास फल के रस पर रहकर अथवा कच्चा आहार सलाद या अंकुरित के रूप में सेवन करना हितकर होगा। कुछ अन्य लक्षणों द्वारा भी निदान करना संभव होता है।

**15.4.4 जीभ द्वारा निदान**

रोगी की जीभ देखकर बहुत से रोगों का पता लगाया जा सकता है। मात्र जीभ को देखकर इसकी विभिन्न अवस्थाओं की जानकारी कर उस पर जमें मेंल और बनावट का जानकर रोग के विषय में, महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान की जा सकती है। जीभ के रंग के विषय में कोई निर्णय लेने से पहले यह जानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक है कि रोगी कहीं सिगरेट, मादक द्रव और शराब वगैरह तो नहीं लेता। इसके जीभ के रंग पर प्रभाव पड़ता है रोगों के विषय में निम्नानुसार जानकारी की जा सकती हैA

- जीभ पर सफेद-सफेद जमना — अपच, ज्वर, पेट की खराबी यकृत तथा आंतो की बीमारी

| | |
|---|---|
| • जीभ का रूखा सूखा होना- | पानी की कमी, ज्वर। |
| • जीभ पर लाली तथा चारों ओर दाने (छाले)- | पाचन, विकार, कब्ज आदि। |
| • जीभ का भूरा व काला पन होना- | टाईफाइड |
| • जीभ का ज्यादा लाल होना- | बहूमूत्र होना |
| • जीभ की जड़ में सफेदी- | दांतों की खराबी |
| • जीभ पर नीलापन- | हृदय रोग |
| • जीभ की लाली में कमी- | खून की कमी। |
| • जीभ का लम्बा होना- | मस्तिष्क रोग |
| • जीभ का बढ़ना तथा दांतों के निशान होना- | यकृत विकार |
| • जीभ का तीखा व नुकीला होना- | दिमागी उत्तेजना |
| • जीभ का रंग सीसे जैसा होना- | हैजा, फेफड़े के रोग तथा पक्वाशय की सड़न के कारण। |
| • जीभ का एक ओर घूम जाना- | पक्षाघात के कारण |
| • जीभ पर घाव होना- | रक्त विकार के कारण |
| • जीभ पर काली तहजमना- | चेचक रोग में मृत्यु सूचक, सड़क, यकृत रोग के कारणतथा मृत्यु की सूचना। |
| • जीभ का रंग सीसे जैसा होना तथा | निश्चित मृत्यु की सूचना। |
| • जीभ पर छाले पड़ जाना- | उदर गत व्याधि, अपच, गैस |

| | |
|---|---|
| • जीभ पर जख्म व जगह-जगह कटी हुई होना- | रोगों के बिगड़ जाने के कारण तथा खून की कमी के कारण यदि शीघ्र उपचार नहीं किया जाये तो मृत्यु तय होना। |
| • जीभ बोलते समय लड़खड़ाये या कांपे तो- | शारीरिक कमजोरी जीभ का सुन्न लगना |

जिस भाग पर उपरोक्त बताये अनुसार रंग व मेंल जमता है तो वह अंग विकार युक्त होता है तथा उस अंग के उपचार की आवश्यकता होती है-जीभ का अग्र भाग व अंगों की स्थिति कहा जाता है कि जीभ हृदय का दप्रण है और प्लीहा से भी सम्बन्ध है। इस प्रकार हृदय व प्हीला की जानकारी जीभ से प्राप्त की जा सकती हे। हृदय, गुर्दे, यकृत और प्लीहा कें मेंरिड़ीयन इससे होकर निकलते हैं। इसे देखकर व चित्र देखकर सम्बन्धित भाग की जानकारी प्राप्त करने के बाद अंग विशेष के विषय में निर्णय लिया जा सकता है। यह केवल अनुभव से ही जाना जा सकता है। विभिन्न रोगियों की जीभ देखकर सम्बन्धित रोग के विषय में जानकारी प्राप्त कर लेने से उपचार भी दिया जा सकता है।

**15.4.5 आकृति द्वारा निदान -** मनुष्य का शरीर पॉच भौतिक तत्वों से बना है हर व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से भिन्न होता है। उसके रहने, खाने, पीने का तरीका अलग-अलग होता है। मनुष्य शरीर में प्रकृति के अनुसार विभिन्न रोग होते हैं। रोग होने के पश्चात निदान के लिए उसके उभरे लक्षणों पर अध्ययन कर रोग के कारण को जाना जाता है। जिससे सही चिकित्सा देकर उसे पुनः स्वस्थ्य किया जा सके। आकृति निदान भी निदान का ही एक विज्ञान है जिसके अन्तर्गत शरीर के विभिन्न अंगों में आए बदलावों का अध्ययन कर शरीर में रोगों के कारण का पता लगाया जा सकता है।। आकृति निदान को ही मुखाकृति निदान पद्धति भी कहा जाता है। मुखाकृति विज्ञान शरीर के सारे अवयवों से संबंध रखता है पर मुख पर भी रोग के लक्षणों को देखा जा सकता है। मुख पर सबसे पहले प्रभाव दिखाई देते हैं। जैसे रोगी की आंखों का रंग पीला या लाल है। आंखों के नीचे काले घेरे, उसके चेहरे पर मुँहासे, उसके समुचे शरीर का रंग आदि देखकर व उसकी बीमारी का अंदाजा लगाया जा सकता है।

मुखाकृति विज्ञान में शरीर के विभिन्न अंगों की बनावट, परिचालन, रंग गति में सब सावधानी से देखकर रोग का सही-सही निदान करना होता है। इसमें शरीर की बाहरी आकृति को देखकर शरीर की आंतरिक दशा का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। शरीर के लक्षणों को ग्रहण कर वर्तमान में हो रहे रोग का पता लगाना तथा भविष्य में क्या हो सकता है तथा उस रोग को अच्छा होने की क्या सम्भावना है। ये सभी बातें मालूम की जा सकती हैं। आकृति निदान बहुत ही विस्तृत विज्ञान है जिसमें रोग की अवस्था में उत्पन्न छोटे-छोटे लक्षणों का जॉच परखकर ठीक ढंग से अध्ययन कर रोग के कारणों को जानकर उसे पूरा किया जा सकता है जैसे रोगी का पाचन तंत्र किस प्रकार कार्य कर रहा है उसे खाना खाने के बाद भारीपन या जलन खट्टी डकार आदि की शिकायत तो नहीं रहती उसे भूख लगती है या नहीं। तेज मसालेदार चीजें खाने की इच्छा आदि का पता लगाना क्योंकि यह अप्राकृतिक है और रोग का कारण भी। उसकी प्यास का पता लगाना वह दिन में कितना पानी पीता है प्यास लगने पर केवल पानी ही पीकर प्यास बुझाता है या नहीं। पेशाब कैसा है अध्ययन करना, इसका रंग कैसा है, सफेद है, पीला है या गंदा पीला है, पेशाब करने में कोई कष्ट तो नहीं है। साधारणतः इसका रंग हल्का, पीला, बादामी होना चाहिए।

मल कैसा होता है यह बहुत ही महत्वपूर्ण है। मल सख्त है या पतला है, बदबूदार तो नहीं है। इसका रंग कैसा है, मल के साथ आंव तो नहीं जाती, मल काली गांठ की शक्ल में तो नहीं है कब्ज तो नहीं रहती है, इसी प्रकार त्वचा को देखकर भी काफी कुछ मालूम किया जा सकता है। त्वचा सूखी होना या नर्म व मुलायम है स्पर्श करने पर हल्की गरम,

कोमल व लचीली होनी चाहिए। श्रम अधिक करने पर शरीर का थकान की सूचना देना नींद का ठीक व गाढ़ा होना **6** से **8** घंटे की निद्रा लेना जागने पर स्फूर्ति व प्रसन्नता का अनुभव करना, गर्दन का आकार कैसा है, छाती पेट से चौड़ी है या नहीं पेट बाहर तो नहीं है। घुटनों की आकृति चलने का तरीका आदि कैसा है। इन्हीं लक्षणों द्वारा मनुष्य के रोगों का निदान किया जा सकता है। आकृति निदान कर रोग की अवस्था को जाना जा सकता है। चीनी चिकित्सा पद्धति के अनुसार नीचे लिखे **5** रंगों को शरीर के अंगों का प्रतिनिधि माना है-

जैसे कि-

काला रंग- गुर्दे, मूत्राशय, आन्तरिक ग्रन्थियॉं, विशेषकर कामुक्ता सम्बन्धी असन्तुलन को प्रदर्शित करता है।

- लाल रंग- हृदय, मस्तिष्क और रक्त वाहिनी नलियों को प्रदर्शित करता है।
- सफेद रंग- फेफड़े, त्वचा और श्वांस प्रणाली को प्रदर्शित करता है।
- पीला रंग- प्लीहा, अग्न्याशय, पेट और लिम्फेटिक प्रणाली को प्रदर्शित करता है।
- हरा रंग- यकृत और नाडी संस्थान को प्रदर्शित करता है। उपरोक्त रंगों के अनुसार अंग विशेष में रोग के विषय में पता लगाया जाता है। इसमें अनुभव की आवश्यकता है। धीरे- धीरे विभिन्न प्रकार के रोगियों को प्रतिदिन देखने व परीक्षण से यह दक्षता हासिल की जा सकती है।

चेहरे को ध्यान से देखने के पश्चात रोग के विषय में निम्नलिखितानुसार निर्णय पर पहुँचा जा सकता है जो कि निरंतर प्रयास न अनुभव से ही सम्भव हो सकता है।

- चेहरे पर कोमकता, पलकें झपकी हुई क्षय तपेदिक रोग और आंखे भीतर को धंसी हुई
- चेहरे पर लाली तथा धब्बे- खसरा।
- चेहरे पर घबराहट- न्यूमोनिया।
- गर्भवती के चेहरे का बैठ जाना- गर्भ स्त्राव अवस्था।
- चेहरे का बैठ जाना- किसी भयंकर रोग की सूचना।
- होठों का नीला पड़ जाना- हैजा यकृत के रोग, ज्ञानेन्द्रीय के रोग।
- मुंह से बार-बार सांस लेना - टांसिल बढ़ जाने के कारण श्वांस नली में अवरोध होने के कारण।
- कानों को बार-बार खुजलाना- कर्ण रोग की चेतावनी।
- आंखों को बार-बार खुजलाना- हृदय व यकृत के रोग।
- हड्डियॉं- हड्डियों के जोड़ों को देखने से पता चलता है कि इनमें विकृति आ गयी है तो गठिया रोग है और यदि इन पर सूजन व दर्द है तो संधि वात रोग है।
- आंखे का वाहय रूप से पूर्ण परीक्षण करने पर नीचे लिखे अनुसार रोगो कि जानकारी प्राप्त करें-
  - आंखों का अन्दर धंसा होना- श्वेत, प्रदर, प्रमेंह दुर्बलता, स्वप्न दोष शरीर में पानी की कमी करने वाले रोग और रक्त स्त्राव आदि।
  - आंखों की सूजन व पलकों की सूजन- यकृत, गुर्दे व हृदय रोग के कारण।

- आंखों का लाल होना- नजला जुकाम, उच्च रक्त चाप, मस्तिष्क विकार, पागलपन व तेज बुखार के कारण।
- आंखों में रूखापन होना-यकृत व गुर्दों के रोग वंशानुगत रोग होने के कारण।
- आंखों के आगे अंधेरा छाना- बेहोशी, सिरदर्द, खून की ज्यादा कमी, हृदय की अत्यधिक धड़कन, चक्कर आना।
- आंखों की झिल्ली सफेद होना-खून की कमी के कारण।
- आंखों की पुतलियों का सिकुड़ना-अफीम सेवन के कारण।
- आंखों की पुतलियों का फैलना-मोतियाबिन्द, मिर्गी, सांप के काटने के कारण।
- एक आंख का उभरा हुआ लगना-सिर में रसौली के कारण।
- आंखों के चारों ओर नीला अथवा-पेट के रोग के कारण। काला गोलाकार घेरा पड़ जाना
- आंखों में दर्द होना याज ल होना-हृदय रोग के कारण।
- आंखों में खाज (खुजली) होना-हृदय व यड्डत रोगों के कारण।
- आंखों से धुंधला दिखायी देना-खून की खराबी के कारण।
- आंखों से एक वस्तु का दो दिखना-यकृ त व गुर्दों में विकार के कारण तथा मधुमेंह में अत्यधिक शुगर स्तर बढ़ने से।
- यदि छोटा बच्चा आंख थोड़ी खुली -तो यह यकृत (लीवर) में खून
- रखकर सोता है- कम आने का संकेत है। प्लीहा इतना खून नहीं बना पाता जितना यकृत को चाहिए।
- यदि व्यस्क या वृद्ध व्यक्ति खुली -यह प्लीहा (तिल्ली) का सही
- आंखे रखकर सोता है- काम करना नहीं बताता है जिससे पर्याप्त खून यकृत को नहीं पहुँच पाता। यह स्थिति अत्यन्त दयनीय होती है। इसका तुरन्त उपचार लेना आवश्यक है।
- बाल-बालों को देखकर साधारणतया प्राथमिक परीक्षण इस प्रकार करना चाहिए-
- बाल शुष्क व रूखे होने पर- गुर्दों का रोग
- बाल सफेद होने पर- नजला, जुकाम, दमा, श्वांस रोग
- बाल झड़ने पर- पिट्च्यूटरी का काम कम करना, हृदय रोग सिर में रक्त संचार की कमी आदि।
- अंगुलियां तथा नाखून- अंगुलियों को देखने पर निम्नलिखित रोगों के बारे में जानकारी मिलती है-
- अंगुलियों को जोड़ों को दबाने से दर्द हो तो-संधिवात, इस रोग से अंगुलियों के जोड़ों पर सूजन भी आ जाती है।
- अंगुलियों को जोड़ों में विकृति अथवा हाथों व पांवों की अंगुलियों में टेड़ापन हो जाने पर- गठिया।
- अंगुलियों में यदि लाली कम दिखाई दे तो- खून की कमी।
- नाखूनों को यकृत द्वारा नियंत्रित किया जाता है। स्वस्थ व्यक्ति के नाखून लाल (पिंक) होने चाहिए। इनकी पहचान हम इस प्रकार करेंगे-

- बड़े नाखूलों वालों के- पांव के ऊपर के हिस्से में जैसे फेफड़े हृदय और मस्तिष्क के रोग होते हैं।
- छोटे नाखूनों वालों के-ऑत के रोग व खून के रोग तथा पैर व कमर के निचले हिस्से में दर्द आदि रोग होते हैं।
- पतले नाखूनों वालों के- शारीरिक दुर्बलता सुस्ती हृदय रोग की सम्भावना बनी रहती है।
- पतले परन्तु मुड़े नाखून- रीड़ में खराबी।
- पतले व पीले या नीले नाखून-खून की खराबी व रक्त संचार में व्यापक गड़बड़ी का धोतक है।
- नाखून नीचे से पतले ऊपर से चौड़े- हृदय की कमजोरी प्रदर्शित करते हैं।
- उखड़े हुए व लम्बे नाखून- रीढ़ दोष
- तर्जनी अंगुली का नाखून नीचे की ओर अंगली में धंसा हुआ हो तो- गले के रोग, दमा, तथा फेफड़े के रोग दर्शाते हैं।
- छोटे नाखून नुकीले हो तथा अधिक चपटे हों तो- पक्षाघात, लकवा की सम्भावना को दर्शाते हैं।
- कठोर कांच की तरह टूटने वाले नाखून व खुरदरे- स्नायु रोगों की ओर इंगित करते हैं।
- नाखून अगर बहुत छोटे हों तो- रीड़ की हड्डी कमजोर होती है।
- नाखून आगे झुके हुए या टूट रहे हो अथवा झुर-झुरे हों तो- कैल्शियम की कमी दर्शाते हैं।
- पीले या पीले धब्बे वाले आसानी से टूटने वाले- पीलिया, कामला, पाण्डु रोग तथा नपुसंकता का होना बतायेंगे।
- यदि नाखून एक ओर कम तथा दूसरी ओर ज्यादा चौड़ा हो तो- संधिवात रोग की ओर इशारा है ।

अनेक रोगों के कारण त्वचा पर भी उसके लक्षण नजर आते हैं और नीचे लिखे अनुसार परिवर्तन देखने को मिलते हैं-

क- त्वचा का सूखा तथा गर्म होना- बुखार के कारण,

ख- तवचा से पसीना ज्यादा निकलना- टी0वी0 या आमबात,

श्लेष्मा (थूक)- साधारणतया थूक (श्लेष्मा) पतला ही होता है और इसका रंग सफेदी लिए होता है। इसमें कोई गंध या रंग नहीं होता परन्तु रोग की दशा में इसमें निम्न प्रकार परिवर्तन आ जाता है-

- यदि थूक पतला नम हो तो- शरीर में पानी की अधिकता तथा सर्दी के रोग होने की सम्भावना होती है।
- थूक बदबूदार व पीपयुक्त होने से- फेफड़ों की सूजन व फेफड़ों का फोड़ा।
- थूक चिपचिपा, लेसदार, कफयुक्त- ब्रोकाइटस, अस्थमा
- थूक झागदार व लालिमा लिए- वात विकार।
- थूक के साथ रक्त की मिलावट होने पर- टी0बी0।
- थूक का रंग मटमेंला अथवा नारंगी- श्लेष्मिक सन्निपात।
- थूक का रंग हरेपन में होने पर-पीलिया।

- थूक अपेक्षाकृत अधिक गाढ़ा होने पर- पेट, प्लीहा, गुर्दों की कमजोरी।
  थूक ज्यादा गाड़ा चिकना भीगा या सूखा- अपच प्लीहा का सही काम नहीं करना आदि।

**अभ्यास प्रश्न**

नीचे कुछ कथन दिये गये हैं, जा सही हो उनके आगे सही का चिन्ह तथा जो गलत हो उनके आगे गलत का चिन्ह का निशान लगायें।

(क) किसी रोग के बाहरी लक्षणों के आधार पर प्रधान कारण का ज्ञान करना ही निदान है।

(ख) प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार सभी रोगों का मूल कारण एक नहीं होता।

(ग) प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार सभी रोग एक है तथा उपचार भी एक ही है।

(घ) मूत्र में 1-2% तक यूरिया होता है।

(ड़) रोगी की आकृति को देखकर भी निदान किया जाता है।

(च) मूत्र में चीनी का आना मधुमेह रोग होने का संकेत है।

(छ) मूत्र में प्रोटीन आना गुर्दे के रोगों की ओर इशारा करता है।

(झ)पसीने के द्वारा भी विजातीय द्रव्य शरीर से बाहर निकलते है।

(ञ) जीभ का भूरा एवं काला होना टायफाइड का संकेत है।

(ट) चेहरे पर पीलापन रक्त की कमी दर्शाता है।

## 15.5 सारांश

- निदान – किसी भी रोग के बाहरी लक्षणों को देखकर मूल कारण को ज्ञान करने की प्रक्रिया।
- निदान के प्रमुख चरण – तीन चरण

1. रोगी की वर्तमान दशा का ज्ञान
2. रोग की उत्पत्ति
3. रागी का व्यक्तिगत इतिहास

- निदान की विधियॉ – पॉच विधियॉ –

1. मूत्र द्वारा निदान
2. मल द्वारा निदान
3. पसीने द्वारा निदान
4. जीभ द्वारा निदान
5. आकृति द्वारा निदान

प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार सभी रोगों का एक मात्र कारण शरीर में विजातीय द्रव्यों का एकत्रित होना है तथा रोगों को दूर करने का आयामी एक ही है – विजातीय द्रव्यों को शरीर से बाहर निकालना।

## 15.6 शब्दावली

निदान – रोग का मूल कारण जानने की प्रक्रिया।

अपच – भोजन का न पचना।

विकृति – रोग या समस्या

निष्कासन – बाहर निकालना।

सटीक – बिल्कुल ठीक।

## 15.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क) सही (ख) गलत (ग) सही (घ) सही (ङ) सही (च) सही (छ) सही (ज) सही (झ) सही (ञ) सही

## 15.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जिन्दल, राकेश (2005) प्राकृतिक आयुर्विज्ञान। आरोग्य सेवा प्रकाशन, मोदीनगर, उत्तरप्रदेश।

2. सिंह, रामहर्ष (2007)। स्वस्थवृत्त विज्ञान, चौखंभा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।

3. सक्सेना, ओ0पी0 (2005), भाषा भवन प्रेस मथुरा।

4. सिंह, रामहर्ष (2006), योग एवं यौगिक चिकित्सा। चौखंभा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली।

## 15.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. निदान से आप क्या समझते है ? निदान के विभिन्न चरण बताते हुए आकृति निदान की प्रक्रिया का विवेचन कीजिए।

2. जीभ द्वारा निदान किस प्रकार से किया जाता है ? विस्तृत विवेचन कीजिए।

3. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए –

(क) मूत्र द्वारा निदान

(ख) मल द्वारा निदान

(ग) पसीने द्वारा निदान

# इकाई 16 – शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक जीवन में प्राकृतिक चिकित्सा

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 समग्र जीवन में प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ

16.4 शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक जीवन में प्राकृतिक चिकित्सा

16.5 सारांश

16.6 शब्दावली

16.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

16.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

16.9 निबंधात्मक प्रश्न

## 16.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों, अब तक आप स्वास्थ्य की समग्र अवधारणा से तो परीचित हो ही चुके हैं अर्थात स्वास्थ्य से हमारा अभिप्राय केवल शरीर से ही नहीं वरन् इन्द्रिय, मन, समाज, आत्मा इन सभी पक्षों का पूर्ण रूप से स्वस्थ होना ही समग्र रूप से स्वस्थ होना है हमारे स्वास्थ्य की अपूर्णता को इंगित करता है। अब प्रश्न यह उठता है कि हम यदि संपूर्ण स्वास्थ्य को प्राप्त करना चाहते हैं तो इसके लिए उपाय क्या अपनायें ? किस विधि का पालन करें ? क्या ऐसी कोई पद्धति है जिसको अपनाकर हम पूरी तरह स्वस्थ रह सकते है, इत्यादि।

पाठकों यदि हम अपने इन प्रश्नों का समाधान चाहते है तो इसका उत्तर है हॉं अर्थात भारतीय ज्ञान-विज्ञान ऐसी तकनीकों एवं उपायों से भरा पड़ा है, जिसका अनुसरण करते है। दीर्घयुक्त, सुखी एवं समृद्ध जीवन की कल्पना को साकार कर सकते हैं। इस हेतु हमें आज एक उपाय या एक शर्त को मंजूर करना होगा। और वह है – प्राकृतिक जीवनयापन की शर्त अर्थात हम अपनी जीवनशैली को प्रकृति के नियमों के अनुरूप ढालें तथा दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या का पालन करते हुये स्वस्थवृत्त के सूत्रों को जीवन में अपनायें। यदि कोई कारण नहीं दिखता, जो हमें समग्र रूप से स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करने से रोकें अर्थात प्राकृतिक जीवन जीने से निश्चय ही हमें शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य की प्राप्ति होगी।

प्राकृतिक जीवन एवं समन्त स्वास्थ्य की इसी महत्ता को ध्यान में रखते हुये प्रस्तुत इकाई में हम स्वास्थ्य संवर्द्धन में प्राकृतिक चिकित्सा के महत्ता उपायों एवं लाभों की चर्चा करेंगे, जिसको करके इसकी उपयोगिता को स्वयं अनुभव कर सकें।

तो आइये सबसे पहले जाने कि शारीरिक मानसिक एवं आध्यात्मिक जीवन में प्राकृतिक चिकित्सा से क्या आशय है।

## 16.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप –

- प्राकृतिक चिकित्सा के महत्व को स्पष्ट कर सकेंगे।
- शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक जीवन के विकास में प्राकृतिक जीवन एवं प्राकृतिक चिकित्सा की भूमिका का विश्लेषण कर सकेंगे।
- प्राकृतिक जीवन जीने के आधारभूत नियमों का अध्ययन कर सकेंगे।
- किस प्रकार से व्यवहारिक दृष्टि से प्राकृतिक जीवन के नियमों को लागू किया जा सकता है। इसे स्पष्ट कर सकेंगे।

## 16.3 समग्र जीवन में प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ

समग्र शब्द का यहॉ पर आशय है शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व आध्यात्मिक प्रिय विद्यार्थियों, अब यह प्रश्न स्वाभाविक है कि शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक जीवन में प्राकृतिक चिकित्सा से क्या आशय है ? इसका अर्थ है कि यदि हम प्राकृतिक ढंग से बिना किसी एलोपैथी दवा के सेवन के ही अपने समग्र स्वास्थ्य का संवर्द्धन चाहते हैं तो हमें किन प्राकृतिक नियमों का पालन करना होगा। स्वस्थवृत्त की किन शर्तो को अनिवार्य अब से अपनाना होगा, ताकि हम निरोगी रहकर एक अच्छा जीवन व्यतीत कर सके। वस्तुत: जैसे:जैसे हम प्रकृति के निकट जाते है। वैसे-वैसे हमारा शरीर, मन भी विकार से दूर होने लगता है। भावनाओं को संतुष्टि मिलती है। जिससे आत्मा भी प्रसन्न होता है और हमारा समग्र नियोजित विकास होता है, पुरूषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष) की प्राप्ति की दिशा में भी प्रगति होती है।

अत: स्पष्ट है कि समग्र स्वास्थ्य की दृष्टि से प्राकृतिक जीवन एवं प्राकृतिक चिकित्सा का अत्यधिक महत्व है।

## 16.4 शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक जीवन में प्राकृतिक चिकित्सा

प्रकृति में सृष्टि का सृजन करते वक्त कुछ विधान तथा नियम बनाए उन्हीं पर चलकर हर जीव सुख और स्वास्थ्य को प्राप्त कर सकता है, उस विधान के अनुसार चलकर मनुष्य को छोड़कर प्रत्येक जीव अपनी निश्चित आयु को भोगकर मृत्यु को प्राप्त करता है, मृत्यु शाश्वत सत्य है इसे टाला नही जा सकता मरते दम तक भी हॅसते- हॅसते जीना स्वस्थ जिन्दगी जीने की एक कला है। वास्तव में स्वास्थ्य शरीर की एक ऐसी सामान्य तथा सुव्यवस्थित अवस्था है जो प्रकृति के नियमो पर चलकर तथा उसके अनुरुप अपने जीवन को ढालकर प्राप्त की जाती है, स्वस्थ रहना जीवन तथा प्रकृति का विधान है प्रकृति ने प्रत्येक जीव का सृजन स्वस्थ एवं सुखी रहने के लिये किया है, लेकिन हम अपने कर्मो के अनुरुप अस्वस्थ एवं दुखी होते है, वर्तमान समय में व्यक्ति समाज, राष्ट्र खंडित होते जा रहे है। तनाव, भय, द्वेष, घृणा, इन्द्रिय लोलुपता, क्रोध हिंसा तथा द्वेष व्यक्तित्व आदि ने समस्त मानव जाति व राष्ट्र को एक दूसरे के प्रतिध्रुवस्थ कर रखा है, प्रकृति के शाश्वत नियमों और विधानो का हमारा तन और मन हर पल क्षण प्रतिक्षण उल्लंघन कर रहा है, करता जा रहा है ऐसी स्थिति में हम रोगी होते है।

मनुष्य के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिये आरोग्य रक्षक पांच मूलभूत नियम बनाये गये है।

1. दिन में दो बार भोजन करना

2. सप्ताह में एक दिन उपवास रखें।

3. दिन में 10 से 12 गिलास पानी पीऐं।

4. एक घण्टा प्रतिदिन व्यायाम करें।

5. प्रातः एवं सायं प्रार्थना अवश्य करें।

प्राकृतिक चिकित्सा के समग्र स्वास्थ्य लाभ में अनुप्रयोग-

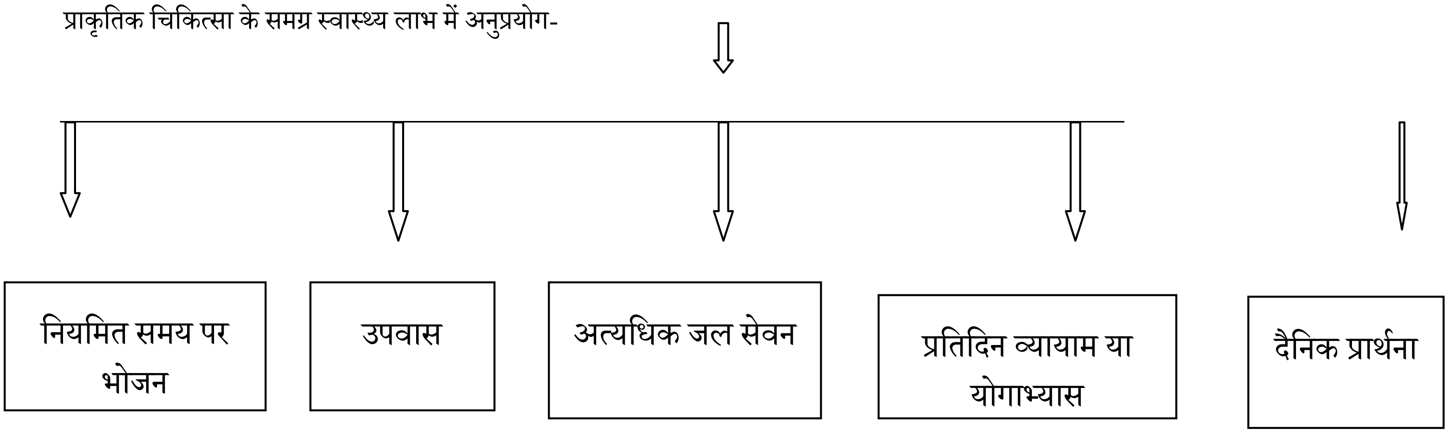


**1. नियमित समय पर भोजन**

भूख से आधा खाना खाने से हमारे शरीर के सारे अंग सुचारु रुप से कार्य करने में सक्षम रहते है। बार-बार खाते रहने अथवा 5 या 6 घन्टे से पहले दुबारा खा लेने से पहले का खाया हुआ पूरी तरह से पाचन हो नही पाने से उसके पोषक तत्व शरीर ग्रहण करने में असमर्थ हो जाते है साथ ही पाचन तन्त्र भी आराम ना करने के कारण बिगड़ जाता है। इस प्रकार प्राकृतिक आहार पूर्ण तथा पच जाने अथवा दुबारा भूख लग जाने की स्थिति में ही आहार लेना हितकर होगा।

**2. उपवास**

सप्ताह में एक दिन उपवास अर्थात केवल पानी पर अथ्वा फल, जूस, रस इत्यादि थोड़ा- थोड़ा एक निश्चित अन्तराल पर ग्रहण करते हुए ही उपवास रखना श्रेयस्कर माना जाता है। इस प्रकार के उपवास से हमारा पाचन तन्त्र विश्राम कर पाता है जिससे शरीर की प्राण शक्ति निश्चित रुप से बढ जाती है साथ ही उपवास के दिन हम प्रायः देखते है कि स्वतः ही अध्यात्मिक भाव भी आने लगते है जिससे मन की चंचलता पर एक विशेष प्रकार का परिवर्तन महसूस किया जा सकता है। आंतो में जमा मल को भी हम अधिक बाहर निकालने का अवसर प्रदान कर शरीर से विभिन्न प्रकार की गैसे, कब्ज एवं अन्य विजातीय द्रव्य जैसे घातक घटको से भी मुक्त होने में मदद मिलती है। इस प्रकार शारीरिक शुद्धि होकर एक नयी स्फूर्ति के साथ शरीर के विकास एवं शरीर की प्रतिरोघात्मक शक्ति में एक विशेष परिवर्तन देखने को मिलता है "जैसा खायें अन्न वैसा होवे तन और मन" यह कहावत पूर्णतया सात्विक अथवा भगवान की रसोई अपनाये जाने को विवश करती है।

### 3. अत्यधिक जल सेवन

ऊषापान की महिमा तो सभी जानते ही है। अतः उठते ही एक से दो गिलास पानी पीकर ही शरीर का शोधन किया जा सकता है। मानव शरीर में कुल वजन का 2/3 (दो तिहाई) भाग जल के रुप में ही है अर्थात शरीर के इस जल को प्रतिदिन पानी पीकर बदलने व गन्दे पानी को गुर्दे के द्वारा पेशाब के रुप में बाहर निकाल देने भर से शरीर मन एवं आध्यात्मिक स्वरुप स्वस्थ एवं सहज बन पाता है। अत: अत्यधिक स्वच्छ जल का सेवन करना चाहिये।

### 4. व्यायाम / योगाभ्यास

शरीर में उत्पन्न विजातीय द्रव्यो को बाहर निकालने के लिये पसीना व्यायाम योगाभ्यास अथवा शारीरिक श्रम द्वारा बाहर निकाल सकते हैं। साथ ही कुंजल, नेति, धौती, स्नान इत्यादि के लिये आवश्यक है कि प्रतिदिन एक घन्टा अवश्य लगाये जिससे शरीर की सफाई हो जाने पर पूर्ण स्वास्थ्य मानसिक व अध्यात्मिकता की अच्छी स्थिति प्राप्त हो जाती है। शरीर तन्दुरुस्त मन एकाग्र और अच्छे संस्कार से सभी लाभान्वित होते है। इतना सबकुछ बदल देने का कार्य प्राकृतिक चिकित्सा ही कर सकती है अन्य दूसरी कोई भी पद्धति नही कर पाती है।

### 5. प्रार्थना

प्रातः एवं सायं प्रार्थना अवश्य करें- प्राकृतिक चिकित्सा में 5 तत्वो के अतिरिक्त एक और तत्व है "राम नाम" मानव जीवन में आज के मुख्य रोगो का कारण साईकोलोजिकल (मनोवैज्ञानिक) होता है। यहा तक की अन्य कारणो की अपेक्षा लगभग 70 प्रतिशत मनोवैज्ञानिक कारण पाये जाते है। स्वयं गांधी जी ने पंच महाभूत चिकित्सा की सफलता में राम नाम के महत्व पर जोर दिया है।यदि इसको दूसरे प्रकार से समझे तो प्रार्थना आदि से हमें सकारात्मकता प्राप्त होती है। यह सकारात्मक सोच हमें भयंकर से भयंकर रोगो से छुटकारा दिलाकर मानसिक शांति, आध्यात्मिक सोच पूरी तरह से बदल जाती है।

**अभ्यास प्रश्न**

**सत्य / असत्य बतायें।**

1. स्वस्थ रहना जीवन एवं प्रकृति का विधान नहीं है।
2. स्वस्थ्य रहना जीवन एवं प्रकृति का विधान है।
3. दिन में दो बार भोजन करना चाहिए।
4. आरोग्य की दृष्टि से दिन में चार बार भोजन करना चाहिए।
5. सप्ताह में एक दिन का उपवास रखना स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभकारी है।
6. स्वस्थ रहने के लिए प्रतिदिन सुबह शौच से पूर्व उषापान करना चाहिए।
7. दिन में 10-12 गिलास पानी पीना चाहिए।
8. मानव शरीर में कुल वजन का 2/3 भाग जल के रूप है।
9. मानव शरीर में कुल वजन का 1/4 भाग जल रूप में है।
10. भूख से आधा भोजन करने पर शरीर के अंग सुचारू ढंग से कार्य करते हैं।
11. भूख से आधा भोजन करना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।
12. कब्ज पाचन संस्थान से सम्बद्ध रोग है।
13. कब्ज श्वसन संस्थान से सम्बद्ध रोग है।
14. महात्मा गाॅधी ने पंचमहाभूत चिकित्सा की सफलता में राम नाम के महत्व पर जोर दिया है।
15. स्वस्थ रहने के लिये प्रात: एवं सायं प्रार्थना भी अनिवार्य है।

## 16.5 सारांश

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रतिदिन की दिनचर्या में प्राकृतिक चिकित्सा को ध्यान में रख कर जीवन शैली सही करने से शरीर मन एवं आध्यात्मिक स्तर ऊॅचा किया जा सकता है। उपरोक्त रोग ना होने पर करते रहने से आप रोगो के आने को भी रोकने में समर्थ हो सकते है। इसी से प्राण शक्ति (प्रतिरोघात्मक शक्ति) सुदृढ़ हो जाती है। प्राकृतिक चिकित्सा के अनेकानेक अनप्रयोग जिनमें पंचतत्व चिकित्सा आती है समग्र स्वास्थ्य की दृष्टि से बेहस उपयोगी है। संक्षेप में निम्न चित्रानुसार आप प्राकृतिक चिकित्सा के महत्व को समझ सकते है।

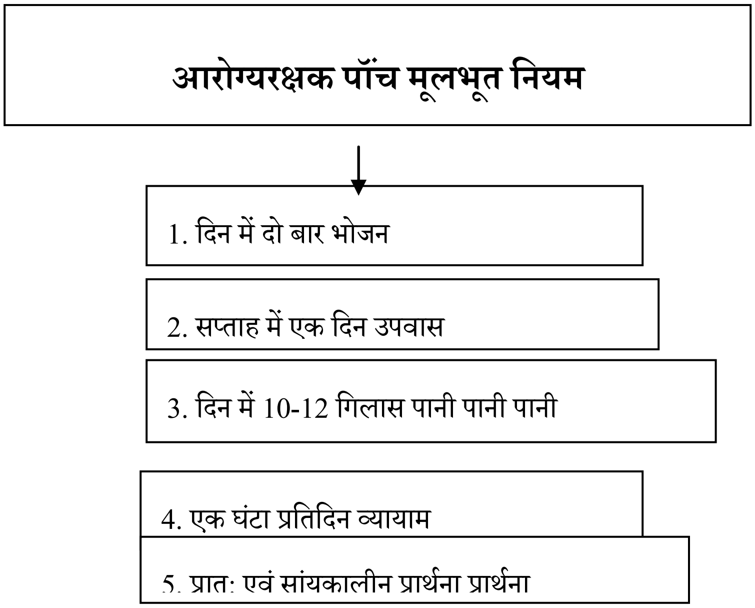
आरोग्यरक्षक पॉच मूलभूत नियम
1. दिन में दो बार भोजन
2. सप्ताह में एक दिन उपवास
3. दिन में 10-12 गिलास पानी पानी पानी
4. एक घंटा प्रतिदिन व्यायाम
5. प्रातः एवं सांयकालीन प्रार्थना प्रार्थना

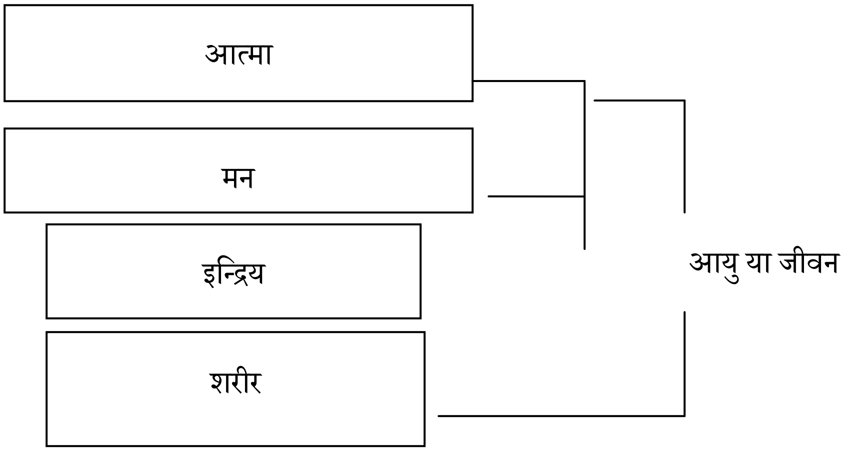
आत्मा
मन
इन्द्रिय
शरीर
आयु या जीवन

स्वास्थ्य के विविध आयाम भी है।

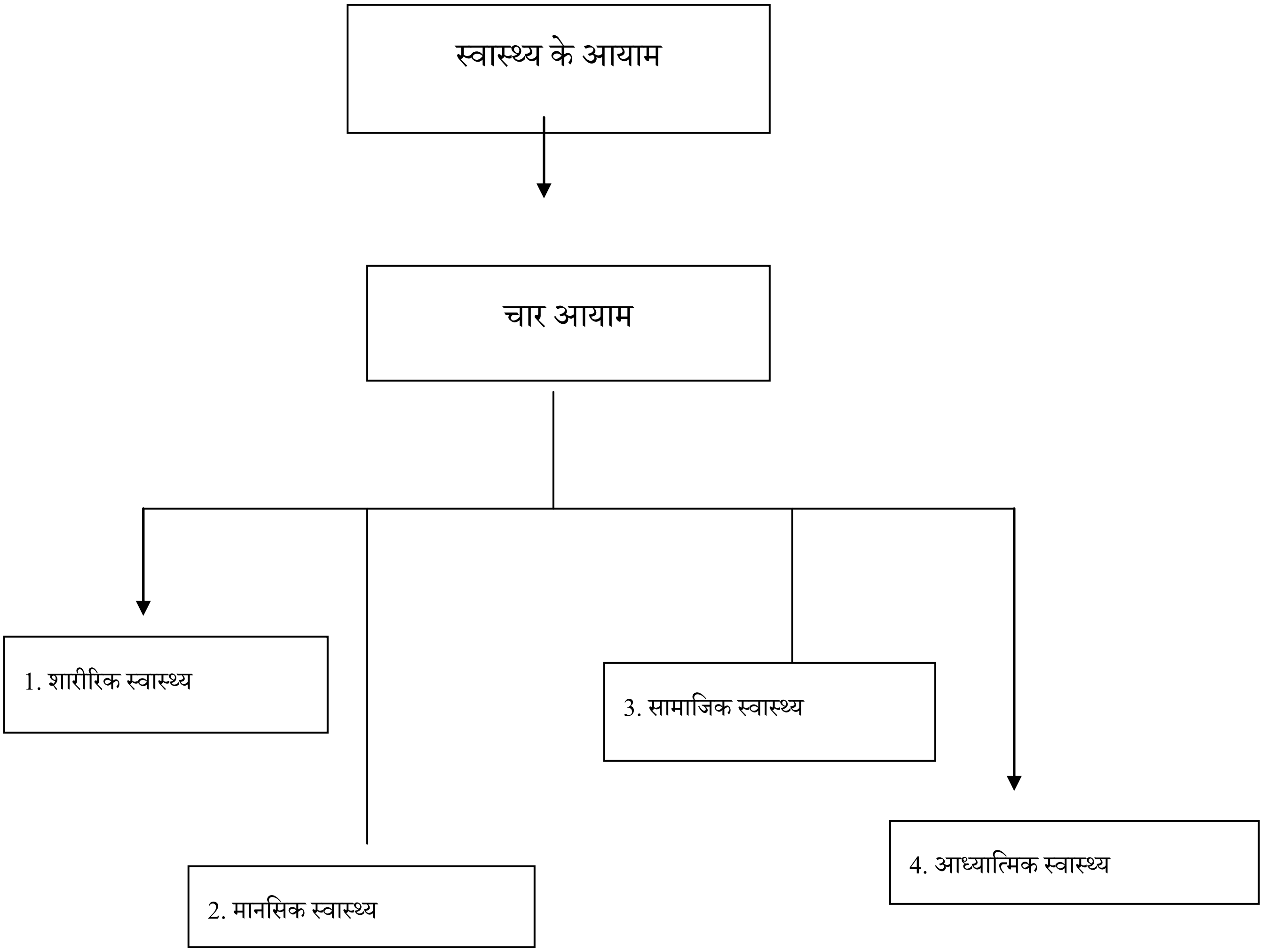


## 16.6 शब्दावली

सुचारू – अच्छे ढंग से।

आरोग्य - रोगों का नष्ट होना या दूर होना।

ऊषापान – प्रात:काल शौच से पूर्व जल पीने की प्रक्रिया।

विजातीय द्रव्य – विषाक्त पदार्थ, जिनका शरीर को स्वस्थ रखने के लिए शरीर से बाहर निकलना अत्यावश्यक है।

श्रेयस्कर – कल्याणकारी, हितकारी।

प्रतिरोधात्मक शक्ति – शरीर की रोगों से लड़ने की क्षमता।

सात्विक – सतोगुण से युक्त।

सकारात्मक सोच – अच्छा सोचना, सद्चिन्तन।

## 16.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. असत्य 2. सत्य 3. सत्य4. असत्य5. सत्य6. सत्य7. सत्य 8. सत्य 9. असत्य 10. सत्य 11. असत्य12. सत्य13. असत्य 14. सत्य 15. सत्य

## 16.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, रामहर्ष (2006) स्वस्थवृत्त विज्ञान। चौखंभा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।

2. सिंह, रामहर्ष (2005) योग एवं यौगिक चिकित्सा। चौखंभा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।

## 16.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्राकृतिक चिकित्सा के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों को स्पष्ट कीजिए।

2. प्राकृतिक चिकित्सा के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों की तुलनात्मक व्याख्या कीजिए।

3. आरोग्य के पांच मूलभूत मंत्रों की व्याख्या कीजिए।